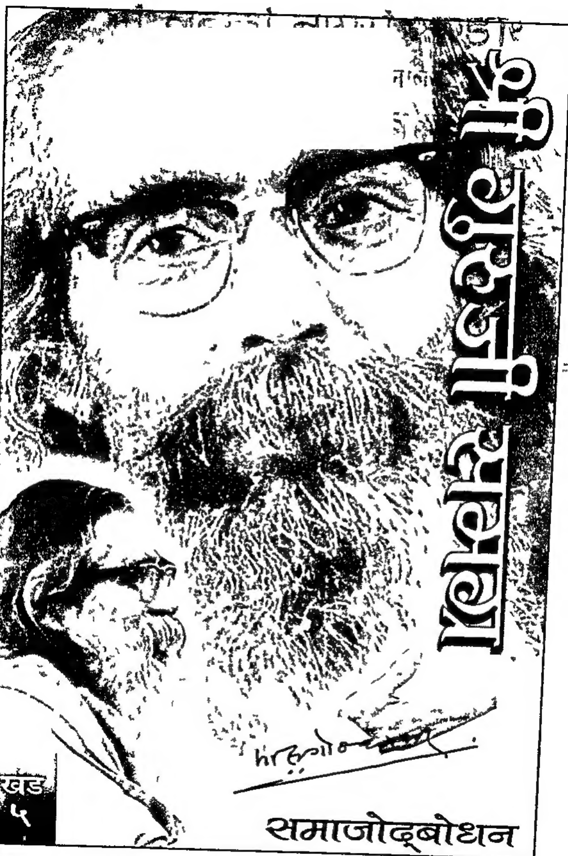

श्री गुरुजी
खंड ५
समाजोद्बोधन

प्रकाशक
सुरुचि प्रकाशन
देशबन्धु गुप्ता मार्ग
नई दिल्ली-११००५५

प्रथम संस्करण
माघ कृष्ण एकादशी युगाब्द ५१०६

मुद्रक
गोपसन्स पेपर्स लि
नोएडा-२०१३०१

मूल्य प्रति सेट
दो हजार रुपए



पारिभाषिक शब्द

सरसघचालक	–	सघ के मार्गदर्शक।
सरकार्यवाह	–	सघ के निर्वाचित सर्वोच्च पदाधिकारी।
सघचालक	–	स्थानीय कार्य व कार्यकर्ताओं के पालक।
मुख्यशिक्षक	–	नित्य चलनेवाली शाखा के कार्यक्रमों को सचालित करनेवाला।
कार्यवाह	–	शाखा क्षेत्र का प्रमुख।
गटनायक	–	शाखा क्षेत्र के एक छोटे भौगोलिक भाग का प्रमुख।
प्रचारक	–	सघकार्य हेतु पूर्णत समर्पित अवैतनिक कार्यकर्ता।
शाखा	–	सस्कार निर्माण हेतु नित्यप्रति का एकत्रीकरण।
उपशाखा	–	एक स्थान पर चलने वाली विभिन्न शाखाएँ।
बैठक	–	विचार-मथन व सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया हेतु एकत्र बैठने की प्रक्रिया।
बौद्धिक	–	वैचारिक प्रबोधन का कार्यक्रम, भाषण।
समता	–	अनुशासन के प्रशिक्षण हेतु शारीरिक कार्यक्रम।
सपत्	–	कार्यक्रम प्रारभ करने हेतु स्वयसेवकों को निश्चित रचना में खडा करने की आज्ञा।
विकिर	–	शाखा-कार्यक्रम की समाप्ति की अतिम आज्ञा।
दड	–	लाठी।
चदन	–	एक साथ मिल-बैठकर जलपान करना।
सहभोज	–	अपने-अपने घर से लाए भोजन को एक साथ मिल-बैठकर करना।
शिविर	–	कैंप।
सघ शिक्षा वर्ग	–	सघ की कार्यपद्धति सिखाने हेतु क्रमबद्ध त्रिवर्षीय प्रशिक्षण योजना।
सार्वजनिक समारोप	–	शिविर तथा वर्ग का अतिम सार्वजनिक कार्यक्रम।
खासगी समारोप	–	वर्ग का केवल शिक्षार्थियों के लिए दीक्षात कार्यक्रम।

अनुक्रमणिका

विविध संस्थाओं में भाषण

खड-५

समाजोद्बोधन

जहाँ एक ओर सघ के नित्य एव नैमित्तिक कार्यक्रमो, शाखा, एकत्रीकरण, बैठक, शिविर इत्यादि मे श्री गुरुजी का मार्गदर्शन प्राप्त होता था, उसी के साथ-साथ समाज- जीवन मे चलनेवाले विविध कार्यों एव विशिष्ट प्रसगो पर भी उनके प्रबोधन द्वारा दिशादर्शन होता था। विविध सस्थाओ और सघ के छ नैमित्तिक उत्सवो पर उनके द्वारा दिए गए ऐसे कुछ भाषणो के साराश का इस खड मे समावेश किया गया है।



विविध सस्थाओ मे भाषण

सघ से अनुप्राणित तथा अन्य विविध सामाजिक सस्थाओ मे दिए गए भाषण

---

१ प्राण देकर भी पवित्रता की रक्षा करे

(मुबई, राष्ट्र सेविका समिति)

भाषण देने का महत्त्व मुझे कुछ अधिक दिखाई नहीं देता। इसलिए जिन व्यक्तियों को आपके इस कार्य के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान है, उनको ही यहाँ बुलाना अधिक उचित होता, किंतु आपकी कार्यकर्त्रियों के आग्रह से मैं यहाँ आया हूँ और आने से पूव मैंने इस बात का विचार किया कि मैं आपको क्या कहूँगा, लेकिन मुझे लगा कि आपसे कहने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। इसलिए मैं केवल एक छोटी-सी कथा ही कहता हूँ।

जिस समय विदेशियों ने प्रथम बार इस देश पर आक्रमण किया, उस समय सिधु नदी के किनारे पर वहाँ के राजा ने उनका प्रतिकार किया, किंतु आपसी फूट के कारण सदैव की भाँति कुछ स्वार्थी व्यक्ति शत्रु से जा मिले। घर के भेदियों के शत्रु से मिल जाने के कारण उसको पराजित करने की इच्छा पूरी नहीं हुई और अतिम युद्ध में हमें हार माननी पडी। शत्रु की जीत से जनता छिन्न-विच्छिन्न हो गई। राजा मारा गया और उसकी लडकियाँ आक्रमणकारी के हाथों पड गईं। आक्रमणकारी के हिंदू तत्त्वज्ञान से अपरिचित होने के कारण उन लडकियों को वह व्यवहार मिलना असभव था, जो शिवाजी महाराज द्वारा कल्याण के सूबेदार की वधू के साथ और चिमाजी अप्पा द्वारा वसई की विजय के पश्चात् पुर्तगीज स्त्रियों के साथ किया गया था। उन लडकियों ने विचार किया कि चाहे जो हो, यदि आक्रमणकारियों का नेता मिला तो उसका वध करेंगी और यदि पवित्रता पर आँच आई तो अपना बलिदान दे डालेंगी।

उन सुंदर लड़कियों को उस पापी राजा के सामने ले जाया गया। उसने उनसे कहा 'तुम हमें बहुत पसंद आई हो। हमारे बड़े राजमहल में सुख से रहो।' इसपर उनमें से एक ने उत्तर दिया, 'आपका कहना ठीक है किंतु सूँघा हुआ फूल आपके किस काम का?' यह उत्तर सुनकर राजा लज्जातुर हो गया और उसने सेनापति को फाँसी दे दी। इस प्रकार लड़कियों ने शत्रु की प्रथम बलि ली। बाद में उन्होंने राजा को भी मार डाला और एक-दूसरी के प्राण लेकर अपनी जीवनलीला समाप्त की। उन्होंने सशक्त आक्रमणकारी के सामने रोते हुए न बैठकर, उसके सम्मुख प्रकट करने योग्य सारा कौशल, शौर्य तथा स्वाभिमान दिखाया।

इस कथा की याद आ गई, क्योंकि आज चारों ओर की परिस्थिति से हम लोग परिचित ही हैं। मन में इस प्रकार का विचार आता होगा कि क्या होगा? ऐसी व्यवस्था में यदि पूर्वजों का स्मरण किया और यह ध्यान में रखा कि अपना जीवन बाजार की चीज नहीं है, तो अपने मन में कितनी दृढ़ता होनी चाहिए, यह इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा।

आपको यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भारतीय जीवन में पवित्रता का सबसे अधिक महत्त्व है। इस प्रकार की दृढ़ता मन में उत्पन्न होनी चाहिए कि उसके लिए कितना भी मूल्य चुकाया, तो भी वह कम ही है। देश की आतरिक दशा अव्यवस्थित है। बाहर शत्रु ताक लगाए बैठे हैं। मार्गदर्शक स्वय का ही मार्ग ढूँढ निकालने में मग्न हैं। ऐसी स्थिति में जीवन में कब अव्यवस्था निर्माण हो जाएगी, कहा नहीं जा सकता। इतना ही नहीं, अव्यवस्था को उत्पन्न करने के लिए कुछ व्यक्ति प्रयत्नशील भी हैं। अव्यवस्था निर्माण न हो और सुव्यवस्था बनी रहे, इस बात का प्रयत्न करनेवाले थोड़े ही हैं। समाज-जीवन में यदि अव्यवस्था हो गई, तो जीवन के सबध में निश्चितता नहीं रहती और उच्छृखल वृत्ति पनपने लगती है। ऐसी व्यवस्था में जीवन की यत्किंचित् भी परवाह न करते हुए समाज-जीवन की गगा को पवित्र रखने की जिम्मेदारी विचारशील लोगों पर आती है। ऐसे समय उन दो राजकन्याओं का उदाहरण सामने रखकर पवित्रता का, अर्थात् जगन्माता का अपमान करनेवाले को दडित करना चाहिए।

मैं जब कॉलेज में पढ़ता था, उस समय की एक घटना बताता हूँ। एक लड़की को एक ने धक्का दिया। उसने उस लड़के की पिटाई कर दी। लड़की के साहस के लिए आनद प्रकट किया जाए या लड़के के पतन के लिए दुःख

किया जाए, यह मेरी समझ में नहीं आया। सब वस्तुओं में पवित्रता श्रेष्ठ है, यह ध्यान में रखकर उस लडकी की ही प्रशसा करनी चाहिए।

आज सर्वत्र इस प्रकार के विचार प्रकट किए जाते हैं कि जीवन पेट पर अवलंबित है। मुझे तो लगता है कि जीवन अत करण और पवित्रता पर निर्भर है। स्वार्थ के कारण वृद्धिगत होनेवाला यदि कुछ भी यहॉ पर फैले, तो वह अपनी श्रेष्ठ सस्कृति का अपमान ही होगा। ऐसी अवस्था में हम अपनी पवित्रता की गगा को अधिक श्रेष्ठ बनाकर एक प्रबल शक्ति का निर्माण करें और समाज में जो-जो पविनता पर आक्रमण करनेवाले हैं, उसको नष्ट करने के लिए अपेक्षित प्रेरणा उत्पन्न करें। इसके अतिरिक्त दिन-प्रतिदिन का जीवन तो है ही। मुझे सासारिक व्यवहार का अधूरा ही ज्ञान है। हम जो आदर्श सम्मुख रखते हैं, उसका श्रेष्ठत्व दैनदिन जीवन से प्रकट होना चाहिए। दिन-प्रतिदिन के जीवन में जो खिन्नता उत्पन्न होती है, उसे कुरेदकर निकाल देने की वीरता हम उत्पन्न करें। व्यवहार और आदर्श में समन्वय होना चाहिए। यदि शातिकाल में अत्यत सुव्यवस्थित जीवन और सकट-काल में पराक्रम निर्माण करने का प्रयत्न किया गया, तो शोर्य-धैर्य उत्पन्न होगा और फिर हम अपने शब्दमात्र से ही दूसरों को प्रभाव में रख सकेंगे।

मैं चित्तौड नहीं गया। वहॉ जाना मुझे आनददायक नहीं लगता। सकट आने पर पवित्रता की रक्षा के लिए अग्नि में प्रवेश तो किया, किंतु पवित्रता भग करनेवालों को नष्ट करना क्यों सभव न हो सका? यह प्रसग अपनी पराजय का परिचायक है या इतिहास में सुवर्ण अक्षरों में लिखा जाने योग्य है? ऐसे उदाहरणों से तो अपने मन में क्षोभ ही निर्माण होगा, किंतु हमें क्षोभ ही नहीं, क्षोभ के साथ-साथ आनद उत्पन्न करनेवाला इतिहास बनाना है। उसके लिए आप प्रयत्न करें, यह मेरा निवेदन है।

२ भारतीय नारी का दायित्व

(२६ जुलाई १९४९ को पुणे की विविध महिला सस्थाओं द्वारा आयोजित स्वागत समारोह में)

अपने जीवन में भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन-प्रवाह निर्माण होते दिखाई देने पर भी महान राष्ट्रीय धारा प्रवाहित रखने के लिए आगामी पीढी को दृढ सास्कृतिक सस्कारों की बालघुट्टी देने का सपूर्ण दायित्व

माताओं का है। आज का यह समारोह माता द्वारा किए गए अपने बच्चे का कौतुक करने के समान है। अपने राष्ट्र की जीवनधारा अक्षुण्ण रखने का उत्तरदायित्व महिलाओं ने ही सँभाला है, आगे भी उन्हें निभाना है। आज सर्वत्र सद्भावना व शुद्धता का अभाव व स्वार्थ दिखाई देता है। इस वातावरण को अपनी अतीव पवित्रता से प्रभावित करने का सामर्थ्य स्त्रियों में ही है -- ऐसा मेरा विचार है। भारतीयत्व की उदात्त भावना, पावित्र्य, राष्ट्र-जीवन की श्रेष्ठता केवल घर के अंदर ही नहीं, बाहर भी अपने आचरण द्वारा सिखाने का कार्य हमें अपने आप करना चाहिए कि कला-कौशल, आनद, ऐहिक सुख-समाधान आदि नव-नवीन कल्पनाएँ आपके समक्ष होंगी, परतु अपनी सस्कृति के सवर्द्धन का कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। हम अपने इतिहास में स्त्रियों के महान पराक्रम की कथाएँ पढते हैं, उच्चतम आदर्श सामने रखते हैं। आज के युग में भी ऐसे पराक्रम की घटनाएँ हुई हैं। डेढ-दो वर्ष पूर्व पजाब के दगों में अपने पावित्र्य-सरक्षण के लिए किया गया पराक्रम, चित्तौड को पवित्र करने वाले जौहर से भी आगे बढ गया। आजकल भी अपने प्रवासी जीवन में ऐसे अनेक उदाहरण देखने से महिलाओं के इस कार्य-कर्त्तव्य के बारे में मेरा विश्वास दृढ हो गया है। अपने समाज-जीवन का आदर्श न छोडने का दृढ निश्चय, जिसे उपहास से 'चौके-चूल्हे का जीवन' कहते हैं, उसमें भी सभव है। आगामी पीढी को ये बातें अलग से सिखाने की आवश्यकता नहीं होगी, ऐसे दृढ सस्कार बनें -- अपने कार्य की रूपरेखा इस प्रकार होनी चाहिए। इससे अधिक कुछ न कहते हुए मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि जिस कार्य का उत्तरदायित्व मेरे पर है, उस कार्य की ज्योति अखड प्रज्ज्वलित बनाए रखने के लिए मुझे शुभाशीर्वाद प्रदान करें। अत करण से यह प्रार्थना करता हुआ अपना भाषण समाप्त करता हूँ।

३ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते

(नागपुर महिला मडल के सत्कार-समारोह में)

सपूर्ण भारत वर्ष में भारतीय सस्कृति का अभिमान रखनेवाली एक सगठित शक्ति अकस्मात समाप्त हो गई। शरीर और बुद्धि में ऐसा लगने लगा है कि चेतना निर्माण करने का वातावरण ही प्राय समाप्त हो गया हो। मनुष्य को पशुत्व से मनुष्यत्व की ओर तथा मनुष्यत्व से देवत्व की

और ले जानेवाले इस मार्ग पर चलने के लिए क्षणिक सुख को जीवन से दूर रखना होगा। इस कार्य का उत्तरदायित्व पुरुषों के समान महिलाओं पर भी है। दुर्गा का अवतार लेकर स्त्रियों ने सभी सकटों से समाज की रक्षा की है और महाकाली के रूप में विनाशक भी वही हैं। जहॉ ऐसी स्त्रियॉ हैं, जिनके सामने आदर के साथ समाज नतमस्तक होता है, वह समाज समृद्धशाली बनेगा ही।

जहॉं पर माता का अपमान होता है, वहॉं भगवान भी क्षुब्ध हो जाते हैं और उन्हें अवतार-कार्य की प्रेरणा मिलती है। यह भूमि हमारी शाश्वत माता है। माता और मातृभूमि के अपमान का बोध होने पर कार्य के लिए चालना मिलती है। ३-४ वर्ष के पूर्व ही ऐसा प्रसग आया है। भीषण परिस्थिति का निर्माण हुआ। मनुष्य पशु बनकर समाज पर आघात करने लगा। जब तक पुरुषों पर अत्याचार होते थे, तब तक मन में क्षोभ निर्माण नहीं हुआ, किंतु स्त्रियों पर भी जब आघात होने लगे, उन्हें पवित्रता के रक्षण के लिए चित्तौड जैसा भीषण जौहर करना पडा, तब कार्य की न्यूनता का तीव्रता से ज्ञान होने से कार्य में गति आई। आप पर घर के बराबर बाहर की भी जिम्मेदारी है। माता के आशीर्वाद से ही बालक का शरीर वज्र जैसा बनता है। आपके आशीर्वाद का प्रार्थी हूँ।

४ शाति-स्थापना का मार्ग

(२२ फरवरी १९५० को इलाहाबाद रोटरी क्लब द्वारा आयोजित सम्मान-समारोह के अवसर पर)

लोग कहते हैं कि कश्मीर समस्या गभीर होती जा रही है, उसका शीघ्र हल आवश्यक है। पर मैं समझता हूँ कि किसी राष्ट्रीय समस्या या सकट के प्रति हमारा यह सकुचित दृष्टिकोण ही विभिन्न समस्याओं का जनक है। जब तक राष्ट्र-सबधी व्यापक दृष्टिकोण से इन समस्याओं की गहराई में जाकर विचार नहीं करेंगे, तब तक स्थानीय और तात्कालिक उपचार व्यर्थ ही सिद्ध होंगे। कश्मीर पर किया गया आक्रमण केवल कश्मीर की समस्या नहीं है, वह सपूर्ण भारत का अपमान है। उसका विचार भी इस व्यापक आधार पर किया जाना चाहिए। वास्तव में कश्मीर पर आया हुआ सकट देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन का अवश्यभावी परिणाम है। जो

आक्रामक प्रवृत्तियाँ विभाजन के मूल में काम करती थीं, हमने उन्हें दवाने के स्थान पर उभरने का अवसर दिया। चारों ओर उपद्रव करनेवाले डाकुओं को दड देने के स्थान पर, उनके सामने घुटने टेकना प्रारभ किया और कुछ देकर उनकी राक्षसी भूख शात करने की चेष्टा की। तव हम यह भूल गए कि पाशवी भूख का कोई अत नहीं हुआ करता। एक उच्च कोटि के नेता ने मुझसे कहा, 'यदि कश्मीर को देने से पडोसी की मित्रता अर्जित की जा सकती है, तो उसे दे देना चाहिए।' मैंने उससे प्रश्न किया 'क्या आप सचमुच यह समझते हैं कि शत्रु की भूख इससे शात हो जाएगी?' इसका कोई समुचित उत्तर उनके पास नहीं था।

श्रीमद्भगवद्गीता में आसुरी प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए लोभी स्वभाव के वारे में कहा गया है–

इदमद्य मया लब्धमिम प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।

(गीता १६, १३)

लोभी के कदम कभी रुकते नहीं, उसकी क्षुधा का कोई अत नहीं। आक्रमणकारियों को सतुष्ट करने के लिए मातृभूमि का विभाजन तक हमारे नेताओं ने स्वीकार किया। पर क्या आक्रमणकारी उसके वाद सतुष्ट होकर चुप वैठ गया? उसके वाद भी आक्रमणों का क्रम निरतर चल रहा है। क्या ये आक्रमण इस वात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं कि आक्रामकों को सतुष्ट करने के लिए किए गए समझोते केवल उनकी दानवी क्षुधा की ज्वालाओं में घृत का ही काम करते हैं?

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

कश्मीर पर किए गए आक्रमण को यदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखें तो पता चलेगा कि यह कोई आकस्मिक दुर्घटना नहीं है। यह तो एक हजार वर्ष से चलनेवाले आक्रमण का एक अध्याय मात्र है। क्या देश का विभाजन भी उसी पुराने आक्रमण की ही एक कड़ी नहीं है? इस भारतभूमि से हिंदुत्व का समूलोच्चाटन कर यहाँ इस्लाम की पताका फहराने का स्वप्न क्या विभाजन की माँग करनेवाले नहीं देखते थे? कश्मीर भी उनको किसलिए चाहिए? क्या इसलिए कि कश्मीर की भूमि से उन्हें वडा प्यार है, आत्मीयता है? हिंदू के अत करण में कश्मीर के कण-कण के प्रति जो श्रद्धा है, आत्मीयता है, क्या उसका लेशमात्र भी उनके मन में है? उन्हें कश्मीर

इसलिए नहीं चाहिए कि उसके बिना जीवन सूना लगता है। उन्हें कश्मीर इसलिए चाहिए कि बचे-खुचे भारत के उत्तरी सीमांत पर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करके इस हिस्से को भी हरे झंडे के नीचे ला सकें। जब तक आक्रमणकारियों का मंतव्य और उनके स्वभाव को ठीक प्रकार से नहीं समझेंगे, तब तक हम न तो हम कश्मीर की और न ही शेष भारत की रक्षा कर सकेंगे।

मातृभूमि के प्रति देखने का दृष्टिकोण

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है मातृभूमि की ओर देखने का अपना दृष्टिकोण। क्या यह केवल निर्जीव जमीन का टुकड़ा है, जिसे चाहे जिस प्रकार क्रय-विक्रय के रूप में लाया जा सके ? मातृभूमि की ओर देखने का दृष्टिकोण यदि न बदला, तो हमारा राष्ट्र-जीवन छिन्न-विच्छिन्न होने में किंचित् देर न लगेगी। यह देश हमारे लिए एक सजीव माता के रूप में है। 'माँ' शब्द के अंदर विश्व की श्रेष्ठतम श्रद्धा के भाव निहित हैं। जिसे हम माँ मानते हैं, उसके सम्मान के साथ खिलवाड़, हम एक क्षण के लिए भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। चाहे हमें उसके लिए प्राण ही क्यों न देने पड़ें, पर मातृभूमि की ओर बुरी दृष्टि से देखनेवाले को सहन नहीं कर सकते। यह मातृभाव ही आसेतु हिमाचल फैले इस विस्तृत भू-भाग के कण-कण के प्रति हमारे मन में श्रद्धा का जागरण करता है। फिर यहाँ के पेड़-पत्ते, नदी-नाले, पशु-पक्षी– सब हमारे लिए पूज्य बन जाते हैं। इसके कण-कण के प्रति पावित्र्य और एक-एक कंकड़ में ईश्वरत्व का साक्षात्कार होता है। हृदय की यह श्रेष्ठ भावना ही इस पवित्र मातृभूमि की सुरक्षा और सम्मान के लिए जीवन-सर्वस्व की बाजी लगाने की प्रेरणा देती है। राजस्थान की शुष्क मरुभूमि की एक-एक इंच भूमि के लिए हजारों-लाखों राजपूतों का बलिदान इसी भावना की अभिव्यक्ति है। मातृभूमि के प्रति यह भावना यदि नष्ट हो गई, तो कोई भी समाज अपने देश की रक्षा नहीं कर सकता।

क्या अपने समाज में मातृभूमि के प्रति यह उत्कट भाव आज जागृत है? मैं साधारण लोगों की बात नहीं करता। जब हमारे श्रेष्ठ पुरुष भी कहते हैं कि अमुक भाग में घास का एक तिनका भी नहीं उगता, उसके लिए लड़ाई-झगड़े क्यों किए जाएँ? तब तो यही लगता है कि मातृभूमि के प्रति हमारी निष्ठा समाप्त हो गई है। इस खंडित निष्ठा के बल पर हम आक्रमणों का सामना कदापि नहीं कर सकेंगे। देशभक्ति की प्रखर भावना

ही किसी राष्ट्र के नागरिकों को देश के लिए बलिदान की प्रेरणा देती है। यह भक्ति, यह श्रद्धा ही समाप्त हो गई, तो बलिदान की भावना का स्रोत ही सूख जाएगा।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मातृभक्ति की इस उत्कट भावना की कमी के कारण ही देश-विभाजन का दुर्भाग्यपूर्ण प्रसग उपस्थित हुआ। आज लोग कहते हैं कि उस अपमानजनक प्रसग को भूल जाओ। पर क्या कोई भी देशभक्त उसे भूल सकता है? कोई राष्ट्र इस प्रकार अपनी अस्मिता को बेचकर स्वाभिमानपूर्वक जीवित नहीं रह सकता।

उत्कट राष्ट्रभाव

आवश्यकता इस बात की है कि हम उत्कट राष्ट्र-भावना को जागृत करें। एक-एक व्यक्ति के अत करण में मातृभूमि के प्रति आत्मीयता और श्रद्धा का जागरण करें। उसी जागरण से देश के लिए करने और मरने की वृत्ति पैदा होगी। तब राष्ट्रीय अपमान सहन नहीं होगा। फिर देश के किसी भी भाग पर सकट आने पर आसेतु हिमाचल भारत का बच्चा-बच्चा उसके प्रतिकार के लिए जीवन-सर्वस्व की बाजी लगाने को उद्यत होगा। देश का यह चैतन्ययुक्त सगठित जीवन ही सब समस्याओं का अत करके आक्रमणकारियों से देश की रक्षा कर सकेगा।

केवल समझौता, सधि और नि शस्त्रीकरण के बाह्य उपायों द्वारा विनाशकारी युद्धों को रोकने में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। जब तक हृदय में सपूर्ण चराचर के साथ एकात्म भावना की प्रबलता नहीं होती, तब तक अपने स्वार्थ के लिए दूसरे की वस्तु पर अधिकार करने का स्वभाव नहीं बदल सकता।

स्थायी शाति का मार्ग

विश्व में कोई भी व्यक्ति शाति का विरोधी नहीं है। कोई भी ऐसा नहीं है, जो शाति का उपासक न हो। सभी युद्ध को टालना चाहते हैं। फिर भी ऐसे सर्वनाशकारी युद्ध हो जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि सपत्ति के विषम विभाजन और देश के अधिकाश मनुष्य-समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण युद्ध का होना अवश्यभावी है। कहते हैं कि जब मनुष्य का पेट भरा होगा, जब वह सतुष्ट होगा, तब युद्ध की सभावना नहीं रहेगी। किंतु मैं पूछता हूँ कि क्या ऐसा निश्चयात्मक रूप

से कहा जा सकता है? यह सोचने का क्या आधार है कि सारी आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर मनुष्य और अधिक की प्राप्ति के लिए नहीं लड़ेगा?

मेरे दृष्टिकोण से तो युद्ध के वास्तविक कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं। अधिक से अधिक वस्तुओं पर अधिकार जमाने की, उनको केवल अपने लिए लेकर दूसरों को उससे वंचित करने की लालसा ही युद्ध का कारण बनती है। प्राचीन ईशावास्योपनिषद् के प्रारंभ में दिए हुए मंत्र—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।

की भावना से कि सब कुछ ईश्वर का है और जो ईश्वर की वस्तु आवश्यकता से अधिक लेता है, वह अपराध करता है। इस अधिकार-लोलुपता जो युद्ध का कारण है को दूर कर स्थायी शांति की स्थापना हो सकती है।

५ हिंदी को विश्व की भाषा बनाना है

(हरियाणा प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, रोहतक में २ मार्च १९५० को दिया गया भाषण)

हिंदी विषय संबंधी मेरे विचार सर्वश्रुत ही हैं। अन्य भाषाओं का हिंदी से कलह होने को कोई प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता। संपूर्ण देश हमारा है। आजकल से ही नहीं तो अति प्राचीन काल से इस देश में वास्तव्य करनेवाले सब हमारे हैं। इस देश की सभी भाषाएँ हमारी ही हैं, हमारे राष्ट्र की हैं। पूर्व काल में जब हमारा देश स्वतंत्र था, तब यहाँ का सब व्यवहार संस्कृत में ही होता था। धीरे-धीरे संस्कृत की जगह प्राकृत ने ली तब उसी संस्कृत भाषा से प्रांतीय भाषाओं के रूप में अनेक भाषाओं का उद्भव हुआ।

अभी अस्तित्व में सभी प्रांतीय भाषाएँ उस एक ही संस्कृत की कन्या होने के कारण सबमें परस्पर समानता है। सभी समान प्रेम और आदर की पात्र हैं। उनमें छोटे-बड़ेपन का सवाल ही पैदा नहीं होता।

ये प्रांतीय भाषाएँ उत्पन्न होने के बाद भी राजकाज की भाषा संस्कृत ही थी। प्रांतों में लोग अपनी-अपनी मातृभाषा में व्यवहार चलाते थे, परंतु सार्वत्रिक व्यवहार के लिए संस्कृत का ही अवलंब किया जाता था।

परकीयों के अमल में सस्कृत का उच्चाटन करने का प्रयत्न किया गया। मुगलों ने फारसी भाषा व अंग्रेजों ने अंग्रेजी भाषा को व्यवहार का माध्यम बनाया, परतु अब देश स्वतत्र हुआ है। अव अपनी स्वत की भाषा ही उनकी जगह आ सकती है।

इस स्थिति में गीर्वाण वाणी सस्कृत की कन्या हिंदी का ही वहाँ स्थानापन्न होना योग्य है। सर्वप्रातीय भाषाएँ यद्यपि समान हैं तो भी सार्वजनीन, सार्वदेशिक व राजकीय व्यवहार के लिए एक ही भाषा रहना आवश्यक है। यह भाषा सर्वाधिक विस्तृत, सहज तथा सर्वाधिक लोगों को समझ आनेवाली 'हिंदी' हो सकती है। इसलिए हिंदी को वह स्थान प्राप्त होना ही सुयोग्य है।

ऐसा होने से प्रातीय भाषाओं का महत्त्व कम होगा, ऐसा नहीं। सर्व देशभर में हिंदी का जो स्थान है, वह अपने-अपने प्रात में प्रातिक भाषाओं को है। वो भी हमारी ही हैं, परतु सर्वदेशीय व्यवहार के लिए एक भाषा ही हो सकती है, वह स्वाभाविकत हिंदी है।

आज राजसत्ता द्वारा स्वीकार करने के कारण से नहीं, तो प्राचीन काल से ही हिंदी सपूर्ण देश की भाषा है, इसी दृष्टि से प्रचलित है।

तीर्थ-यात्रा के लिए सुदूर दक्षिण से आनेवाला यात्री बद्रीनारायण, प्रयाग या काशी में हिंदी भाषा का प्रयोग करके ही— फिर टूटी-फूटी ही क्यों न हो— अपना व्यवहार चलाता है।

और भी अनेक उदाहरण दे सकते हैं। इस पर से यही सिद्ध होता है कि परकीयों के अमल में सस्कृत के बाद सार्वदेशिक भाषा का स्थान हिंदी ने ही प्राप्त किया था। और वही स्थिति आज तक चली आ रही है। राजसत्ता की मान्यता से इस सत्य स्थिति को हमने स्वीकार किया है।

परतु हिंदी विषयक प्रस्ताव पारित कर घर बैठे तो कुछ नहीं होनेवाला। हमें हिंदी को सच्चे अथ में सपन्न भाषा बनाना है। हिंदी के विषय में प्रखर स्वाभिमान की भावना जागृत करनी चाहिए। अपने कर्तृत्व से जगत् की सर्वश्रेष्ठ भाषाओं में उसे सन्मान्य स्थान प्राप्त करा देंगे ऐसा आत्मविश्वास जगाना पडेगा।

आखिर इग्लिश सब जगत की भाषा कैसे बनी? उसका सर्वत्र हुआ प्रसार यह अंग्रेजों के कर्तृत्व का ही फल है। हम ऐसा निश्चय करें कि हिंदी

को केवल भारतवर्ष की ही नहीं तो सपूर्ण जगत् की भाषा बनाकर रहेंगे। अपने प्रयत्नों से हिंदी को ऐसी उर्जितावस्था प्राप्त करा देंगे कि जिससे अपने देश के ही नहीं तो सारे जगत् के विद्वान् हिंदी का अध्ययन गौरवास्पद मानेंगे।

इस आत्मविश्वास से आगे चलें। हिंदी को उस स्थान पर पहुँचाने के लिए प्रचड कार्यशक्ति आवश्यक है। यह कार्य सबकी एकत्रित व सगठित शक्ति से ही सम्भव है। इस दृष्टि से अपनी सब शक्ति इस कार्य में लगाकर हिंदी को उसका योग्य स्थान शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करा देंगे।

६ ग्राम की एकता

(सन् १९५२ की दीपावली के पूर्व पुणे के पास चार दिवसीय वर्ग में १५० स्वयसेवकों ने शिवणे ग्राम के ग्रामीणों के साथ मिलकर १२०० फुट लबा एक रास्ता तैयार किया था। गॉव की एकजुटता से बना यह कार्य देखने के लिए श्री गुरुजी विशेष रूप से शिवणे गए थे। उस अवसर पर हुआ भाषण)

ग्रामीणों ने अपने परिश्रम और स्वावलबन से गॉव की एकता की सच्ची भावना से यहॉ रास्ता बनाकर एक कदम आगे बढाया है। अपने देश का विस्तार रामेश्वर से बद्री-केदार व सोमनाथ से पुरी तक है। हम सब हिंदू इस देश के स्वामी हैं। विदेशियों ने हममें फूट डालने के प्रयत्न किए। उन्होंने अपने देश में भाई-भाई, प्रात-प्रात व भाषा के भेद का जहर बोया। आज स्वतत्रता के काल में भी हम काग्रेस, समाजवादी, शेतकरी, कामगरी पक्ष जैसे नए दलीय भेद के साथ सत्ता के लिए लड रहे हैं। प्रत्येक दल में कुछ अच्छे लोग भी हैं, किंतु दलीय स्वार्थ आडे आता है। इसलिए सभी लोग केवल दूसरों की त्रुटियॉ ही ढूॅढते हैं।

विदेशों से आनेवाली सहायता अथवा यत्रों पर निर्भर रहकर हम अपने देश का विकास नहीं कर सकते। (भिक्षापात्र अवलबिणे, जलो जिणे लाजिरवाणे) भिक्षापात्र का अवलबन और लज्जाजनक जीवन– यह अपने साधु-सतों की सीख नहीं है। गॉव के ही लोग स्वय के पैरों पर खडे हों

और अपने गाँव की उन्नति के लिए यत्न करें, यही श्रेष्ठ है।

उत्तरप्रदेश में सघ-स्वयसेवकों ने परिश्रमपूर्वक विकास-योजनाएँ चलाई हैं। इन योजनाओं का आधार एकता व सहयोग है। इस विश्वास से कि अपने गाँव की न्यूनताएँ हम स्वय दूर करेंगे, ८-१० गाँवों के लोग एकत्र आए। ग्रामीणों ने मिलकर घरों की आरोग्यवर्धक रचना की। मल-मूत्र की निकासी की व्यवस्था कर उससे खाद तैयार किया।

उन्होंने शिक्षा का प्रश्न भी हल किया। केवल बच्चों की शिक्षा-व्यवस्था करके रुके नहीं, प्रौढ-शिक्षा का भी प्रबध किया। अपने इतिहास, धर्म, देश की जानकारी और उसकी आवश्यकताओं, उसी प्रकार अपने गाँव में रोजगार के साधनों की प्रगति के प्रश्न पर ग्रामीण एकत्र आकर चर्चा और विचार-विनिमय करते हैं। इसके साथ ही भजन-कीर्तन आदि कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं। अब इन गाँवों के लिए नि शुल्क चिकित्सा-व्यवस्था भी हो गई है। सघ का ही एक स्वयसेवक, जो चिकित्सक है, प्रामाणिकता से अहर्निश सेवा करने के लिए वहां है।

आपस के भेदभावों को भूलकर हम सब एकत्र रहेंगे, सामाजिक अनुशासन अपने भीतर लाएँगे, हिदू-श्रद्धा के मानबिंदुओं की रक्षा करेंगे। अपना और समाज का जीवन सुखी बनाने के लिए जो-जो कार्य आवश्यक हैं, वह करने हेतु सघ अवश्य आगे रहेगा। आप लोग अपना गाँव आदर्श बनाने का प्रयत्न करें और पडोस के गाँवों को भी उसका पाठ सिखाएँ। एकता के आधार पर अपने गाँव को हम स्वय आदर्श बनाएँगे, इस भावना से सघ को देश की रचना का कार्य करना है।

७ साधुओं का दायित्व

(सन् १९५२ में अक्तूबर के द्वितीय सप्ताह में कानपुर में हुए सार्वभौम साधु सम्मेलन में)

साधु-सम्मेलन प्रतिवर्ष होता है। इस कारण भारतीय सस्कृति के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार होता है। ससार में रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि किस प्रकार जीवन में शाति आए और श्रेष्ठत्व का अनुभव करता हुआ वह आदर्श जीवन निर्माण करे। इसी कामना को लेकर समाज की रचना होती है और राज्यों के निर्माण के प्रयत्न होते हैं। आज विश्व

में भारतीय विचार-प्रणाली के अतिरिक्त दो विचारधाराएँ और दिखाई पडती हैं। एक तो पश्चिम का प्रजातत्रवाद है, जिसका प्रतिनिधित्व अमरीका और पश्चिमी यूरोप के देश करते हैं। दुर्भाग्य से भारत भी इसी ओर जाता दिखाई देता है। दूसरा गुट रूस तथा पूर्वी यूरोप से लेकर प्रशात महासागर तक के उन देशों का है, जो अपने को 'साम्यवादी' कहते हैं। अमरीकी गुट ने तो अर्थ और सचय की प्रणाली को प्रोत्साहन दिया है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से स्पर्धा करता हुआ दिखाई देता है। ऐसी विषमता को देखकर प्रजातत्रवाद के विरुद्ध साम्यवाद खडा है, परतु मानव के विकास के लिए उनके पास कोई योजना और कल्पना नहीं है।

दोनों गुट विश्व में शाति-सम्मेलन करते हैं और विश्वबधुत्व की घोषणा करते हैं, परतु उसके पीछे केवल अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करने की अभिलाषा ही दिखलाई देती है। अणुशक्ति का प्रयोग करके दोनों मानवता को नष्ट करने के लिए उद्यत हैं। महाभारत में अर्जुन ने पाशुपत-अस्त्र होते हुए भी उसका प्रयोग नहीं किया था, क्योंकि वह मानवता का नाश नहीं चाहता था। उसने यह सोचकर उसका प्रयोग नहीं किया कि उसके कारण आठ वर्ष तक अकाल पडेगा, यह भारतीय जीवन-प्रणाली का आदर्श है।

सम्मान व आत्मविश्वास की जागृति

आज उस तत्त्वज्ञान को जानने की आवश्यकता है, जिसके द्वारा मानव-मानव के बीच सच्ची बधुता प्रस्थापित हो सके। परतु यह किस आधार पर हो सकती है, इसका अनुभव और उसकी रक्षा एव उसे जीवन में उतारने का प्रयत्न हमें करना है। अखिल-विश्व मेरा घर है, ऐसी बुद्धि जिनकी हो गई है, वे ही विश्व में शाति फैला सकते हैं। इस मातृभूमि के पुत्रों ने सत्य का साक्षात्कार किया है और उसका ज्ञापन करके वैज्ञानिक दर्शन के रूप में हमारे सामने रखा है। यह सत्य प्रयोग से और अनुभूति से सिद्ध हो चुका है, अभी भी हो सकता है। *समाज के स्वाभिमान* और उसके स्वरूप की रक्षा करना, उसे स्वतत्र और श्रेष्ठ बनाना ही अपना कार्य है। आज लोगों को विश्वास नहीं होता कि हजारों वर्षों से दासता में पला हिंदू-समाज क्या इतना पराक्रमशाली हो सकता है? क्या वह दुष्टों के दमन में समर्थ हो सकता है? हमने साढे तीन सौ वर्ष पहले देखा है, जब मुसलमानों का शासन सारे भारत में था, उस समय कोई सिर उठाने का साहस नहीं करता था। दुर्भाग्य से औरगजेब जैसे अनेक मुगल-सम्राट

बनानेवाला जयसिंह जैसा पराक्रमी सरदार भी उसी की ओर से कार्य करता था। सारे देश का वातावरण विक्षुब्ध हो गया था, परंतु उस समय साधुमंडली ने ही कहीं राम के नाम से, कहीं कृष्ण के नाम से, कहीं शंकर की उपासना से, कहीं विष्णु की भगवद्-भक्ति से ऐसा जागरण किया कि देश की काया पलट गई। राम और कृष्ण के चरित्रों ने देश में ऐसा वायुमंडल बनाया कि यवनों के दरबार में नौकरी करनेवाले हिंदू सरदार शाहजी के यहाँ एक ऐसे बालक का जन्म हुआ, जिसने आठ वर्ष की आयु में गोरक्षा का ऐसा उदाहरण उपस्थित किया कि सारे बीजापुर राज्य में हड़कंप मच गया। उसने विदेशी के सम्मुख सिर झुकाने से इनकार कर दिया। आगे चलकर उसी तेजस्विता का परिणाम यह हुआ कि आसेतु हिमाचल, कटक से अटक तक हिंदू का गौरव बढ़ा।

अंग्रेजों ने जिस समय भारत में मानसिक गुलामी लाने के लिए षड्यंत्र रचा, उस समय भी तेजस्विता की ज्योति फैलानेवाले साधुओं की परंपरा निर्माण हुई। विवेकानंद, रामतीर्थ, रमण और अरविंद ने देश में जागृति पैदा की।

मार्गदर्शन की अपेक्षा

विवेकानंद ने तो विदेशों में जाकर वहाँ के लोगों को भारतीय दर्शन सुनाकर चकाचौंध कर दिया। उनका सम्मान हुआ, उससे जनता में आत्मविश्वास की भावना जागृत हुई।

भारत ने आत्मसाक्षात्कार किया, जिसके परिणामस्वरूप ऐसा जनजागरण हुआ कि इंग्लैंड को भारत में अधिक दिन ठहरना असंभव हो गया, परंतु इसका श्रेय उन्हीं अकिंचन साधुओं को है जो निष्काम भाव से, परमार्थ की भावना से प्रेरित होकर कार्य कर रहे थे। हमारी साधु-वर्ग से वही अपेक्षा है, जो पुत्र माता से रखता है। एक घटना है कि किसी माता का एक ही पुत्र था। बचपन में चोरी करने पर भी वह उससे कुछ नहीं कहती थी। जो उसकी शिकायत करता, उसे डॉटकर भगा देती थी। बड़ा होने पर वह डाकू बन गया। बड़ी डकैती में पकड़े जानेपर उसे फाँसी की सजा सुनाई गई। उसने अपनी माँ के पास जाकर बात करने की अनुमति माँगी और वहाँ जाकर उसने उसका कान चबा डाला। कचहरी में लोग चिल्लाए कि क्या पागलपन करता है। उसने उत्तर दिया— 'यदि मेरी माँ बचपन से मुझे शिक्षा देती, तो यह नौबत न आती। अतः यह भी दंड की

भागी है।' अपने यहाँ के राष्ट्रजीवन में सही मार्गदर्शन की अपेक्षा हमारे साधु-संतों से है।

अपनी संस्कृति का प्रतीक भगवा यज्ञ की ज्वालाओं को प्रकट करता हुआ, हमारा जीता जागता और बोलता हुआ आदर्श है। उसी का संदेश घर-घर पहुँचानेवाली यह साधु-मंडली है। हमें अपने व्यवहार में अपरिग्रहवृत्ति निर्माण करने की आवश्यकता है। दुर्बल समाज भी एक बार फिर से श्रेष्ठत्व का अनुभव कर सके, उसके पराक्रम के आगे दुष्ट ठहर न सकें, ऐसा समाज-जीवन आत्मीयता की भावना से हमें निर्माण करना होगा, परंतु इस भावना को लेकर कि मैं इस धन का स्वामी नहीं हूँ, यह तो परमात्मा के द्वारा मुझे अपने समाज के लिए मिला है, इसका उपयोग मैं समाज के लिए करूँगा— यह धारणा लेकर प्रत्येक के जीवन में आत्मीयता का भाव भरने हेतु हम साधु-मंडली का मार्गदर्शन प्राप्त करना अपना उद्देश्य समझते हैं।

८ विदेश-नीति

(अपने देश की विदेश-नीति क्या हो, इस विषय पर २३ मार्च १९५४ को नागपुर के इतवारी रोटरी क्लब द्वारा आयोजित सभा में व्यक्त विचार)

इस पृथ्वी पर किसी भी राष्ट्र का जीवन पूर्णरूपेण स्वतंत्र नहीं रहता। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से संबंध आता है। उनमें परस्पर अनेक प्रकार का आदान-प्रदान चलता रहता है। इसके परिणामस्वरूप समय-समय पर जो स्थितियाँ निर्माण होती है, उनमें अपना व्यवहार कैसा रहेगा, इनका समुचित विचार करना आवश्यक है।

संसार का चित्र

पृथ्वी का चित्र देखें तो मानव का समूहीकरण कहीं धर्म से, कहीं राष्ट्रीयता से हुआ है। कुछ स्थानों पर दोनों से हुआ है। पश्चिम में मुसलमानों और ईसाइयों के ऐसे अनेक स्वतंत्र राष्ट्र हैं, जिनमें विस्तार की भावना विद्यमान है और जिनके साथ हमारा संपर्क शत्रुता या मित्रता का हो सकता है। उन राज्यों के प्रति सद्भावना रखनेवाले तद्धर्मीय लोग हमारे देश में संगठित रूप से विद्यमान हैं। अपने उत्तर में चीन और उसके परे

जापान है। इस प्रकार आग्नेय क्षेत्र में छोटे-छोटे देश हैं, जो पश्चिम के पूँजीवादी एव जनतत्रीय पश्चिमी गुट के एक प्रभावशाली सदस्य फ्रास के साम्राज्यवादी दासत्व से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील हैं, जो स्वाभाविक रूप से शत्रु के शत्रु को अपना मित्र मानकर केवल विरोधी भाव के आधार पर ही रूस और चीन से सहायता लेते हुए, उसके प्रभाव क्षेत्र में दृष्टिगत होते हैं। पडोस में ब्रह्मदेश (म्यामार) है, जिसका कल तक अपने से अभिन्न सबध था। दक्षिण में सिहल (लका) है, जो अपनी ही भूमि का एक अग है, किंतु आज की राजनैतिक परिस्थिति में अलग है। उत्तर में नेपाल और भूटान हैं, जो सदैव से हिंदू राज्य के नाते रहे हैं। शेष अफगानिस्तान से मिस्र तथा मोरक्को तक अनेक छोटे-बडे मुस्लिम देश हैं। दूसरी ओर रूस, उसके आगे जर्मनी फ्रास आदि यूरोपीय देश हैं। महासागर को पार कर अमरीका है, जिसके दक्षिणी भूखड में भी अनेक छोटे-छोटे राज्य दिखाई देते हैं। अफ्रीका में वहाँ के निवासियों का अपना कोई राज्य नहीं है, यूरोप की भिन्न-भिन्न जातियों ने वहाँ के मूल निवासियों को दबाते हुए अपने उपनिवेश कायम किए हैं। भारतीयों ने भी अपना पसीना बहाकर वहाँ के जगलों को साफ किया, खानों को खोदा और उसके रूप-रग को सँवारा।

विश्व मे हमारा स्थान

यह ससार का चित्र है। ऐसे चित्र में हमारा क्या स्थान है? हमारा देश विशाल है। यद्यपि वह अब छोटा हो गया है, तथापि उसकी विशालता बडों-बडों को खटकती है। जनसख्या की दृष्टि से यदि चीन को छोड दिया, तो इतनी बडी जनसख्या कहीं नहीं है। फिर चीन में भी अनेक पथ, उपपथ आदि हैं। एकरस जीवन की अनुभूति लेकर चलनेवाले हिंदू-समाज जैसा विशाल समाज कहीं नहीं है। हमारी परपरा अत्यत दिव्य, श्रेष्ठ और उदात्त है। अपना इतिहास पराभव का नहीं, पौरुष और पराक्रम का है। गत सहस्र वर्षों में अनेक आपत्तियाँ और आक्रमण होते हुए भी अपने जीवन को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए हमने सघर्ष किया है और उसकी सफलतापूर्वक सिद्धि की है।

कुछ लोग कहते हैं कि आज दुनिया में हमारा बहुत अच्छा स्थान है। हमारे प्रधानमत्री जब अमरीका गए तो उनका वहाँ जोरदार स्वागत हुआ। देश के समाचार-पत्रों में उस स्वागत के भव्य वर्णन तथा चित्र आदि छपे। यद्यपि स्वत अमरीका के पत्र में उसकी कोई विशेष चर्चा नहीं थी।

इग्लैंड में तो एक दिन उनके जाने तथा बाद में उनके लौटने के समाचार को छोडकर कुछ छपा ही नहीं। सयुक्त राष्ट्र सघ के रूप में जो सस्था भिन्न-भिन्न देशों के बीच सघर्ष के अवसर उपस्थित होने पर समझौते का मार्ग निकालने का प्रयत्न करने के लिए बनाई गई है, उसकी अध्यक्षा, हमारे प्रधानमत्री की भगिनी श्रीमती विजयालक्ष्मी पडित चुनी गई हैं। यह हमारे लिए आनद की बात है। किंतु मुझे तो इसमें हिंदुस्थान की वास्तविक प्रतिष्ठा की भावना नहीं, राजनैतिक चाल ही दिखाई देती है। सम्मान का आभास उत्पन्न करके राजनैतिक दृष्टि से यह एक प्रकार की घूस ही है।

क्या हमारी सीमाएँ सुरक्षित हैं?

राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की मुख्य कसौटी केवल बाह्य सत्कार नहीं हो सकती, बल्कि कुछ और ही है। आजकल राष्ट्र को छोडकर लोग केवल देश की बात करते हैं। क्या उसकी भी सीमा सुरक्षित दिखाई देती है? उसपर आक्रमण करने का किसी को साहस न हो, ऐसी स्थिति है? इस देश के किसी बालक को तो क्या, कुत्ते को भी छेडने की हिम्मत न हो, ऐसी बात है क्या? उत्तर नकारात्मक ही मिलेगा। रोज सीमा पर आक्रमण होते हैं। कभी स्त्रियाँ भगाई जाती हैं, तो कभी पशु-धन या धान्य लूटा जाता है। यह अपनी प्रतिष्ठा या सामर्थ्य के परिचय का लक्षण नहीं है। सुरक्षा की दृष्टि से अपनी अवस्था दुर्बल है। पाकिस्तान बनाकर हमारे नेताओं ने अपने ही घर में अपना प्रत्यक्ष शत्रु खडा करने की जिस असामान्य राजनैतिक चतुराई का परिचय दिया है, वह अलौकिक है। उसने अमरीका से सैनिक समझौता करके अपने इरादों को स्पष्ट कर दिया है। अब हमारे नेता भी कहने लगे हैं कि इससे आक्रमण को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन मिला है।

उत्तर में चीन, तिब्बत को खा बैठा है और मानसरोवर तथा बद्रिकाश्रम तक अपना अधिकार जताता है। नेपाल और भूटान में चोरी से शस्त्रास्त्र भेज रहा है। घुसपैठ हो रही है। असम तक आतक जमाने के प्रयत्न चल रहे हैं।

चीन या पाक की चिंता करने का कोई कारण नहीं। हमारा समाज यदि सच्चे स्नेह से जागृत हुआ तो चिंता का विषय रहता ही नहीं। हमें अपनी फौज पर पूरा भरोसा है। पर अपने राजनैतिक नेताओं पर विश्वास रखना जरा कठिन बात हो गई है। सच्चा विश्वास तो जनसाधारण पर रहता है।

शक्ति-गुटों की चाल

राष्ट्रों के बीच हुए संघर्ष को शांतिपूर्ण ढंग से हल करने हेतु राष्ट्रसंघ का निर्माण किया गया है, परंतु इस राष्ट्रसंघ का रवैया हमारे प्रति कुछ ठीक नहीं है। उसपर प्रबल देशों का प्रभाव है। उन राष्ट्रों के उसमें स्वार्थ भी रहते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाही उनके अनुकूल रहती है। अपने संघर्ष के संबंध में सत्य प्रश्न को छोड़कर अन्य प्रश्नों पर ही बातचीत हुई। हमारे प्रदेश पर आक्रमण हुआ, इसलिए यह भाग खाली करने के लिए कहा जाना चाहिए था, परंतु उन बातों को छोड़ दिया गया। इस लड़ाई में सूक्ष्म दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव ऊ-थांट ने मारनेवालों और मार खानेवालों को समान ही माना है। ऐसे में संयुक्त राष्ट्र संघ पर विश्वास रखना हमारे लिए अनुचित होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ में इस समय सत्ता की राजनीति के अलावा और कोई तथ्य नहीं है। उसका कार्य पूर्णतया निष्फल है। इसलिए यह संघर्ष बना रहेगा।

शीत-युद्ध की स्थिति

जागतिक दृष्टि से जो शीत-युद्ध की परिस्थिति दिखाई देती है, यह भी हमारे लिए संकट का कारण बनी हुई है। जगत् पर प्रभुत्व जमाकर अपना साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा रखनेवाले दोनों शक्ति-गुट अपनी-अपनी चाल चल रहे हैं। उनकी अलग-अलग विस्तारवादी योजनाएँ हैं। अमरीका ने जनतंत्र की दुहाई और डॉलर को अपना आधार बनाया है। रूस ने चारों ओर अपने सैनिक अड्डे स्थापित करने की इच्छा से ही पाकिस्तान में अपना अड्डा स्थापित करने का प्रयास प्रारंभ किया है। कश्मीर में गोलमाल करने का प्रयत्न भी इसी दृष्टि से हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर का प्रश्न इसीलिए उलझा हुआ है। यदि हम अमरीका को अड्डे देना स्वीकार कर लें, तो एक दिन में फैसला हो जाए, किंतु इस प्रकार किसी के दबाव में आकर अपमानकारक फैसला करवाने के लिए सहायक बनना हमें स्वीकार नहीं। अमरीका द्वारा भारत को धन-धान्य आदि की सहायता इसी आशा से दी जाती है कि हमारे मन में उसके प्रति अनुकूल भाव पैदा हों। ईसाई धर्मप्रचारक तक (दवा-दारू देने में) मनुष्य मात्र की सेवा निःस्वार्थ भाव से नहीं करते। इसी आशय से करते हैं कि यहाँ के लोग ईसाई बनकर हिंदुस्थान की भूमि तथा परंपरा के प्रति बेईमान हो जाएँ। इसलिए राजनैतिक संबंधों में निःस्वार्थ सहायता की आशा रखना

नितात अव्यावहारिक होगा। भारत को अपने गुट में मिलाने की आशा लेकर ही पचवर्षीय योजना आदि के लिए पैसा आता है। अमरीका का पैसा ही नहीं, उसके तत्रज्ञ, विद्यार्थी, पत्रकार और धर्म-प्रचारक भी बहुत बडी सख्या में यहाँ आते हैं। वे मन में कोरी सज्जनता का भाव लेकर नहीं आते। व्यवहार दक्षता से हमें उनकी नीति समझनी होगी।

वे तो जासूसी के लिए यहाँ आते हैं। यहाँ की सीमाएँ, समस्याएँ, पक्षोपपक्ष, उनके परस्पर सबध तथा अपने लिए किसका उपयोग किया जा सकता है, इसकी पूर्ण जानकारी वे अपनी सरकार को देते हैं। देश के जितने अच्छे मानचित्र यहाँ की सरकार के पास होंगे, उससे कही अधिक सूक्ष्म मानचित्र, जिनमें पगडडियाँ तक दिखाई गई हैं, अमरीका तथा रूस ने तैयार किए हैं।

अपने सघकार्य के सबध में भी अमरीका ने जानकारी प्राप्त की है। उसे यही पता लगा है कि भारत में उसकी स्थायी प्रभाव-वृद्धि के मार्ग में सबसे बडी कोई बाधा है, तो वह सघ ही है।

भारत को युद्धक्षेत्र बनाने की चाल

अब जरा रूस का विचार करें। वह भी शात नहीं है। चीन, पूर्वी यूरोप के छोटे-छोटे राष्ट्र उसके प्रभाव-क्षेत्र में हैं। आग्नेय में हिदचीन आदि देशों को साम्राज्यवादी शक्तियों से मुक्ति का आश्वासन एव सहायता आदि देकर अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाने का प्रयास कर रहा है। अपनी साम्राज्यवाद की लालसा की पूर्ति के लिए सहायक अपने विचारों के लोग उसने हिदुस्थान में तैयार किए हैं। इस प्रकार पूर्वी यूरोप से प्रशात महासागर तक वह एक ऐसा शक्तिगुट तैयार कर रहा है, जो एग्लो-अमेरिकी गुट को परास्त कर विश्व पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर सके। इसीलिए अमरीका के समान वह भी धन और शस्त्रों की सहायता के द्वारा विभिन्न देशों में क्राति कराने के प्रयास कर रहा है।

इन दोनों गुटों में कभी न कभी सघर्ष आएगा ही। इसका कारण उनकी साम्राज्यलिप्सा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तात्त्विक दृष्टि से तो उनका अतर धीरे-धीरे कम हो रहा है, क्योंकि व्यक्ति-स्वातत्र्य का आधार लेकर चलनेवाले (पश्चिमी देश) धीरे-धीरे समूहवाद की ओर तथा समूहवाद का आधार लेकर चलनेवाले (साम्यवादी देश) व्यक्तिवाद की ओर बढ रहे हैं। दोनों गुटों में समाज-रचना का अतर तो कम है, किंतु दोनों ही

अपने-अपने उद्घोषों की विजय चाहते हैं, अर्थात् अपनी भूमि और वहाँ के लोगों का प्रभुत्व ससार पर स्थापित करना चाहते हैं। इससे अततोगत्वा सघर्ष उत्पन्न होगा।

एक वात और ध्यान रखने की है। दोनों ही पक्ष अपनी भूमि पर युद्ध नहीं होने देना चाहते। भावी युद्ध सर्वसहारक होने के कारण अपने राष्ट्र का विनाश उन्हें किसी भी स्थिति में अभीष्ट नहीं है। अत वे किसी ऐसे राष्ट्र को खोज रहे हैं, जिसकी भूमि विशाल हो, जहाँ अपार जनसख्या हो, जिसकी राष्ट्रीय भावना सुप्त हो और जिस राष्ट्र के विनाश से उन्हें कोई दु ख न हो। इस दृष्टि से भारतवर्ष उनके लिए मनचाहा देश हो सकता है। यह देश उनके साम्राज्य-निर्माण में सहायक हो, इसी आशा से हिंदुस्थान में भिन्न-भिन्न शक्तियाँ अपना खेल खेल रही हैं। यह आशा उनके मन में इसलिए पैदा हो सकी, क्योंकि जहाँ खुद का राष्ट्रभाव नहीं, वहाँ किसी की गुलामी स्वीकार करने में सकोच नहीं होता। यदि प्रखर राष्ट्रभाव हो तो उनकी दाल न गले।

सगठित राष्ट्र

ऐसी स्थिति में तीन मार्ग हमारे लिए सभव हैं। दोनों में से एक शक्ति-गुट के साथ मिलना अथवा दोनों से अलग तटस्थ रहना। असमान शक्तियों के गठबधन में दुर्बल की शक्ति अधिकाधिक क्षीण होकर बलवान को ही लाभ होता है। अमरीका और रूस दोनों ही बलवान हैं। हम किसके साथ टाँग बाँधें? यदि कहा जाए कि दोनों के साथ एक-एक टाँग बाँधें तो वह भी सभव नहीं है, क्योंकि दोनों के मार्ग भिन्न एव परस्परविरोधी हैं। अत दोनों के साथ टाँग बाँधना आत्महत्या करने जैसा होगा। अब केवल तीसरा मार्ग बचता है और वह है तटस्थ रहने का। किंतु तटस्थ केवल वही रह सकता है, जो दोनों से अपनी रक्षा कर सके और दोनों के सघर्ष में अपनी भूमि पर वह सघर्ष न होने दे।

तीनों ही अवस्थाओं में जागतिक सघर्ष के बीच भी अपने राष्ट्र-जीवन को अक्षुण्ण रखते हुए अपने राष्ट्र का उत्कर्ष करने के लिए यदि किसी बात की आवश्यकता है, तो वह है शुद्ध राष्ट्रवाद को जागृत कर उसको शक्तिसपन्न एव चैतन्ययुक्त बनाना। यदि राष्ट्र में सामर्थ्य है, तो किसी के साथ मिलना या न मिलना—इसका विचार बाद में हो सकेगा। आज तो बल उत्पन्न करने का कार्य प्रथम है। यह बल किसी तात्कालिक

समस्या के कारण चाहिए, ऐसी बात नहीं। अपितु सदासर्वदा के लिए चाहिए। इसलिए हमने परिस्थितिनिरपेक्ष राष्ट्र-संगठन का सिद्धात अपने सामने रखा है। संकट आएं तो काम करो और सकट टल जाए, तो सो जाओ– यह नीति हमने कभी अंगीकार नहीं की। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के रक्षण के लिए राष्ट्र को अहोरात्र सन्नद्ध स्थिति में रहना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र के हितचितन में सलग्न, एक सूत्र में गूँथा हुआ, अनुशासित और राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर रहे, हमें ऐसी अवस्था उत्पन्न करनी है। बिना इसके राष्ट्रजीवन सुचारु रूप से नहीं चलेगा। बडे-बडे आर्थिक राजनैतिक सिद्धातों की विवेचना चाहे हम कर लें, किंतु राष्ट्रजीवन को चलानेवाले प्राण का स्पदन जब तक ठीक नहीं, तब तक यह सब शव के शृगार जैसा ही होगा। हमारा काम तो ऐसा प्रबल जीवन उत्पन्न करना है, जो मृत्यु पर भी विजय पा सके। दुनिया साथ दे या विरुद्ध हो, हमें तो सभी अवस्थाओं में राष्ट्र का जागरूक सगठन खडा करना है।

शासन और सगठन

सगठन का विचार करते समय लोग स्वतन्त्रता-पूर्व और स्वतन्त्रता-पश्चात्– इस प्रकार के दो अलग कालखड बनाते हैं। वे कहते हैं कि सन् १९४७ के पूर्व अंग्रेज राज्य करता था। शासन, सेना, पुलिस सब उसकी थी, इसलिए उस समय अलग सगठन की आवश्यकता थी। किंतु अब तो शासन हमारा है, सेना हमारी है, पुलिस हमारी है। शस्त्रास्त्र के कारखाने थोडे ही क्यों न हों, हमारे पास हैं। आवश्यकता होने पर हम बाहर से भी शस्त्रास्त्र मँगा सकते हैं। शस्त्रास्त्र ले भी लेंगे क्योंकि गत महायुद्ध में अमरीकी हथियारों से ही अमरीकी तथा जर्मन सिपाही युद्ध करते थे। अत अब स्वतत्र सगठन के जाल में न उलझते हुए शासनसूत्र को अपने हाथ में लें, ताकि उसके आधार पर उपर्युक्त सभी साधनों पर अपना अधिकार हो जाए और हम सरलता से देश की रक्षा कर सकें।

प्रथम कार्य करे

किंतु सेना सामान्य समाज से ही तो तैयार होती है। यदि समाज में राष्ट्र-भावना का बोध नहीं, उसे देशभक्ति का ज्ञान नहीं, तो ऐसे समाज से बनी सेना पर भरोसा रखकर कहाँ तक लडेंगे? वह तो पैसे के लिए अपने को बेच देगी। फिर, सेना की शक्ति तो उसके पीछे राष्ट्र-भाव लेकर चलनेवाले समाज पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त आजकल के युद्ध

सर्वतोमुखी होते हैं। सेना को ही नहीं, समाज को भी पीछे रहकर रक्षा के रूप में रसद आदि जुटानी पडती है। गत महायुद्ध में वर्षानुवर्ष अंग्रेजों को पेट काटकर लडना पडा। उनका प्रखर राष्ट्र-भाव ही उनकी विजय का कारण बना। जिस कार्य की सर्वप्रथम तथा सर्वसमय आवश्यकता है, उसे पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है। बाकी बातें तो महासागर की लहरों की भाँति जीवन के सुख-दु ख के रूप में आती-जाती रहती हैं। राष्ट्रीय चेतनायुक्त, सुसगठित, सुसूत्र सामर्थ्य के निर्माण के अतिरिक्त और कुछ करणीय नहीं है। शक्ति होने पर चाहे जिसके साथ हाथ मिलाया जा सकता है। वैसे, तत्त्वत विचार करें तो हम जिस प्रकार धर्म और सस्कृति का आदर्श लेकर चले हैं, जिसमें व्यक्ति की प्रेरणा में समष्टि के सुख की उपासना निहित है, उसके अनुसार तो व्यक्ति-स्वातत्र्य का उद्घोष करनेवाले (चाहे उसमें सत्याश थोडा ही क्यों न हो) राष्ट्रों के ही हम अधिक निकट हैं, किंतु आज तो हमें स्वय को अजेय सामर्थ्यसपन्न बनाना होगा। फिर, हम किसी को भी आश्रय दे सकेंगे। किसी के आश्रय में स्वय जाने का तो प्रश्न ही हमारे सम्मुख नहीं आता। हम किसी के दयापात्र बनें, दीनता की भावना से किसी के साथ हाथ मिलाएँ, यह तो दासता से भी हीन तथा त्याज्य मनोवृत्ति है। हमें तो वह सामर्थ्य उत्पन्न करना चाहिए, कि लोग हमारी अनुकपा की लालसा करें। हम चाहें तो किसी पर कृपा करें ओर यदि न चाहें तो शक्तिगुटों को अपने बाहुबल से किनारे धकेलकर स्वतत्र एव प्रभुत्वमय मार्ग पर अग्रसर हों। प्रखर राष्ट्रभक्ति के अधिष्ठान पर ही राष्ट्र की यह स्थिति उत्पन्न हो सकेगी।

ि ि ि

६. गीता सर्वकष ज्ञान का भडार

(दिसबर १९५६ को नागपुर भोसले वेदशाला में गीता जयती पर दिया गया उद्बोधन)

जीवन के तत्त्वज्ञान के जो तीन आधार हैं, उन्हें 'प्रस्थानत्रयी' कहा जाता है। उसमें इस ग्रथ (गीता) का विशेष स्थान है। उस तत्त्वज्ञान पर बोलने का मैं अधिकारी नहीं हूँ। मुझे उसकी जानकारी भी नहीं है। मेरा परिचय कराते हुए जो यह कहा गया है कि मेरा जीवन, गीता की शिक्षा जीवन में उतारने की प्रेरणा देनेवाला है, वह सही है या गलत, यह मैं नहीं कह सकता। फिर भी सर्वसाधारण रीति से यह कहा जा सकता है कि

प्रत्येक व्यक्ति का अतिम साध्य मोक्ष है। अपने श्रेष्ठ महापुरुषों द्वारा कहे गए इस वाक्य पर मेरी श्रद्धा है तथा यही मैं दूसरों को भी कहता हूँ।

सर्वकष तत्त्वज्ञान

मोक्ष के सबध में जैसा गीता में सर्वांगीण विचार किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं किया गया। पूर्वजन्म के सत्कर्मों के परिणामस्वरूप बुद्धि व सद्गुणों का विकास जिसका जैसा हुआ होगा, वैसा ही उसका अधिकार भिन्न होता है। फिर भी सबको अध्यात्म-मार्ग पर आवश्यक एव सुकर मार्गक्रमण करने के लिए उपयुक्त प्रेरणा व मार्गदर्शन गीता से प्राप्त होता है। जो शुद्ध तपस्वी एव भावुक नहीं हैं, ऐसे सर्वसामान्य जनों के लिए आजकल का बहुघोषित कर्म मार्ग भी इसमें है। इसमें अनेकविध उपासनाएँ हैं। निराकार से साकार तक की अनेकविध जीवन-धारणाएँ भी इसी छोटे से ग्रथ में हैं। सर्वकष तत्त्वज्ञान प्रकाशित करनेवाला यह एक रत्न ही है। ऐसा पवित्र व श्रेष्ठ ग्रथ जिस दिन प्रकट हुआ, वह आज का यह गीता-जयती दिवस है। ऐसे दिन महोत्सव करना उचित ही है।

इस उत्सव के निमित्त लेख मँगाए गए, पाठातर की स्पर्धाएँ हुई, जिसके द्वारा पाठातर की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया गया। अपने देश में ऐसी अनेक सस्थाएँ हैं जो पाठातर की स्पर्धाएँ कराती हैं व पारितोषिक देकर पाठातर को प्रोत्साहन देती हैं। गीता कठस्थ करना उत्तम ही है। गीता के अत में कहा गया है कि हम दोनों का सवाद जो सुनेगा या सुनाएगा, उसे पुण्य प्राप्त होगा। यह फल-श्रुति बताई गई है। ज्ञानेश्वर ने कहा है कि निमित्त के विना भी पढो, मुख से उच्चारण करो। परतु इस कारण केवल तोते के समान कठस्थ करें यह अपेक्षा नहीं है। जो कठस्थ किया है, उसका अर्थ समझना पहली सीढी है। तदनुसार आचरण करना दूसरी सीढी है।

तदनुसार आचरण

मैं जिस कार्य से सबधित हूँ और जिसके कारण मुझे बडप्पन देने का मोह अनेकों को होता है, उस कार्य का प्रारभ जिस महापुरुष ने किया, उनकी एक बात बताता हूँ। एक बार उन्होने गीता पाठ करनेवाले एक अतिथि महोदय से साक्षात्कार किया। उनसे पूछा कि 'आप जैसा पाठ करते हैं, तदनुसार आचरण भी करते हैं क्या?' यह सुनते ही वे सज्जन नाराज हो गए और बोले, 'क्या यह सब आचरण करने के लिए है? अरे इसको

तो पढने से ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है।' डाक्टर जी कहा करते थे कि अपने समाज की दुर्दशा ऐसी है कि हम तत्त्व का केवल उच्चारण करते है। यहाँ कहा जाता है कि सारी चराचर सृष्टि में एक ही तत्त्व व्याप्त है, परतु व्यवहार में देखा जाए तो यह कहनेवाला अपना ही समाज कितना विशृखलित है। अपने देवतागण शस्त्रधारी हैं और आततायियों पर शासन करने वाले हैं, परतु हमारा आचरण इसके विपरीत आततायियों के समक्ष आत्मसमर्पण करने का है।

एक सज्जन विलक्षण बुद्धि के हैं, उन्होंने एक बार कहा कि 'ईसा की शिक्षा है कि यदि कोई एक गाल पर थप्पड मारता है, तो दूसरा गाल सामने कर दो। अहिसा का ऐसा ही उपदेश देनेवाले भगवान बुद्ध का भी यही संदेश है। दोनों ही अहिसक हैं, परतु उनके अनुयायी मात्र हिसा का अवलबन कर राज्यप्राप्ति करने का प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं। इसके विपरीत हमारे देवता पराक्रमी, शस्त्रधारी, अत्याचारों को निर्मूल करनेवाले हैं, फिर हम ऐसे क्यों हैं?' मैंने कहा कि हम दोनों ही अपने देवताओं को भूल गए हैं। वे अपने अहिसक देवताओं को भूल गए हैं और हम अपने पराक्रमी देवताओं को। तात्पर्य यह है कि ग्रथ के पाठ का जीवन पर उपयुक्त प्रभाव होना चाहिए। अत्यत व्यावहारिक, आध्यात्मिक विचारों का आकलन न कर सकनेवाले सामान्य लोग हैं। जो स्वत को इससे भिन्न समझते हैं, निश्चित ही ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों को छोडकर मैंने यह बात कही है। सामान्य मनुष्य ध्यान लगाकर बैठ नहीं सकता, तपस्या, आसनादि कर नहीं सकता, ज्ञानेश्वरी के छठे अध्याय में वर्णित कुडलिनी आदि विषयक शब्दप्रयोग उसकी दृष्टि में इतने दुर्बोध हैं कि काल्पनिक ही प्रतीत होते हैं। ज्ञान की उपासना करने के लिए भी सयम करना पडता है। अतर्बाह्य शुद्धि की आवश्यकता होती है। वह उसे रख नहीं सकता। भक्ति सुगम है– ऐसा कहते हैं, परतु मन में भावुकता हो, तभी वह सुगम है। सामान्य जनों के लिए वह सुगम नहीं है।

गीता की शिक्षा है कि सद्भावनायुक्त होकर सत्कर्मरत होने से पतन का भय नहीं रहता, उत्कर्ष का मार्ग स्वत ही प्रशस्त होता है। एक जन्म में पूर्ण विकास न हो तो भी आगामी अनेक जन्म हैं ही। एक ही जन्म से जीवन पूर्ण हो गया– ऐसा दरिद्री विचार अपने धर्म में नहीं है। अनेकों जन्म मिलते हैं और उन्हीं में से अपना विकास होगा ऐसा आश्वासन अपने यहाँ दिया गया है। अब कहते हैं कि कर्म करें, प्रयत्न करें। कर्म का अर्थ

है – कल्याण करनेवाला काम। कोई दान-धर्म करते हैं, अन्न समर्पण करते हैं, जब गीता कही गई, उस समय अधर्म का डका बज रहा था तथा सत्ता के जोर पर धर्म को नष्ट किया जा रहा था। धर्मसत्ता प्रस्थापित करना ही प्रमुख कार्य समझकर सबको अपने-अपने धर्म में स्थिर कर धर्म की सुव्यवस्था करना– यही श्रेष्ठ कर्तव्य है। क्या धर्मशाला बनाना, अन्नदान करना, इन कामों से जनकल्याणव्रत की पूर्ति होगी? जो गीता आदि शास्त्रों के अनुयायी हैं, उनके लिए एक सकलित शब्द 'हिदू' है, शास्त्रानुगामी हिदुओं का प्रभुत्वसपन्न धर्मजीवन यही अपना विचार है। ऐसा जीवन आज नहीं है। आज परकीयों का सकट तो है ही, स्वकीय भी परधर्म स्वीकार कर अपने ही नाश के लिए तैयार हैं। तत्त्वज्ञान व सद्गुण-परपरा का अधिष्ठान व्यक्ति-व्यक्ति के अत करण में बनाकर सद्धर्मरूप से राष्ट्रधर्म गतिशील रहे, यह करना ही कल्याणकारी कर्म है।

यह करते समय अनेक समस्याएँ खडी होंगी। पाडवों के समान हम सौ, और पाँच मिलकर एक सौ पाँच हैं, यह कहने पर भी गृहयुद्ध का प्रसग सामने आ खडा हुआ है। अपने ही समाज के होने के बाद भी समाजद्रोही व स्वधर्मद्रोही कार्य करने वाले व्यक्तियों के बारे में भिन्न-भिन्न विचार उत्पन्न होते हैं। उससे सभ्रम की सभावना है।

कुछ दिन पूर्व मुबई में एक बडे नेता का सत्कार-समारोह हुआ। उनका नाम आप सबको ज्ञात ही है। श्री डागे विश्वप्रसिद्ध नेता हैं, विद्वान् हैं, परतु उनका प्रेम अपने राष्ट्र के शत्रु पर ही अधिक है। आप सबको ज्ञात ही है कि कुछ वर्ष पूर्व भाषावाद के परिणामस्वरूप एक विशेष प्रकार का अभिमान उत्पन्न हुआ। उसमें से भानुमती का पिटारा खुला। ऐसे प्रसग पर इन्हें गले से लगाना उचित है या नहीं, इन्हें नेतृत्व देना कहाँ तक उचित है, इसका कोई विचार नहीं हुआ। इस समय उनके सत्कार-समारोह का प्रश्न उपस्थित हुआ है। क्या यह अपने राष्ट्र की परपरा के अनुकूल है? राष्ट्र-जीवन की स्थापना एव स्वत्वरक्षा के लिए क्या वे पोषक होंगे? यदि नहीं तो अभिनदन करना उपयुक्त न होगा, फिर वह व्यक्ति कितने भी प्रकार से अपना हो? किसी राष्ट्र में किसी व्यक्ति का ६१वाँ जन्मदिन सार्वजनिक समारोह के रूप में क्यों मनाया जाता है? इसलिए नहीं कि वह व्यक्ति अतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है, अपितु इसलिए कि उस व्यक्ति ने अपना जीवन राष्ट्र-जीवन को पवित्र व समृद्ध करने के लिए खपाया है।

हमें विवेक से काम लेना चाहिए। क्या अपना है और क्या अपना नहीं, यह विवेक आवश्यक है। श्रीकृष्ण ने विवेक द्वारा अपना-पराया पहचाना, परतु बलराम के लिए यह सभव न हुआ। पाडव अपने हैं, उनका राज्य यही धर्मराज्य होगा, अन्य समान रूप से ही अपने सबधी होने के बाद भी अधर्मी हैं। यद्यपि उनमें भी भीष्म आदि कुछ श्रेष्ठ पुरुष थे, परतु आज की परिभाषा में कहना हो तो वे कौरवों के सहयात्री (फेलो ट्रैवलर्स) हो गए थे। वास्तव में तो भीष्म की गणना अत्यत श्रेष्ठ भगवद्भक्तों में होती है। भगवान ने पाडवों को धर्म के भिन्न-भिन्न अगों की शिक्षा का उपदेश भीष्म के द्वारा कराया। वह इतने श्रेष्ठ अधिकारी थे कि उनकी प्रतिष्ठा बढाने के लिए स्वय भगवान कृष्ण ने अपनी प्रतिज्ञा तोडकर हाथ में शस्त्र धारण किया। शरशैया पर होने भी पर भीष्म द्वारा उन्होंने शास्त्रों का विवेचन कराया। फिर भी धर्म के विरुद्ध होकर अधर्म का साथ देने के लिए खडे होने पर भीष्म की शक्तिसपन्नता नष्ट कर उन्हें नि सत्व करने के लिए श्रीकृष्ण ने प्रयत्न किए। यह चाचा है, वह मामा है, यह नातेदार है, ऐसा मोह उत्पन्न हो सकता है। शल्य, पाडवों का मामा, निकट का सबधी था, परतु उसके असत्-पक्ष में खडे होने के कारण 'अहिंसा परमो धर्म' कहनेवाले युधिष्ठिर ने उसे मार डाला।

ॐ ॐ ॐ

१० विद्यार्थी देश के मालिक नही, सेवक

(१७ दिसबर १९६० को गुजरात विश्वविद्यालय के 'स्कूल ऑफ सोशल साइन्स' के विद्यार्थियों के सम्मुख दिया गया उद्बोधन)

मनुष्य नाम व इद्रियभोगों की तृप्ति की कामना करता है। जब ये कामनाएँ प्रबल हो जाती हैं, तब वह नैतिक मूल्यों को भुलाकर अपनी वासनाओं की आपूर्ति में लीन हो जाता है। उसे अच्छे-बुरे का भी ध्यान नहीं रहता। यही विवेकशून्यता सारे दु खों-कष्टों का मूल है। यही परिस्थिति सामाजिक पटल पर भी दिखाई पडती है। कुछ सस्थाएँ धन-सचय में रुचि रखती दिखाई देती हैं। कुछ को सत्ता का मोह रहता है। इन आकाक्षाओं की पूर्ति अन्य लोगों के लिए विघ्न खडा करती हैं। इस प्रकार की आकाक्षा रखना मानव-स्वभाव है, किंतु यदि वे निर्धारित नीति-मूल्यों को ताक पर रखें तो परिणाम हानिकारक होंगे। साथ ही इस प्रकार की गई इच्छापूर्ति

स्वय की प्रतिक्रिया को स्पष्ट करती है। सपत्ति की लालसा, समान सपत्ति वितरण की विचारधारा को जन्म देती है। इस प्रतिक्रिया के पुरस्कर्ता (साम्यवादी) अपने प्रचार-कार्य में व्यस्त दिखाई देते हैं। इसी प्रकार सत्ता-लोलुपता के वशीभूत बहुत सारे छोटे-बडे देश स्वतत्रता-प्राप्ति या पुन प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। अफ्रीका की वर्तमान उथल-पुथल इसकी परिचायक है। यह प्रतिक्रिया क्रमश शात होकर क्रिया में परिवर्तित होती है। अत इस क्रिया पर भी प्रतिक्रिया निर्माण होती है। इस प्रकार यह अनिष्ट-चक्र घूमता रहता है तथा मानव-शांति व सौख्य को समाप्त करता है।

आज प्रत्येक नेता ऐसा प्रतिपादित करता है कि 'अपनी विचारधारा ही जग को शाति, सुख दिला सकती है'— उसकी प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता। मेरी केवल इतनी मान्यता है कि यह अनत क्रिया-प्रतिक्रिया, जो वर्तमान में दिखाई देती है, मनुष्य-जीवन में शाश्वत अस्थिरता ही ला सकती है। अत हमें यह विचार करना होगा कि क्या इससे अलग अन्य कोई पद्धति है, जो मानव-जीवन में चिरकाल तक सुख-शाति प्रदान करने में सक्षम हो। क्या इस इच्छा और तृष्णा से मनुष्य का छुटकारा है? मैं इच्छा, तृष्णा को नष्ट करने की बात नहीं कहता, किंतु उन्हें नियन्त्रित किया जा सकता है, जिससे शाति, समाधान मिल सकता है। इन्हें कैसे नियन्त्रित किया जा सकता है, यह देखना होगा। किंतु आज 'द्वद्व वाद' शास्त्र का बोलबाला है। प्रस्तुत विवादों से भय की बात नहीं। हिंदू इससे कभी घबराता नहीं, क्योंकि उन्हें यह विश्वास है कि इस जन्म की अपूर्ण आकाक्षाएँ पूर्ण करने का अवसर अगले जन्म में मिलेगा। किंतु यदि मनुष्य-समाज में सुख-शाति लाना है, तब इस समाज में कुछ व्यवस्था प्रतिष्ठित करनी होगी, जिससे इस निरतर विवाद से मुक्ति प्राप्त की जा सके। इसके लिए हमें अपने प्राचीन हिंदू तत्त्वज्ञान पर दृष्टि डालनी होगी। हिंदू समाज को किसी एक पाथिक विश्वास या आचार में बाँधकर नहीं रखा गया है, किंतु वह 'धर्म' से जुडा है। दुर्भाग्य से आज का कोई विद्वान् उसपर ध्यान देना नहीं चाहता। कोई रूस की ओर, तो कोई अमरीका की ओर दृष्टि लगाए हुए है। हम बिना समझे-बूझे अपनी धरोहर को ही अनुपयुक्त मानकर दूसरों की कृपा की अपेक्षा में झुके जा रहे हैं। हम बौद्धिक परावलबन के अभ्यस्त हो गए हैं।

हमारे पूर्वज 'मूर्ख नहीं थे, वे स्वय प्रज्ञ थे एव स्वतत्र विचार करने में सक्षम थे। शास्त्र-प्रयोग में उनका साहस रचमात्र कम नहीं था, यह आज

सिद्ध हो चुका है। केवल एक उदाहरण ही हम लें। आज वर्णसकर के प्रयोग प्राणियों (जानवरों) में हो रहे हैं, किंतु इस प्रकार के प्रयोग मनुष्य पर करने का साहस आज के तथाकथित आधुनिक वैज्ञानिकों ने नहीं किया। यदा-कदा कहीं कोई उदाहरण मिल भी जाए तो वह वैज्ञानिक शोध से नहीं, अपितु सासारिक भोग-लालसा के कारण है।

हमारे साहसी पूर्वजों ने मानवी स्वभाव के इस पहलू का सूक्ष्म अध्ययन किया तथा यह निष्कर्ष निकाला कि लालसा, तृष्णा पर नियमन ही समाज में सुख एव शाति ला सकता है। वर्तमान में साम्यवादियों द्वारा योजना बनाई जा रही है कि व्यक्ति के पास किसी प्रकार का सग्रह न हो, किंतु हमारे पूर्वजों की योजना भिन्न थी। वे भौतिक सग्रह की प्रवृत्ति पर ही अकुश रखना चाहते थे। गीता में 'अपरिग्रह' का प्रतिपादन किया गया है। इसका अर्थ है– 'मेरी सारी भौतिक सपदा ईश्वर की है और यह सपत्ति तभी सुखदायी हो सकती है, जब इसे प्रभु चरणों में, समाज सेवा में अर्पित किया जाए।' यह आवश्यक है कि हममें इसकी इच्छा, योजना एव परिपाठ हो कि हम इसे उत्सर्ग कर सकें। 'मैं' व 'मेरा'—इस भाव पर अकुश रखना होगा। पूर्वजों का हमें यह सदेश है कि हम कमाने के लिए परिश्रम करें, किंतु यह अर्जन केवल अपने लिए ही नहीं अपितु सारे समाज के हित में उपयोगी सिद्ध हो।

यह केवल मानसिक घोडे दौडाने जैसा नहीं है, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण भी हैं। हम अपनी अनभिज्ञता के कारण वर्णाश्रम धर्म की अवहेलना कर रहे हैं, किंतु यही एकमात्र व्यवस्था थी, जिससे सपत्ति सग्रह पर अकुश रखा जा सकता था।

यह वर्णाश्रम-व्यवस्था आर्थिक विकेंद्रीकरण अथवा राजकीय प्रशासन के उद्देश्य से नहीं बनी थी। उसे समस्त समाज को अपने उद्दिष्ट तक ले जाने के लिए प्रस्थापित किया गया था। हमारे सामाजिक जीवन का उद्देश्य मनुष्य का शरीर मात्र नहीं है। भोजन एव मकान उसे सतुष्ट नहीं कर सकते। उसमें भावना है, विचार करने की शक्ति है, इच्छाएँ हैं, जिनकी पूर्ति किए बिना उसे शाति नहीं मिल सकती।

मनुष्य जब समाज का घटक रहते हुए भी व्यक्तिगत आकाक्षाओं की पूर्ति में लग जाता है, तब समाज-रचना आन्दोलित होती है, जो परस्पर अविश्वास को जन्म देती है। इस भावना को रोकने की क्षमता मनुष्य की

विचार-शक्ति में निहित है। इस विचार-शक्ति की चरम सीमा तक पहुँचने पर हमारे द्रष्टाओं ने पाया कि वहाँ 'परम' का दर्शन होता है, जो अदृष्ट ससार एव दृष्ट ससार की एकरूपता का ज्ञान है। यही ज्ञान जीवन का ध्येय एव अत है। यही एकमात्र पवित्र शुद्ध मोक्ष है। इसकी अनुभूति मनुष्य को ही सभव है, क्योंकि इस विचार का अणुरूप उसमें विद्यमान है।

इन भौतिक तृष्णाओं के पीछे दौडने की अपेक्षा इस परम लक्ष्य को मन में रखकर इसकी अनुभूति साधने के अनेक प्रयोग हमारे देश में हुए हैं, किंतु सार यही है कि इस लक्ष्य को पाने हेतु उचित वातावरण, समाज व्यवस्था के निर्माण से ही हो सकता है, जहाँ व्यक्ति अपनी क्षमता व शक्ति के अनुरूप स्वय का विकास कर सकता है। यदि व्यक्ति चिताग्रसित हो, अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं के प्रति चिंतित हो, तो स्वाभाविक रूप से विकसित नहीं हो सकता। वर्तमान में शिक्षित लोग भी अपनी निजी आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए आजीवन व्यस्त रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में अतिम लक्ष्यप्राप्ति असभव है।

प्रश्न यह है कि इसका समाधान किस प्रकार की समाज-धारणा व समाज-रचना के आधार पर हो? समाज में कुछ विद्वान होंगे, कुछ उत्पाद एव व्यापारिक रुचि के होंगे, कुछ कठिन परिश्रमी होंगे। अपने पूर्वजों ने समाज में मुख्यत चार घटक देखे। वर्णप्रथा इन चार प्रकार के वर्णो का समायोजन मात्र है। जिससे हर व्यक्ति की क्षमता के अनुरूप सेवा भाव से समाज विकास में योगदान देकर स्वय एव समाज का समन्वित विकास कर सकें। यदि इस प्रकार की व्यवस्था चलती रहे, तब प्रत्येक को जीवनयापन के समान अवसर सहज एव निश्चित प्राप्त होंगे।

इसमें किसी प्रकार की होड के लिए स्थान नहीं है। यही वर्णाश्रम पद्धति का मूल है। दुर्भाग्य से वर्तमान में इसे अनुपयुक्त मानकर अनदेखा किया जा रहा है। इसलिए यह आवश्यक है कि इसका शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकन किया जाए। विशेषत इस विज्ञान-युग में हम पर इसका अधिक दायित्व है। इस उदिष्ट को पाने हेतु अनेक बातों की आवश्यकता है, जिसमें स्थिर राज्यतत्र एक प्रमुख घटक है।

इस प्रकार की समाज-रचना एक दिन में तो होने से रही। किंतु वर्तमान में अनेक आदर्श एव विचार एक दूसरे में उलझ गए हैं, जिसे 'प्रतिस्पर्धा' कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में हम सब इस विचारधारा को

कि 'पुराना सब त्याज्य है' छोड दें तथा इसे वैज्ञानिक आधार या दृष्टिकोण से देखें। प्रथम हम अपने देश के बारे में सोचें एव ठोस आधार पर सुसस्कारित, सुव्यवस्थित राष्ट्र का गठन करें, जिससे राष्ट्रीय भावना का प्रसार हो। इस देश में ऐसा समाज भी है, जो इस धरती को अपनी माँ मानता है। उसकी विशेष जीवन-पद्धति है, समान अधिष्ठान हैं, समान दर्शन है एव समान आकाक्षाएँ हैं। इस समाज को 'राष्ट्रीय समाज' की सज्ञा दी जा सकती है। मैंने यहाँ देश की व्याख्या, जो आधुनिक समाज शास्त्रियों द्वारा प्रदत्त है, दी है। इस सत्य के विस्मरण के कारण ही आज तक अनेक आपदाएँ आई हैं। देश के विभाजन से बडी पराजय और क्या हो सकती है? आज कश्मीर के सबध में हम इसी प्रकार का मानस बनाकर बैठे हैं। इसका एकमात्र कारण अपने पुराने इतिहास का विस्मरण तथा उसे झुठलाना है।

मेरी विद्यार्थियों से प्रार्थना है वे छिन्न-विच्छिन्न कल्पनाओं में न बहें। इस पर स्वतत्रता से विचार करें। मैं आपपर मिथ्या स्तुति-सुमन नहीं बिखेरूँगा। आपको 'देश के स्तभ' कहा जाता है, किंतु देश ऐसे स्तभों पर खडा नहीं होता। अतएव मैं केवल इतना ही कहूँगा कि आप देश के सेवक बनें, पूरी शक्ति से देश-निर्माण कार्य में लगें। केवल वही राष्ट्र प्रगति में अग्रणी होता है, जहाँ की युवाशक्ति अपनी क्षमता का एक-एक कण राष्ट्र की प्रगति के लिए दाँव पर लगाती है। मैं आग्रह करता हूँ कि स्वय का जीवन, प्रसिद्धि, सपत्ति एव अधिकार की अभिलाषा देश की वेदी पर न्योछावर करें। इसी में देश की समृद्धि, स्वय का सौख्य एव समाज का गौरव है।

卐 卐 卐

११ वनवासी, हिंदू समाज के अभिन्न अग

(वनवासी कल्याण आश्रम, जशपुर द्वारा सन् १९६३ को रामनवमी के अवसर पर धर्मजागरण कार्यक्रम के समापन कार्यक्रम में दिया गया भाषण)

अति प्राचीन दर्शनशास्त्रों में यह कहा गया है कि हमारे यहाँ लोगों को अपनी-अपनी भावना एव मार्ग से भगवान की उपासना करने की स्वतत्रता है और तदनुरूप हम देखते हैं कि यहाँ कोई शिव का उपासक है, कोई वेदों को मानता है, तो कोई विष्णु को मानता है, परतु अततोगत्वा सभी भगवान के ही चरणों में पहुँचते हैं, जैसे, सभी छोटी-बडी नदियाँ अत

में महासागर में जाकर विलीन हो जाती हैं। हमारे हिंदू धर्म की यह विशेषता है कि वह सभी पथों का अस्तित्व मानता है और उनका सम्मान भी करता है। यही कारण है कि स्वामी विवेकानद ने हमारे धर्म को 'सर्वश्रेष्ठ धर्म' कहा।

किंतु यह वडी विचित्र बात है कि सभी धर्मो एव ग्रथों के सम्मान करने के हमारे इस विशाल भाव को न मानते हुए अन्य लोग हमारे धर्म पर सतत आघात करते आए हैं। वास्तव में धर्म के कारण सघर्ष नहीं होते। लोग जब धर्म की आड में अपने स्वार्थ की पूर्ति, सत्ता-पिपासा एव राज्य-विस्तार की कामना करते हैं, तब जो सघर्ष होते हैं, उन्हें ही भ्रमवश 'धार्मिक सघर्ष' कहा जाता है।

धर्म को ही राज्यसत्ता के विस्तार का एक शस्त्र बनाकर भिन्न-भिन्न लोगों ने समय-समय पर अपने इस देश पर आक्रमण किए। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कभी हमला किया, कभी प्रलोभन दिया, तो कभी धोखेबाजी से काम लिया।

अग्रेजों ने इस सबध में एक विशेष योजना तैयार की थी। इस सबध में सुप्रसिद्ध क्रातिकारी लाला हरदयाल ने कुछ वर्ष पूर्व एक निबध लिखा था। उसमें यह बताया गया था कि अग्रेजों ने भारत को सामाजिक दृष्टि से जीतने का प्रयास कैसे किया। उन्होंने तत्कालीन दक्षिण प्रात के एक अग्रेज अधिकारी, उनके वैश्य सहयोगी तथा ब्राह्मण क्लर्क के परस्पर अभिवादन का उदाहरण देते हुए बताया है कि जब वह वैश्य सहयोगी अपने अग्रेज अधिकारी से मिलता, तब उससे हाथ मिलाकर बराबरी से बात करता था, किंतु जब वह अग्रेज के ब्राह्मण क्लर्क से मिलता तो उसे साष्टाग दडवत करता था। यह बात अग्रेज अधिकारी को खटकी। उसने जब इसका कारण पूछा, तो वैश्य सहयोगी ने कहा कि तुम अग्रेज म्लेच्छ हो। एक अधिकारी होने के नाते ही तुमसे हाथ मिलाता हूँ, किंतु वह क्लर्क ब्राह्मण है। समाज में उसका स्थान सर्वश्रेष्ठ है, इसलिए उसे साष्टाग दडवत करता हूँ। इस पर से उस अग्रेज ने यह समझ लिया था कि यदि इन लोगों की समाज और धर्म पर श्रद्धा बलवती रही, तो हमें राज्य छोडकर जाना पडेगा। अत ऐसी व्यवस्था करो कि ब्राह्मण का स्थान हमें मिल जाए। इस हेतु उन्होंने लोगों में अपने धर्म के प्रति अश्रद्धा निर्माण करने की योजना बनाई। उनकी इस योजना को अपने यहाँ के अनेक विद्वान लोग अभी तक समझ नहीं पाए।

अंग्रेजों ने ग्रंथों में किए वर्णन के आधार पर ब्राह्मण एवं धर्म के प्रति अश्रद्धा निर्माण करने की योजना बनाई, किंतु उन्हें इस बात का पता नहीं था कि हमारे यहाँ ब्राह्मण दो प्रकार से होता है — एक तो जन्म से और दूसरा वह, जो भगवान को जानता है, जिसका आचार-विचार शुद्ध होता है, वह भी ब्राह्मण है— उसके लिए जाति का कोई बंधन नहीं। अंग्रेजों ने ब्राह्मण लोगों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करने का प्रयास किया, लेकिन शासन-दबाव, अपार धनराशि का व्यय तथा अनेक प्रलोभनों के बावजूद अंग्रेजों की यह योजना पूरी तरह सफल नहीं हो सकी और वे हमारे समाज को नष्ट नहीं कर पाए।

यदि हमारे यहाँ वनवासी बंधुओं में धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा नहीं होती, तो आज नाम लेने के लिए भी उनमें से कोई बंधु नहीं बचता। सब ईसाई हो गए होते।

महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी का साथ इन्हीं लोगों ने दिया था। वे हमारे ही समाज के अभिन्न अंग हैं। चार वर्णों के आधार पर कुछ लोग यह भ्रम फैलाने का प्रयास करते हैं कि वनवासी हिंदू समाज के अंग नहीं हैं, किंतु हजारों वर्ष पूर्व लिखे गए प्राचीन ग्रंथों के पठन से यह स्पष्ट होता है कि हमारी समाज-व्यवस्था ग्राम पंचायत से आगे बढ़ती है। पंचायत के पाँच सदस्यों में एक ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, एक वैश्य, एक शूद्र तथा एक निषाद होता था। इसमें निषाद (वनवासी) की आवश्यकता पर जोर भी दिया गया है। इन सभी को मिलाकर 'पंच परमेश्वर' कहा जाता था, अर्थात् समग्र समाज, समष्टि के रूप में भगवान का विराट् रूप हैं।

स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद भी ईसाइयों की गतिविधियाँ जारी रहना घातक है। जब मैंने एक पादरी से पूछा, 'क्या अब स्वतंत्र भारत में भी अपनी शिक्षा-दीक्षा के सहारे लोगों को ईसाई बना सकते हो?' उसने जो जवाब दिया, वह एक गंभीर खतरे का संकेत देता है। उसने कहा, 'हम यहाँ के लोगों को ईसाई बना सकने में सफल नहीं हुए तो भी हम उन्हें अराष्ट्रीय अवश्य बना देंगे।'

भारत के मध्य नर्मदा की घाटी की संपूर्ण पट्टी तथा पूर्व व पश्चिमी किनारे में ईसाइयों की गतिविधियों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि वे संपूर्ण भारत को घेरने की योजना बना रहे हैं। अतः हमें इसपर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

यह बात नहीं कि इसके पूर्व इस गंभीर खतरे के प्रति किसी का ध्यान नहीं गया था। वास्तव में अनेक राष्ट्रवादी नेता इससे चिंतित थे। उनके मन में वेदना होती थी, पर उपाय के अभाव में वे कर ही क्या सकते थे? इस क्षेत्र में कार्य करनेवाले कार्यकर्ताओं के निर्माण का कार्य अवश्य चल रहा था। अब कुछ कार्यकर्ता निर्माण हुए तो योजना बनी और कार्य शुरू हुआ। आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपने समाज की प्रगति के लिए इस दुर्बल वर्ग को शक्तिसंपन्न बनाना होगा। उनकी अवहेलना करने से काम नहीं चलेगा। उन्हें शिक्षित कर समाज के अन्य वर्गों के साथ खडा करके आत्मनिर्भर बनाने हेतु हमें अपना कर्त्तव्य पूरा करने में तत्पर रहना चाहिए।

ॐ ॐ ॐ

१२ ऋषि दयानंद का आह्वान

(२५ नवंबर १९६३ को अजमेर
आर्यसमाज में दिया गया भाषण)

जब मैं पहले अजमेर आया था, तब मैंने ऋषि दयानंद का आश्रम देखा था। आर्यसमाज से संबंध रखनेवाले कई लोग मेरे परिचित हैं। जब मैं बनारस में था, तब वहाँ पढानेवाले एक अध्यापक आर्यसमाज के कार्यकर्ता थे। वे प्रति सप्ताह यज्ञ करवाते थे। मैं भी उसमें सम्मिलित होता था। जब संघकार्य पंजाब में आरंभ हुआ, तब वहाँ के आर्यसमाज के प्रमुख कार्यकर्ताओं द्वारा पूरा सहयोग दिया गया।

ऋषि दयानंद का महान प्रयत्न

विद्यार्थी अवस्था में जब विशेष अध्ययन नहीं हुआ था, तब मैंने एक बार श्री अरविंद का अंग्रेजी में लिखा हुआ ऋषि दयानंद का बडा हृदयस्पर्शी, अल्प शब्दों का जीवन-चरित्र पढा, जिसका मेरे मन पर बडा प्रभाव हुआ, विशेष तौर से इस बात का कि ऋषि दयानंद ने समाज में जाति-पंथ आदि अनेक भेदों के रहते हुए भी राष्ट्र के एकीकरण का कार्य बडे धैर्य, शांति तथा अति साहस के साथ किया। उन्होंने बहुत आग्रह के साथ प्रतिपादित किया कि संपूर्ण जीवन के ज्ञान व पावित्र्य का स्रोत वेद है। उनके द्वारा संसार में यह एक अद्वितीय कार्य हुआ है, जिससे अपने राष्ट्र-जीवन का अभ्युत्थान हुआ और तेजस्वी राष्ट्र ज्योति का प्रभाव दिखाई दिया। जिस समय राष्ट्र, धर्म एकता का ज्ञान व स्वातंत्र्य आदि के

बारे में कुछ कहना बडा कठिन था, तब ऋषि दयानद ने तेजस्वी राष्ट्र-जीवन जागृत कर देश की स्वतत्रता के लिए अनन्य रूप से चलनेवाले कार्य को आर्यसमाज की ध्वजा के नीचे जितने त्याग-तपस्या के साथ किया, वह भी कृतज्ञता की बात है। उसमें विशेष बात यह है कि उन्होंने अपने सपूर्ण जीवन की शक्ति का ही राष्ट्र के लिए आह्वान किया है।

वेद-मार्ग से ही मानव का अभ्युदय

अपने देश में अनेक मार्गो से समाज को आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा प्रेरणा देने का प्रयत्न किया गया है। उसमें सपूर्ण जीवन का विचार किया गया, किसी शाखा-उपशाखा के लिए दुराग्रह नहीं हुआ। अपने देश में लोगों को पारलौकिक एव इहलौकिक सुख प्राप्त हो, उसके लिए सुगम मार्ग ढूँढे गए। अपने उन महापुरुषों ने जो कुछ बताया, अपनी स्वतत्र प्रतिभा से बताया। फिर भी उन्होंने कहा कि मेरे कहने में यदि कोई अनुचित निकल गया हो, तो वेद को ही प्रमाण मानो। किंतु आगे चलकर ऐसा नहीं हुआ। गौतम बुद्ध ने कहा कि जो मैं कहता हूँ, उसे मानो। अनेक सप्रदायों के आचार्यो ने भी कहा कि हमारे वचन ही प्रामाणिक हैं, जबकि ऐसा कहना उचित नहीं है।

हमारा मूल आधार वेद है। इसी से मार्गदर्शन लेना चाहिए। इसमें न्यूनता आने के कारण ही हम में शिथिलता आई है। इसी कारण हमारे राष्ट्र को छिन्न-विच्छिन्न एव अपमानित होना पडा है।

अनेक पथों आदि द्वारा चाहे उन्नति सभव हुई हो, फिर भी श्रेष्ठ, अति उपकारी, सपूर्ण ससार में मानव को उन्नत बनाना तो अपने वेद मार्ग से ही सभव है। जितना प्रबल प्रयत्न होगा, उसी से देश की रक्षा सभव होगी। इसी के द्वारा विश्व के सर्व मानवों को सम्यक् ज्ञान हो सकता है। यह कार्य यहाँ होता है इसके लिए अधिक शक्ति लगाने की आवश्यकता है।

वनवासियो को ईसाई कुचक्र से बचाएँ

हमारे देश में अन्य धर्मावलबियों का प्रभाव बढ रहा है। अपने देश में झारखड नाम का विशाल वन्य प्रदेश है, जिसमें राची जिला तथा उडीसा का बहुत बडा वन्य क्षेत्र सम्मिलित है। उसमें ईसाइयों का प्रबल प्रभाव है। वहाँ दो-तिहाई भूमि पर ईसाइयों का अधिकार है। उस क्षेत्र में मानव-सेवा के नाम पर पाठशालाएँ औषधालय खोलकर वन्य प्रदेश के लोगों में वे अपना जाल फैला रहे हैं।

२५ वर्ष पहले पूर्व-क्षेत्र में आर्यसमाज ने प्रचारक भेजे थे, ताकि उन्हें अपने धर्म की ठीक कल्पना देकर, धर्म पर दृढ रहने की प्रेरणा दी जा सके। उन दिनों अंग्रेजों का शासन था। वहाँ अफसर ईसाइ ही नियुक्त किए जाते थे। वहाँ के सारे कार्य कोलकाता के ईसाई पादरी के इशारे पर चलते थे। उस अरण्य में आर्यसमाज व सघ के जो कार्यकर्ता गए थे, उनमें से कुछ की हत्या करवा दी गई। न्यायालय ने भी बाद में कुछ नहीं किया। फिर भी कार्यकर्ता अपने कर्तव्य से नहीं डिगे।

आज भी ईसाई व मुसलमानों का देशघातक प्रचार चलता है। वहाँ के वन्य समाज की बडी इच्छा है कि कोई उन्हें योग्य शिक्षा-दीक्षा दे।

राष्ट्र-भाव का जागरण हमारा कर्तव्य

मैं गत रामनवमी को उस क्षेत्र में गया था। लगभग सौ स्थानों से हजारों लोग पैदल चल कर आए थे। वे अपने धर्म को समझने के लिए बडे उत्सुक थे। विशुद्ध भाव से धर्म-भाव, राष्ट्र-भाव जगाकर उनकी पवित्र भावनाओं को जगाने के लिए जीवन समर्पित करनेवाले लोगों की आवश्यकता है। यह कार्य मिशनरी स्पिरिट से करना चाहिए। यह केवल आर्यसमाज ही नहीं, अपितु हम सबका कर्तव्य है। हम नि स्वार्थ भाव से कार्य करें। केवल उदर भरने के लिए भोजन, शीत निवारण के लिए वस्त्र धारण कर शुद्ध भाव से कार्य करते रहें और अपने बधुओं का योग्य मार्गदर्शन करते हुए अपने राष्ट्र व धर्म को दृढ बनाएँ। यही परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है।

१३ पूर्व पाकिस्तान अल्पसख्यक सम्मेलन

(१८ व १९ अप्रेल १९६४ को दिल्ली में सपन्न हुए पूर्व-पाकिस्तान के अल्पसख्यकों के सम्मेलन में दिए गए श्री गुरुजी के भाषण का साराश)

हम आज यहाँ अत्यत दु खद घटनाओं की पार्श्वभूमि में एकत्र हो रहे हैं। समाज के सभी वर्गो के प्रतिनिधि अपनी सैद्धातिक व राजनीतिक निष्ठाओं के बाद भी यहाँ उपस्थित हुए हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पूर्व बगाल में रहनेवाले अपने हिंदू बाधवों के कल्याण के विषय में सपूर्ण देश में कितनी गहरी चिता व्याप्त है। सयोग से यह इस बात का भी शुभ

सकेत है कि देश के महत्त्वपूर्ण हितों को आघात पहुँचानेवाले प्रश्नों पर अपना राष्ट्र एक विराट पुरुष की भाँति प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए खड़ा हो सकता है और उसके नेतागण सकीर्ण हितों का परित्याग कर मिलकर काय कर सकते हैं।

पूर्व बगाल के एक करोड हिंदुओं का भविष्य आज अधकारमय है। उनका जीवन, उनकी सपत्ति और उनका सम्मान घोर सकट में है। उनके सामने यही विकल्प है कि या तो वे देश के उस हिस्से पर शासन करनेवाले धर्माध शासकों की बर्बरता के समक्ष लाचारी से आत्मसमर्पण कर इस्लाम ग्रहण कर लें या फिर अपना पैतृक घर-बार छोड दें। अपनी मातृभूमि का लाछनास्पद विभाजन स्वीकार कर हमने जो पाप प्रारभ में किया है, वह इसके लिए कारण है तथा भारत सरकार द्वारा पाकिस्तान का निरतर तुष्टीकरण उन लोगों के दु खों का तात्कालिक कारण है। पूर्व-बगाल के हिंदुओं का कल्याण हमारा राजनीतिक व नैतिक उत्तरदायित्व है, यह स्वीकार न करने की शासन की नीति भी इसकी जड में है। हम कितना ही घुमा-फिराकर कहें या कानूनी शब्दछल करें, इस तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता कि इन अभागे लोगों से हमारा रक्त का नाता है। इसलिए इस समस्या के हल के लिए दो आधारभूत बातों को सामने रखना चाहता हूँ। सर्वप्रथम भारत सरकार पूर्व बगाल के हिंदुओं के सबध में अपने कर्तव्य को असदिग्ध रूप से स्वीकार करे तथा दूसरी बात यह कि पाकिस्तान के प्रति उसकी जो नीति है, उसमें आमूलाग्र परिवर्तन करने का निश्चय करे। रावलपिंडी के शासक लोगों के होश ठिकाने लाने के लिए उनके विरुद्ध प्रभावी बलप्रयोग नितात आवश्यक है।

ढाका, खुलना, मैमनसिंह आदि क्षेत्रों में पिछले कई महीनों से लगातार हो रहे भीषण अत्याचारों के जो समाचार यहाँ पहुँच रहे हैं उनसे स्वाभाविकत अपने यहाँ प्रक्षोभ निर्माण हुआ है। अब समस्या की जड में जाकर उसका मुकाबला करने के लिए प्रभावी कदम उठाए जाएँ, जिससे कि पूर्व-बगाल के हिंदू वहाँ शाति व सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें। ये उपाय दोनों सरकारों के मध्य तय होने चाहिए। जब सरकार अपने कर्तव्यों को पूरा करेगी, तब जनता के मन में विश्वास पैदा होगा और वह शात होगी। अपनी ओर से तो मैं जनता से यही अनुरोध करता हूँ कि आज की अत्यत प्रक्षुब्ध स्थिति में भी वह धैर्य रखे।

१४ धर्मादेश

(संतों के आदेश पर श्री गुरुजी द्वारा तैयार किए गए इस धर्मादेश को सन् १९६४ में विश्व हिंदू परिषद् की स्थापना के बाद धर्म-संसद में प्रस्ताव के रूप में पारित किया गया)

हमारे पूर्वज एवं द्रष्टाओं ने धर्म की व्याख्या के संदर्भ में कहा है कि जो सब लोगों को एक साथ जोड़कर सुसंस्कारित एवं सुसंगठित समाज के विकास हेतु निश्चित आचार-संहिता का निर्धारण करें, जिससे मानव-मात्र का अभ्युदय हो, जो सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास एवं आदर्श समाज की कल्पना साकार करने में सहायक हो। समय-समय पर हमारे ऋषि-मुनियों एवं त्रिकालदर्शी द्रष्टाओं ने ऐसे सिद्धांत एवं नीति-नियमों का निर्माण किया, जो समयानुकूल सिद्ध एवं सफल होकर एकात्मभाव विकसित कर सके। ऐसे द्रष्टा, जो स्वार्थरहित, निष्पक्ष तथा सत्य के प्रति समर्पित थे— भविष्य में जनसाधारण के विकास हेतु संलग्न धर्माचार्यों एवं कार्यकर्ताओं के लिए मार्गदर्शन कर गए हैं, जो समयानुकूल परिवर्तनशील हैं।

शताब्दियों के बाद इस प्रकार के परिवर्तनों की आवश्यकता रहती ही है। समय बहुत तेजी से बदल रहा है। अदृष्ट तनाव तथा दबाव बढ़ रहे हैं, जिससे सारे समाज का ताना-बाना मानो टूट रहा है। यह विधान आज की टूटती समाज-व्यवस्था, अनास्था, स्वधर्म के प्रति उदासीनता, परिणामतः अन्य मतों व उनके प्रचारकों की घुसपैठ एवं मतांतरण के प्रहार से अधिक स्पष्ट हो जाता है। वर्तमान चुनौती का सामना करने हेतु लोगों में परस्पर प्रेमभाव, सहानुभूति, समाज के प्रति आस्था, परस्पर सहयोग से एकात्मता जागृति को बढ़ाने के लिए पुनः समयानुकूल आचारसंहिता का निर्धारण आवश्यक हो गया है। भूतकाल में जो संहिताएँ, मार्गदर्शन आवश्यक थे, किंतु जो आज समाजहित में नहीं हैं, उन्हें बदलना होगा। इन सब बातों का ध्यान रखकर, हम यह मंत्रणा देते हैं कि इस समाज का कोई भी वर्ग अस्पृश्य नहीं होगा, उसे कहीं भी, कभी भी, किसी भी सामाजिक कार्य में सम्मिलित होने का पूर्ण अधिकार होगा। सामाजिक अस्पृश्यता, जो भूतकाल में प्रचलित थी समूल नष्ट की जाएगी तथा जो बंधु इससे पीड़ित थे, उन्हें समान श्रेणी, आदर एवं प्रेम से प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।

यह हमारा सुनिश्चित मत है एवं यह व्यवस्था तथा धर्मादेश है, जो कि हमारे हिंदू बांधवों को इस प्रकार के व्यवहार का आदेश देता है।

१५ अंतिम विजय के लिए

(८ दिसंबर १९६५ को रोटरी क्लब, महू, मध्यप्रदेश में दिया गया भाषण)

इस देश के निवासी होने के कारण हमारे सामने जो भी समस्याएँ हैं, उनका हल निकालने का दायित्व हम पर ही है। कुछ समय पूर्व एक छोटा-सा संघर्ष हुआ था। मैं इस संघर्ष को 'छोटा-सा संघर्ष' इसलिए कहता हूँ, क्योंकि इसमें हमारी बहुत थोड़ी शक्ति लगी है। बड़े संघर्ष में बहुत अधिक परीक्षा हो जाती है। जन-धन की भी बड़ी थाती उसमें लगानी पड़ती है।

एकता का दर्शन हुआ

भारत-पाकिस्तान के इस संघर्ष में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हमारे ध्यान में आई हैं। पहली बात तो अपने लिए बड़े अभिमान की है। अभी तक अंग्रेज लोग यह कहा करते थे कि उनके कारण ही इस विशाल देश की एकता बनी हुई है। यदि वे यहाँ से चले गए तो यहाँ के लोग परस्पर झगड़कर नष्ट हो जाएँगे। सुख, समृद्धि आदि कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। शत्रु ने भी यही सोचा कि इस देश के लोग, विशेषकर हिंदू युद्ध करना क्या जानें। ये लोग तो भाषा, पंथ, जाति आदि भेदाभेद में फँसे हुए हैं, ये क्या लड़ेंगे? हम देखते-देखते दिल्ली तक पहुँच जाएँगे। पर उनका यह अनुमान मिथ्या सिद्ध हुआ। आक्रमण के समय सारा देश एक होकर खड़ा हो गया। उस समय प्रधानमंत्री ने विभिन्न दलों के लोगों को परामर्श हेतु बुलाया था। मुझे भी बुलाया गया था। सभी ने अपने विचार रखते हुए कहा कि इस संकट की घड़ी में हम सबको अपने आपसी मतभेद भुलाकर एक हृदय होकर खड़े होना है।

'स्वतंत्र' तमिलनाडु की माँग करनेवाले दल के नेता श्री अन्नादुराई ने भी बहुत अच्छे विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने कहा कि 'आज जब देश की सीमा पर संकट खड़ा है, तब आपस के मतभेद सामने रखने का अवसर नहीं है। यह समय तो एक-दूसरे के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने का है।' हमारी विविधता में एकता का जो प्रबल सूत्र विद्यमान है, उसका ज्ञान इन अपप्रचार करनेवालों को नहीं है। सारा देश अपने मतभेद एक ओर रखकर खड़ा हुआ और विराट् पुरुष का स्वरूप साक्षात् दिखाई देने लगा। यह बात अतीव प्रसन्नता की है।

युद्ध विराम से शिथिलता आई

यह 'प्रसन्नता' स्थायी नहीं रह सकी। हमारे समाज का यह स्वभाव है कि जहाँ कहीं कुछ शाति, युद्धविराम आदि की बात चली, वह शिथिल हो जाता है। अपनी जागरूकता खो देता है। सन् १८५७ में अग्रेजों को ग्वालियर से भगा देने के बाद रावसाहब पेशवा आमोद-प्रमोद में मस्त हो गए। महारानी लक्ष्मीबाई ने उस समय कहा था कि 'यह समय सुख-भोग का नहीं, शस्त्रास्त्र जुटाने का है। अग्रेजों को पूरी तरह समाप्त करना चाहिए।' परतु वैसा हुआ नहीं। अब भी वैसा ही अनुभव आ रहा है। चीन का आक्रमण कुछ मात्रा में समाप्त होते ही देश के अदर के सारे मतभेद और झगडे फिर से उभर आए ईर्ष्या, द्वेष आदि के दुर्गुण फिर से उठ खडे हुए। आज जिसे युद्धविराम कहा जाता है, उसे मैं युद्धविराम नहीं कहता। सीमा पर गोलियॉ चलती रहें, सेना के जवान शहीद होते रहें, यह कैसा युद्धविराम? मैं अभी राजस्थान के प्रवास से लौटा हूँ। बाडमेर जिले में पाकिस्तानियों ने इतने जोर का आक्रमण किया है कि यदि उसका शीघ्र प्रतिरोध नहीं किया गया, तो १०-१५ दिनों में ही जिले के प्रमुख स्थान पर शत्रु के कब्जे का समाचार मिल सकता है। यह युद्धविराम नहीं है। परतु इस तथाकथित युद्ध-विराम का समाचार सुनते ही लोगों में शिथिलता आ गई। कुछ समाचार-पत्रों में भी मोटे-मोटे अक्षरों में छपा।

वास्तव में यह बडा ही दु खद समाचार है। इतनी जल्दी हाथ-पैर ढीले पड जाना अत्यत हानिकारक है। मैंने तो सुनते ही कहा कि 'हमें सँभलकर रहना चाहिए। अवश्य ही दूसरा बहुत जोरदार हमला होगा।' आज हम देखते हैं कि पक्षभेद, जातिभेद, राजनीतिक स्वार्थ आदि सब पुन सिर उठाने लगे हैं। राजनीतिक स्वार्थो में अध होनेवाले को शत्रु-मित्र का विवेक नहीं रहता। देश में अपने प्रवास में मैंने देखा हे कि केवल वोटों के लालच मात्र से राजनीतिक नेता कुछ स्थानों पर राष्ट्र की सुरक्षा की दृष्टि से बदी बनाए गए, राष्ट्रहित विरोधी तत्त्वों को छुडाने की दौड-धूप कर रहे हैं। इस वृत्ति को रोकना होगा।

धर्मयुद्ध मे विजय-प्राप्ति का सकल्प करे

युद्ध अभी चल रहा है। फिर से एक बार अधिक उग्रता से वह प्रारभ होगा। चीन की ओर से भी प्रबल आक्रमण की आशका है। ऐसे समय में हम सबको पहले यह पवित्र सकल्प हृदय में धारण करना चाहिए

कि 'हम विजयी होंगे।' संकल्प में बड़ा बल रहता है। शुद्ध और पवित्र संकल्प से प्रबल शक्ति खड़ी करें। पिछले महायुद्ध में रूस जैसे धर्मविरोधी देश ने भी अपने सारे गिरजाघर खुलवा दिए और पादरियों को बुलवाकर रूस की विजय के लिए सामूहिक प्रार्थनाएँ करवाईं। फिर हमारी तो यह धर्मभूमि है। अतः हमें व्यक्तिशः व समूहशः अपने राष्ट्र की विजय के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। लेकिन केवल प्रार्थना से ही काम नहीं चलेगा। प्रार्थना के पीछे कर्तव्य का निश्चय चाहिए। हमारा प्रथम कर्तव्य यही है कि श्रेष्ठ लक्ष्य के लिए अपने समस्त मतभेदों को गौण समझकर राष्ट्ररक्षा हेतु एक हृदय होकर आगे बढ़ें। किसी प्रकार के विच्छेद को पनपने न दें। युद्ध काल में नाना प्रकार की अफवाहें एवं मनगढ़त बातें फैलती हैं। एक बड़ी अफवाह यह फैली थी कि सेना के एक सर्वश्रेष्ठ अधिकारी विमान में जा रहे थे, तब उन्हें संदेह हुआ कि विमानचालक उन्हें शत्रु देश में ले जा रहा है। उन्होंने बड़ी युक्ति से काम लिया और चालक को अलग करके स्वयं विमान चलाने का काम करने लगे और सुरक्षित वापस लौट आए। फिर उन्होंने उस विमानचालक को गोली मार दी। किसी ने यहाँ तक अफवाह फैलाई कि वह व्यक्ति अपने तत्कालीन उपराष्ट्रपति का लड़का था। मुझसे जब यह बात कही गई, तब मैंने कहा, 'उपराष्ट्रपति का तो कोई लड़का ही नहीं है।' तब कहा गया कि 'दामाद रहा होगा।' मैंने कहा, 'उनकी कोई लड़की भी नहीं है।' तब उसने कहा, 'उनका भतीजा रहा होगा।' ऐसी सर्वथा असत्य बातें फैलाई जाती हैं। ऐसी बातों को फैलने नहीं देना चाहिए। जितने तथ्य सामने आएँ, उन्हीं पर विचार करना चाहिए।

सेना को पुष्ट करने का दायित्व

वर्तमान काल में युद्ध के ढंग में भी परिवर्तन आ गया है। आजकल की लड़ाई में केवल सेना ही नहीं लड़ती, सारा समाज लड़ता है। सेना की शक्ति का परिपोष करने का दायित्व हम सबका है। हममें जो योग्य व स्वस्थ शरीर के हों उन्हें बिना हिचक सेना में भर्ती होने का प्रयत्न करना चाहिए। कोई भी कार्य कनिष्ठ या श्रेष्ठ नहीं होता। झाड़ू लगाने का काम भी उतने ही महत्त्व का है जितना प्रत्यक्ष रणभूमि में लड़ना। सभी कार्य सेना के आवश्यक अंग हैं। अपनी-अपनी शक्ति तथा पात्रता के अनुसार सबको कार्य करना चाहिए। कोई कह सकता है कि आप सेना

में क्यों नहीं भर्ती होते? मैं तो तैयार हूँ। अच्छा निशाना भी लगा सकता हूँ, परतु मुझे सेना में लेगा कौन? सेना मे भर्ती होने के कुछ नियम हैं, उनके अनुरूप ही लोग भर्ती किए जाते है। लेकिन हम पैर पीछे हटानेवाले नहीं हैं। सेना के सभी विभागो को पुष्ट करने का दायित्व समाज पर है। इस युद्ध में सेना के वहुत से अधिकारी काम आए हैं। पर्याप्त नुकसान हुआ है, परतु राष्ट्र का सम्मान सुरक्षित है, इसलिए अधिक चिता नहीं है। इस कमी को पूरा करने के लिए योग्य लोगों को सामने लाया जाना चाहिए।

सेना की सहायता करने के अन्य और भी वहुत से उपाय हैं। इस युद्ध में जनता ने स्वय अपनी स्फूर्ति से सेना के लोगों की देखभाल की। स्टेशन पर ही नहीं, प्रत्यक्ष युद्धभूमि में जहॉ गोलियॉ चल रही थीं, सैनिकों को भोजन-पानी पहुँचाने की व्यवस्था की। दूसरा अति महत्त्व का कार्य किया गया– युद्ध के अतिम मोर्चे पर गोला-बारूद पहुँचाने का। सेना के वाहनों का इस कार्य हेतु उपयोग नहीं किया जा सकता था। शत्रु इन वाहनों पर बमवर्षा कर उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करता। अत इस कार्य को निजी ट्रक-चालकों ने, जिन्हें लोग उद्दड समझते हैं, दिन-रात एक कर किया और सेना की आवश्यकता पूरी की। सेना के एक अधिकारी ने मुझे बताया कि 'हम तो सब प्रकार से युद्ध-कुशल हैं। सरकार से वेतन पाते हैं। युद्ध भूमि में काम आने पर सरकार हमारे कुटुबियों की चिता भी करती है, परतु इन ट्रकवालों को कौन पूछनेवाला है? यदि ये काम आ गए तो इनके परिवारों को कौन देखेगा? फिर भी ये लोग जान हथेली पर रखकर जूझ रहे हैं। उनकी राष्ट्रभक्ति व देशभक्ति हम से श्रेष्ठ है।' वास्तव में यह भाव सब लोगों में जागृत होना चाहिए। ऐसे भाव जगानेवाला वायुमडल उत्पन्न करने का दायित्व हम सबका है।

दूसरी महत्त्वपूण बात यह हे कि सेना में आगे लडनेवाला भी आखिर मनुष्य ही हे। यूद्धभूमि में उसे कभी-कभी घर की याद आ सकती है। यदि उसे विश्वास हो कि उसके घर के लोगों की देखभाल करनेवाले, उसके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की चिता करनेवाले लोग उसके गॉव में हैं, तो वह निश्चित होकर लडेगा। अत हमारा कर्तव्य है कि सेना में लडने के लिए गए हुए लोगों के परिवार के लोगों की देखभाल का दायित्व हम अपने पर लें।

सेना की स्वयं की व्यवस्था निर्दोष हो

एक अत्यावश्यक पहलू पर हमें विचार करना चाहिए। जनता ने सेना के लिए उपहारगृह आदि खोले थे। जनता ने अपना कर्तव्य पूर्ण किया। जहाँ यह आनद की बात है, वहीं चिंता का विषय यह है कि सेना की अपनी व्यवस्था से कार्य क्यों नहीं हुआ? मोर्चे पर जानेवाले सैनिकों के लिए उनके स्थान पर भोजनादि का प्रबध, सैनिकों की स्फूर्ति और शक्ति सदैव जागृत रखने के लिए मोर्चे पर सेना की टुकडियों का समय-समय पर स्थानातरण आदि के सम्बन्ध में सेना की जैसी व्यवस्था करनी चाहिए थी, वैसी नहीं हुई। ट्रकवालों को खिलाने-पिलाने का कार्य भी जनता को करना पड़ा, क्योंकि सेना की व्यवस्था अपर्याप्त थी। इसका अर्थ यह है कि सेना का सगठन अच्छा नहीं है। उसमें बहुत सी कमियाँ हैं। जब युद्ध काफी लम्बा चले और सेना पर उसके सामर्थ्य से अधिक बोझ आ पड़े, तब कुछ त्रुटि या अव्यवस्था उत्पन्न होने पर जनता की सहायता लेना उचित हो सकता है, किंतु छोटी-सी लडाई में ही जनता की ओर दौडना उचित नहीं। सेना के सगठन की इस कमी को दूर करना चाहिए।

आतरिक शत्रु से सचेत रहे

युद्धकाल में आतरिक शाति एव सुव्यवस्था बनाए रखना भी आवश्यक है। अनेक मतभेदों के कारण देश में दगे आदि भी हो सकते हैं। उन सब प्रसगों को अपनी शक्ति से दबाकर समाप्त करने का दायित्व हम सबका है। अपने देश में पाकिस्तानी मनोवृत्ति रखनेवाले जो लोग हैं, उनकी ओर ध्यान रखना चाहिए। ये लोग गुप्त रूप से षड्यत्र रच कर अशाति उत्पन्न करते हैं और जनता, शासन व सेना का ध्यान बँटाकर शत्रु को सहायता पहुँचाने का कार्य करते हैं। आक्रामक को अपने पराक्रम से पाठ पढाकर ठीक करना ही वीरता है। प्रभुकृपा से यह प्रसग आ गया है। कुरुक्षेत्र में युद्ध के लिए जाते समय पाडव जब माता कुती से आशीर्वाद माँगने गए तब कुती ने कहा था 'यदर्थ क्षत्रिया सूते स वै कालोऽयमागत ।' ऐसी स्थिति में अपनी बहादुर सेना के द्वारा आक्रमणकारी को ऐसा पाठ पढाया जाए कि शत्रु के दाँत खट्टे हो जाएँ। तभी देश के अदर के ये विध्वसक तत्त्व शात होकर अपने साथ मित्रता करने का प्रयत्न करेंगे। पाकिस्तान को जो मजा चखाया गया, उसके परिणामस्वरूप ही यहाँ उपद्रवी

तत्त्व अशांति फैलाने की हिम्मत नहीं कर सके। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि अब ये लोग उपद्रव नहीं करेंगे। निरतर भ्रमण करते रहने के कारण मुझे पता है कि इन उपद्रवी तत्त्वों की अनेक छोटी-छोटी सभाएँ हुई हैं, जिनमें उन्होंने कहा कि, 'इस समय शात रहकर हमने बडी गलती की। यदि पुन आक्रमण हुआ तो हमको अशाति मचाकर पाकिस्तान की सहायता करनी चाहिए।' इन सब तत्त्वों को दबाने के लिए समाज को अपना सामर्थ्य खडा करना आवश्यक है। शासन का ध्यान विभ्रमित न हो, अत हमें सतर्क रहने की आवश्यकता है।

सयुक्त राष्ट्रसघ से न्याय की अपेक्षा व्यर्थ

सकट के समय में ही शत्रु-मित्र की परीक्षा होती है। सयुक्त राष्ट्र सघ के सबध में मैं पहले से ही कहता आया हूँ कि वह शक्तिशाली राष्ट्रों की राजनीति का अखाडा मात्र है। इससे शाति आदि प्राप्त नहीं होगी। १८ वर्षों तक कश्मीर की समस्या को उसने लटकाए रखा। सर्वप्रथम कश्मीर का प्रश्न राष्ट्रसघ के समक्ष रखनेवाले श्री गोपालस्वामी आयगर के पुत्र श्री पार्थसारथी ने सयुक्त राष्ट्रसघ का स्थायी सदस्य बनने के बाद कश्मीर समस्या पर बोलते हुए कहा था– "१८ वर्ष पहले मेरे पिता कश्मीर पर हुए आक्रमण को खाली कराने के लिए आपके पास आए थे, किंतु उस प्रश्न को एक ओर रखकर आपने ऐसी अनर्गल बातें करना प्रारभ कर दिया कि कश्मीर है किसका? वहाँ जनमत-सग्रह कैसे होगा? आदि। इसलिए हम आप पर विश्वास नहीं कर सकते।' यह बात उन्होंने बिलकुल ठीक ही कही थी। फिर हम यह देखें कि राष्ट्रसघ के निरीक्षकों ने क्या किया? वे दर्शक मात्र बने रहे। पाकिस्तान द्वारा भेजे गए सशस्त्र घुसपैठिए, छतरीधारी सैनिक आदि सब उनकी आँखों के सामने से गुजरते रहे। उन्होंने इस बात को स्वीकार भी किया है, किंतु पाकिस्तानी सेना को पीछे धकेलकर जब हमारी सेना लाहौर, स्यालकोट तक जा पहुँची, तब सब दौडते हुए आए और '*शात पाप, शात पाप*' कहकर हमें शाति का उपदेश देने लगे। अंग्रेज भी ऐसा ही किया करते थे। वे मुसलमानों को उकसाकर हिंदुओं पर आक्रमण करवाते और जब कभी हिंदू प्रत्युतर देने को खडा हो जाता, तब बीच में पडकर शाति के पुजारी बन जाते थे। आज भी वही नीति अपनाई जा रही है। आक्रमणकारी तथा आक्राता, दोनों को जहाँ एक ही स्तर पर रखा जा रहा है, ऐसे राष्ट्रसघ में हमें न्याय नहीं मिलेगा।

राजस्थान की सीमा पर शत्रु-सेना को ये निरीक्षक नहीं रोकते, किंतु जब हमारी सेनाएँ उनका सामना करने के लिए आगे बढती हैं, तब सफेद झंडी दिखाकर भारतीय सेना को रोकने लगते हैं।

शत्रु-मित्र भाव अस्थायी है

अमरीका और इंग्लैंड का रुख हम सब जानते ही हैं। 'पी-एल ४८०' के अंतर्गत हमें जो अनाज मिलता है, उसपर भी वह शर्त लगा रहा है। यह तो मित्रता का लक्षण नहीं। रूस भी अपना मित्र नहीं है। उसने भी ताशकंद में दोनों को एक स्तर पर रखा है। जबकि वास्तविकता यह है कि शत्रु-मित्र भाव अस्थायी रहते हैं। कोई किसी का स्थायी शत्रु या मित्र नहीं होता। सब अपनी-अपनी घात में रहते हैं। ऐसी स्थिति में अपनी आंतरिक समस्याएँ अपने पराक्रम से हल करने का प्रयत्न करना चाहिए। आज अपनी खाद्य समस्या अत्यंत ही जटिल हो चली है। अवर्षण से इस साल फसल नष्ट हो गई। इस समस्या का हल करना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में कहा गया है कि एक समय भोजन न करें। यह ठीक है, परंतु अपने खाने-पीने के सारे सामान का अत्यंत बुद्धिमत्ता से उपयोग करना चाहिए। समाज में उसका ठीक वितरण करना हम सबका दायित्व है।

खाद्यान्न के उत्पादन पर बल दिया जाए

इस संकट काल में अपने यहाँ बहुत से लोग नकदी फसल के पीछे पड़े हैं। एक मंत्री ने भी अपनी पर्याप्त जमीन पर अंगूर लगा रखे हैं। केवल उपदेश देने से कि खाद्य-उत्पादन बढाओ, काम नहीं चलेगा। वास्तव में प्रत्येक गाँव में जाकर लोगों को बताना चाहिए कि जनता के लिए जितना अन्न चाहिए उतना पैदा करना है। फिर यदि जमीन बचे तो उसमें नकदी फसल लगानी चाहिए। उत्तरप्रदेश में गन्ने की खेती बढ जाने के कारण वह गेहूँ की दृष्टि से अभाव का प्रांत हो गया है। विदर्भ में वनस्पति तेल के उत्पादन के लिए मूंगफली की व्यापक प्रमाण में खेती हो रही है। यद्यपि वनस्पति के नाम से पुकारे जानेवाले घी में न घी के गुण हैं, न तेल के। यह सब पैसा कमाने के लिए है। पर क्या पैसा खाया जा सकता है? यदि खाया भी जाए तो हजम कैसे होगा? अतः देश में ऐसा वायुमंडल बनाया जाना चाहिए कि जिसमें सर्वप्रथम महत्त्व खाद्यान्न-उत्पादन के लिए दिया जाए। बची हुई जमीन पर ही अन्य फसल उगाई जाए। इस दृष्टि से ग्राम-ग्राम में समितियाँ बननी चाहिए जो सब बातों का विचार कर

अन्न-धान्य उत्पादन के कार्य में तेजी लाएँ। यदि हम अपने कर्तव्य पर डटे रहें और बेकार की वस्तुओं का त्याग करें तो इस सकट में से हँसते-खेलते पार हो जाएँगे।

चरित्र-बल मे वृद्धि करे

इन सभी कार्यो में यश प्राप्त करने के लिए चारित्र्य-बल का होना अत्यत आवश्यक है। चरित्र के बिना यश नहीं। गत महायुद्ध के समय फ्रास में चारित्रिक दृष्टि से बडा ह्रास आ गया था। सुख को ही सारसर्वस्व मानकर वहाँ के लोग चल रहे थे। यहाँ तक कि बीमारों की सेवा के लिए इग्लैंड ने जब प्रशिक्षित नर्से वहाँ भेजी, तब फ्रास के बडे-बडे लोगों ने कहा कि इग्लैंड ने कितनी सुदर लडकियाँ भेजी हैं। ये तो हमारी वैषयिक भूख को भी शात कर सकती है। चारित्रिक अभाव के कारण ही मैगनेट लाइन तथा उत्तम टैंकों का निर्माण करनेवाले फ्रास को जर्मनी के आगे थोडे ही दिनों में घुटने टेक देने पडे।

आजकल इग्लैंड के युवकों का वर्णन करने के लिए 'उन्मुक्त' शब्द का प्रयोग होता है। वहाँ के युवक वैषयिकता में आकठ निमग्न हैं। अपने यहाँ भी कुछ ऐसा ही शुरू हो गया है। इस प्रवृत्ति पर अकुश लगाना होगा। यदि हम कर्तव्यकठोर, दृढनिश्चयी, पवित्र विचारों से ओत-प्रोत होकर 'मातृवत् परदारेषु' की अपनी परपरा पर चलेंगे तो कोई भी शक्ति हमें पराजित नहीं कर सकेगी। इस दृष्टि से सर्वजगत् की मगल कामना करनेवाला चारित्र्यवान, अनुशासनबद्ध युवक-वर्ग खडा करने की आज महती आवश्यकता है। तब हमारी विजय निश्चित है।

१६ विश्व हिंदू परिषद् का प्रथम सम्मेलन

(पूर्ण कुभ के सुअवसर पर तीर्थराज प्रयाग में विश्व हिंदू परिषद् का प्रथम विशाल जागतिक सम्मेलन हुआ। इसमें २४ जनवरी १९६६ को समापन के अवसर पर दिया गया भाषण)

वास्तविक रीति से यहाँ पर आकर कुछ बोलने का मेरा काम नहीं था। दो मास पूर्व जब श्रीमद्द्वारकापीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य महाराज जी ने आज्ञा दी कि मुझे इस अवसर पर बोलना चाहिए तब मैंने उनसे

क्षमा माँगते हुए कहा था कि 'मेरा काम तो यहाँ के मडप में झाड़ू लगाने का है और वह मैं करता रहूँगा, क्योंकि मैं एक स्वयसेवक हूँ। इससे अधिक कुछ भी करना मेरे लिए धृष्टता होगी।' परतु पूज्य महात्माओं के आदेश का परिपालन करने के अतिरिक्त मेरे लिए कोई चारा न होने के कारण मैं आप सज्जनों की सेवा में इस समय खडा हूँ।

मेरी दृष्टि से विश्व हिंदू परिषद् का प्रादुर्भाव किसी पुनीत भगवद्इच्छा से ही हुआ है। इस परिषद् के महामत्री श्रीमान आप्टे जी ने सपूर्ण जगत् के हिंदुओं के एकत्रीकरण के सबध में अपने विचार कुछ समय पूर्व लेखबद्ध किए थे। लगभग उसी समय श्रीमद्चिन्मयानद स्वामी जी ने अपने 'तपोवन प्रसाद' में इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया था और अनेक लोगों का मत भी इसी प्रकार का था।

लगभग दो-तीन वर्ष पहले अपने देश में हिंदू महासभा के एक ज्येष्ठ कार्यकर्ता ने यही बात मुझसे कही थी कि सपूर्ण जगत के हिंदुओं का एक सम्मेलन बुलाया जाए। उस समय मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि ऐसा सम्मेलन किसी राजनीतिक दल द्वारा आयोजित न कराया जाए। उचित तो यह होगा कि राजनीति से सर्वथा अलिप्त अपने समाज के प्रमुख लोगों की समिति द्वारा उसका आयोजन किया जाए और आगे भी इस कार्य को राजनीति से अलिप्त रखकर ही चलाया जाए। जब यह बात आपस में विचार-विनिमय कर निश्चित हो गई, तब मैंने विश्व हिन्दू परिषद् के महामत्री श्रीमान् दादासाहेब आप्टे से कहा कि वे देशभर में प्रवास कर लोगों से मिलें तथा इस कार्य के लिए उनका सहयोग प्राप्त करने की दृष्टि से प्रयत्न करें।

इस सदर्भ में प्रथम बैठक का आयोजन पवई (मुबई) में स्थित सादीपनी साधनालय में श्री चिन्मयानद स्वामी जी द्वारा किया गया और राजनीति से अलिप्त समग्र हिंदुओं के सगठन के निमित्त प्रयत्न करनेवाली एक परिषद् बने तथा उसका प्रारभ एक बृहद् सम्मेलन से हो, ऐसा निश्चय हुआ। प्रयागराज में बारह वर्षों में एक बार मौनी अमावस्या के समय माघ अर्थात् कुभ मेला होता है। उस पवित्र अवसर पर अनेक अखाडों और सप्रदायों के लोग अनायास ही एकत्र होते हैं। उसी अवसर पर देश-विदेश में रहनेवाले हिंदुओं का सम्मलेन किया जाए, ऐसा निश्चय हुआ। उसी निश्चय का फल अपने सामने है।

विज्ञान की दृष्टि से धर्म मे परिवर्तन विनाशकारी

मुवई के डा कन्हैयालाल मुन्शी, चिदवरम विश्वविद्यालय के कुलगुरु सर सी पी रामस्वामी अय्यर आदि असख्य महानुभावों और श्रेष्ठ पुरुषों ने इसे सफल बनाने के लिए पूरी तरह से परिश्रम किए हैं। इस सम्मेलन के पूर्ण मार्गदर्शन का दायित्व द्वारिकापीठाधीश्वर श्रीमद्जगद्गुरु शकराचार्य जी महाराज ने उठाया है। उन्होंने बडे प्रेम, आनद तथा स्नेह से सभी को अतीव प्रोत्साहन देते हुए, कष्ट सहन करके भी सभी बैठकों में उपस्थित रहकर हम सभी का मार्गदर्शन किया। उनके आशीर्वाद से ही यह कार्य सफल हुआ है।

भिन्न-भिन्न प्रकार के जो प्रस्ताव यहाँ पर पारित हुए हैं, उनसे थोडी-बहुत मात्रा में इस परिषद् का हेतु और उद्देश्य सबके सामने आ सकता है। यहाँ मैं एक बात स्पष्ट करना चाहता हूँ कि अपना यह कार्य, अपने धर्म में परिवर्तन करने का नहीं है। कभी-कभी लोग कहते हैं कि आज तो विज्ञान का युग है। अत विज्ञान के युग के साथ मेल रखने के लिए अपने धर्म में परिवर्तन करना चाहिए। मैंने कहा कि विज्ञान का जितना मेल अपने धर्म के साथ बैठेगा, उसका उतना ही उपयोग करना चाहिए, वरना धर्म, धर्म नहीं रहेगा। जहाँ धर्म नहीं रहता, वहाँ पर समाज की प्रेरणा नहीं होती, लोगों के कर्तव्यों का निर्धारण नहीं होता, लोगों को इहलोक और परलोक के कल्याण का मार्ग नहीं मिलता और मानव में समग्र रूप से विभ्रम उत्पन्न हो जाता है। इसलिए विज्ञान के सशोधनों के साथ धर्म में परिवर्तन करने का विचार करना अनिष्टकारी ही है।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि अपना जीवन किसी विशिष्ट सिद्धात, विशिष्ट पद्धति और विशिष्ट आचारों से चलता है। समय-समय पर विज्ञान के साथ तथाकथित सशोधनों के कारण यदि उनको हम छोड दें, तो फिर एक राष्ट्र, एक धर्म-सस्कृति और एक समाज के नाते जीवित रहने का अपना अधिकार ही समाप्त हो जाता है। इसलिए हम लोगों को जितनी सशोधनात्मक बातें जगत् में सुख देने के लिए हुई हैं, उनका पूरा उपयोग करते हुए भी अपने स्वत के जीवन के सिद्धातों और उसपर आधारित अपने व्यवहार एव आचरण को छोडना नहीं चाहिए। उसके साथ विज्ञान का मेल बैठाने के प्रयत्न करने चाहिए।

ऐसा होते हुए भी मैंने प्रारभ में एक प्रस्ताव का उल्लेख किया था

और उसका अर्थ भी बताया था। विगत सहस्राधिक वर्षों में भारत पर अनेक आक्रमण हुए। उनके कारण अनेक लोगों के अंतःकरण का आत्मविश्वास टूट गया। परानुकरण की अत प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। उसमें से अपने धर्म की, उसके अनुसार आचरण करने की अवहेलना, अनादर और कभी-कभी धिक्कार तक करने की अनिष्ट प्रवृत्तियाँ प्रबल हुई हैं। परकीय जीवन स्वीकार करने से हिंदुओं की यवनों जैसी अवस्था उत्पन्न हो गई है। सस्कार से शून्य बने हुए अपने उस समाज को धीरे-धीरे अपने धर्म की श्रेष्ठता, तत्त्वज्ञान तथा अपनी आचरण-परपरा की श्रेष्ठता का बोध कराते हुए, उसको फिर से प्रतिष्ठित कराने का प्रयत्न करना चाहिए। जब ऐसा प्रयत्न करना होता है, तब उसे सबसे छोटी अवस्था से प्रारभ करने की आवश्यकता रहती है। इसी दृष्टि ने कुछ न्यूनतम सस्कार प्रदान करने की व्यवस्था अपने विद्वान लोगों से माँगने का प्रस्ताव यहाँ पर हुआ है।

ये सब बातें इसलिए भी आवश्यक हैं, क्योंकि विदेशों में रहनेवाले अपने अनेक बधु हिंदू ही हैं। वे बडे श्रद्धावान हैं। उनके अत करण में हिंदू बनकर रहने की अभिलाषा बहुत दृढ है। अपने देश में सभी प्रकार के सत-महात्मा हैं, किंतु निकट होने के कारण हम लोग उनका समुचित आदर नहीं करते। हम उनके जितने निकट रहते हैं, सभवत उनका उतना ही कम श्रेष्ठत्व हमको दिखाई देता है। परतु दूरस्थ बैठे हुए अपने बधुओं के अत करण में अपने धर्म के प्रति अत्यत उत्कट श्रद्धा और भक्ति है। वे चाहते हैं कि सभी प्रकार से वे अच्छे हिंदू बनकर रहें। परतु उनको सस्कार, ज्ञान, प्रवचन आदि के द्वारा अत करण की भावना को जागृत रखने की कोई व्यवस्था दिखाई नहीं देती। जैसा कि यहाँ के स्वागताध्यक्ष महामडलेश्वर श्रीमद्‌महेशानदगिरि महोदय ने बताया कि देश-विदेश में रहनेवाले बहुत से लोग स्वय को हिंदू तक नहीं कहते, जो कि कभी अपने हिंदू-धर्म के ही अनुगामी थे। उनमें से अनेक अपने को क्षत्रिय भी कहते हैं। परतु उधर उनको सस्कार देनेवाला कोई नहीं रहा। शास्त्र कहते हैं कि इससे मनुष्य ब्राह्मण के आदर्शों से व्रात्यत्व प्राप्त करता है। वैसी व्रात्यत्व की अवस्था उन्हें प्राप्त हुई है। अपने बहुत से हिंदू बधु दशकों तक भिन्न-भिन्न देशों में रहने के कारण मन के अदर तीव्र अभिलाषा होते हुए भी सही ढग से सस्कार प्राप्त करने में असमर्थ रहे। इन सबके लिए हमें समुचित व्यवस्था करनी चाहिए।

अभी तक तो हम लोग अपने स्वय के घर के बारे में भी नहीं सोचते थे। अपने घर के चारों ओर जो बधु हैं, उनकी चिता करने की अपने अत करण में न प्रेरणा थी, न प्रवृत्ति और न अनुकूलता। परतु जैसे-जैसे अब अपना समाज जागृत होकर अपने दायित्व को पहचानता जा रहा है, वैसे-वैसे वह जगत् के भिन्न-भिन्न देशों में रहनेवाले अपने बधुओं को सुसस्कारित कर प्राचीन काल से अखड रूप से चलते आए हिंदुत्व के प्रबल सूत्र में सबको गूँथकर खडा करने का अपना कर्तव्य पहचानने लगा है। इस बोध के प्रथम आविष्कार के रूप में यह सम्मेलन अपने सामने है। अपने समाज के सबध में अधिकाधिक मात्रा में श्रद्धापूर्वक विचार कर उसको प्रबल हिंदू बनाकर रखने की आवश्यकता है।

दुर्भाग्य से हम लोग आजकल आत्मविश्वासशून्य हो रहे हैं। आजकल के मानसशास्त्र जिसे हीनभावना कहते हैं, उससे ग्रस्त हैं। इसीलिए हम लोगों को ससार में किसी के पास जाकर स्वभाषा में बोलने और स्ववेश में विचरण करने में भी लज्जा लगती है। जहाँ पर स्वभावत स्ववेश से लज्जा होती है, वहाँ पर स्वधर्म और स्वसस्कृति का आत्मविश्वासयुक्त उच्चारण कर, उससे लोगों को प्रभावित कर सकना कैसे सभव होगा? अपनी वास्तविक इच्छा है कि प्रत्येक हिंदू किसी भी समाज के बीच में जाकर रहे, तो वहाँ के उस शुष्क तृणवत ढेर के समान बने हुए समग्र समाज को अपने समान ही अग्नि-स्फुल्लिग के रूप में, याने अपने प्राचीन, श्रेष्ठ और सत्यधर्म के अनुगामी के रूप में खडा करने के आत्मविश्वास से रहे। अपने धर्म और सस्कृति के सबध में ज्ञान प्राप्त कर निर्भय और नि शक होकर सबका आह्वान करने की शक्ति प्रत्येक में आनी चाहिए। उस दृष्टि से एक प्रबल वातावरण बनाने की आवश्यकता है। अपने समाज का व्यक्ति यह कर नहीं सकता या उसके अदर इतनी बुद्धि नहीं है, ऐसी बात नहीं है, परतु वह एक प्रकार की हीनभावना से ग्रस्त है। उसका स्वाभिमान नष्टप्राय हो चुका है।

इसका एक कारण यह है कि १२०० वर्ष तक परकीय आक्रमणों के सामने धक्के खाते-खाते हमारी शक्ति कम हो गई है। अपनी इस मूल-भूमि में भी आज की परिस्थिति के भय से हम स्वय को 'हिंदू' कहलाने में सकोच का अनुभव करते हैं, परतु ऐसा साहस प्रकट होना

चाहिए कि मैं हिंदू हूँ, इस भारत की पुण्य परपरा का सरक्षण-सवर्धन और सभी प्रकार का सप्रसारण करना मेरा परम पवित्र कर्तव्य है और इसे पूर्ण करने के लिए मैं आगे बढूँगा। इस प्रकार का आत्मविश्वासयुक्त वायुमडल अपनी इस भूमि में अपने बडे-बडे कर्ता-धर्ता लोगों ने बनाया ही नहीं।

आत्म-सम्मान बढाने के लिए

अपने हिंदू समाज के सभी पथों, उपपथों के लिए अत्यत ही प्रिय, आदरणीय और सरक्षण करने योग्य गो-माता है। जब इस भूमि पर अग्रेजों का परकीय राज्य था, तब उन्होंने हमारे आत्माभिमान को तोडने के लिए गोहत्या जारी रखी। अब अग्रेजों के चले जाने के बाद भी अपने देश के समग्र समाज के स्वाभिमान को पुन स्थापित करने के लिए गोहत्या बद करने का निश्चय कर सविधान के अनुसार कानून बनाने का साहस अपने लोगों ने प्रकट नहीं किया। इस प्रकार की स्थिति में भिन्न-भिन्न देशों में रहनेवाला अपने यहाँ का मनुष्य किस आधार पर आत्मविश्वास के साथ मस्तक ऊँचा करके खडा रहेगा?

यह आधार हमें यहाँ पर उत्पन्न करना होगा। यह देवभूमि, धर्मभूमि है। इसी में से वह आधार उत्पन्न होगा। इस आधार को उत्पन्न करने का प्रथम प्रयास इस नाते स्वाभिमानपूर्वक हम कहें कि हम सब लोग हिंदू हैं और हिंदू इस नाते सारे जगत् में विचरण करें। सारे जगत् के लोगों को अपने महान सनातन धर्म का सिद्धात बताकर उनको इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने के लिए प्रोत्साहन दें, अर्थात् केवल सख्या बढाना ही अपना काम नहीं है। जिनको अपने सिद्धात पर विश्वास न होने के कारण सख्या बल पर विश्वास रखकर चलना पडता है, वे भले ही चलें। अपने सिद्धात अविचल, श्रेष्ठ, सनातन और अमर हैं, सब प्रकार से मनुष्य को अमर बनानेवाले हैं। इसलिए अपने को चिता करने की कोई आवश्यकता नहीं।

कभी-कभी लोग कहते हैं कि जो भिन्न-भिन्न सप्रदाय चलते हैं, उनको समाप्त करने के लिए आप चले हैं क्या? स्वामी विवेकानद के शब्दों में हम कह सकते हैं कि हमारा ऐसा कोई सकल्प नहीं है। हम किसी से यह नहीं कहते कि तुम ईसाई मत बनो या इस्लाम के अनुसार कुरान-शरीफ का अध्ययन करना या पाँच बार नमाज पढना ठीक नहीं। हम इतना ही कहते हैं कि जो कुछ करना है ईमानदारी से करो, चारित्र्यसपन्न बनकर और मानवता पर प्रेम रखकर करो। सदाचरण आदि सर्वश्रेष्ठ सद्गुण

ससार के यच्चयावत् मानव जाति के लिए हैं। उनका परिपालन करते हुए चलो। उनके नाम पर अपने स्वार्थ को पूर्ण मत करो, व्यभिचार मत करो और विनाश मत करो, यही अपना आग्रह है।

अपना सनातन धर्म इस प्रकार का सर्व-सग्राहक, सबको प्रश्रय देनेवाला है, नाश करनेवाला नहीं। बाकी उपासना-पथों के प्रमुख भी ऐसा ही कहते हैं। भगवान ईसा मसीह ने कहा था– 'मैं परिपूर्ण करने के लिए आया हूँ, न कि विनाश के लिए।' किंतु उनके अनुयायी इस सिद्धात के ऊपर चलते नहीं। जहॉ-जहॉ वे जाते हैं विनाश के लिए ही जाते हैं, न कि परिपूर्णता के लिए।

अनेकता मे एकता

ईसा मसीह के कहने का अर्थ यही है कि अपने-अपने धर्म के अनुसार भगवान की प्रार्थना और पूजा करो। यह सब करते हुए सपूर्ण मानव के एकीकरण का सिद्धात हृदय में पक्का रखकर और वह एकीकरण जिसके आधार से हो, ऐसे तत्त्वज्ञान का आश्रय लेकर भगवान की प्रार्थना ईमानदारी से करो। ऐसी सग्राहकता का भाव अपने यहॉ पर ही है। भूतकाल में भारत में जब अनेक पथ-सप्रदायों में आपस में सघर्ष हुए, उस समय सभी का समन्वय करने के लिए धर्म के तत्त्वज्ञान के प्रबल अधिष्ठान पर एक महान आदोलन श्रीमद् आद्य शकराचार्य ने चलाया और उसमें यश भी पाया। आज अपने सामने यही विचार होना चाहिए कि सबके प्रति अत करण में सद्भाव व प्रेम रखकर अपने इस महान, चिरजीव और सनातन धर्म के आधार को लेकर सब लोग प्रबल प्रयत्न करें। आजकल कोई अपने को सनातनी या कोई आर्यसमाजी कहता है। इन शब्द-प्रयोगों का जिसे मैं सनातन धर्म कहता हूँ, उससे कोई सबध नहीं है। सनातन, याने हमेशा रहनेवाला। पहले था, आज है और आगे भी रहेगा। ऐसा जो अपना महान, चिरजीवी, सिद्धातमय और आचारमय धर्म है, वह सनातन धर्म है। अपनी इस महान परपरा में उत्पन्न हुए बौद्ध, जैन आदि सभी पथों का अतर्भाव होता है। अपने यहॉ दशावतार में भगवान बुद्ध भी एक अवतार हैं। जयदेव कवि ने उनके विषय में कहा कि हिंसात्मक यज्ञ का भगवान बुद्ध ने निषेध किया है।

मुझे अपने प्रवास में जैन सप्रदाय के एक बडे श्रेष्ठ मुनि मिले थे। उनकी बडी कृपा हम लोगों पर है। एक समय मेरे सामने कुछ जैन बधुओं

ने प्रश्न रखा कि हम लोग अपने-आपको हिंदू कैसे मानें? हमारा तो अलग जैनानुशासन है। मैंने कहा, 'भाई! मैं इस बारे में बोलने का अधिकारी नहीं हूँ, मैं मुनि जी से जाकर पूछ लेता हूँ।' मुनि जी के पास जाकर मैंने कहा कि 'ऐसा कुछ लोग बोलते हैं, जैन भगवान का आदेश क्या है, यह बताइए?' उन्होंने कहा, 'वेदों में सब प्रकार का ज्ञान दिया है, उपासनाएँ दी हैं। कुछ उपासनाएँ तो रजोगुणी मनुष्यों के अनुकूल हैं, कुछ तमोगुणी मनुष्यों के। वेदमाता ने किसी का भी निषेध नहीं किया है। सबके लिए उसके स्वभाव के अनुकूल उपासना देकर उसे आगे बढ़ाने का ही प्रयास किया गया है। परम कारुणिक वेदमाता ने जो केवल अत्यंत श्रेष्ठ सत्वगुणी बन सकते हैं, उनके लिए मार्ग बताया है। बस, उतने ही सिद्धांतों को लेकर जैन-सम्प्रदाय चला है। वेद की परंपरा, उसी के तत्त्वज्ञान के आधार पर अपने हिंदू-समाज के जीवन को शुद्ध सात्विक रूप से परिपुष्ट करने के लिए यह जैनानुशासन चलता है।' अंत में उन्होंने कहा, 'जो अपने को हिंदू नहीं कहेगा, वह जैन कैसे रहेगा?' इतने बड़े श्रेष्ठ आत्मानुभूतिसंपन्न महापुरुष के शब्द मेरे अंतःकरण पर अंकित हो गए।

अपने सब सम्प्रदाय इसी परंपरा में ही उत्पन्न हुए हैं। किसी ने किसी विशिष्ट पद्धति का निषेध कर दिया होगा। निषेध में उनकी भाषा कभी-कभी उग्र भी हो गई होगी, परंतु सब सम्प्रदाय अपनी मूल परंपराओं को पकड़े हुए हैं, इसलिए सब अपने लिए ग्राह्य हैं, वंदनीय हैं। उनमें सभी प्रकार का सामंजस्य प्रस्थापित कर अपने समग्र समाज का वैभव-संपादन करने का अपना कर्तव्य है। इसी दृष्टि से सभी सम्प्रदायों के महान आचार्यों को प्रार्थना कर यहाँ निमंत्रित किया है। सबने समाज की आज की स्थिति, उसमें एकीकरण की नितांत आवश्यकता, पंथ-सम्प्रदाय आपस में आनंद से वाद-विवाद भले ही करें, परंतु प्रत्यक्ष व्यवहार में सब मिलकर एक ही अधिष्ठान पर समाज तथा राष्ट्र के हित के लिए खड़े हों, इसकी आवश्यकता का अनुभव किया है। सभी ने निमंत्रण स्वीकार कर यहाँ उपस्थित होकर इस परिषद् को अपना आशीर्वाद दिया है। सबने इस एकीकरण, सामंजस्य और एकात्मता का इतना प्रबल समर्थन किया है, जितना करने की मेरी पात्रता नहीं है।

मैं समझता हूँ कि यह दो-ढाई दिन का अवसर स्वर्णाक्षरों से लिखने लायक है। यह अपने लिए भाग्य का क्षण है। इतने वर्षों तक सोए अपने भाग्य ने करवट ली है। अब जगत् में डंका बजेगा, झंडा ऊँचा

फहराएगा। श्रीमद् स्वामी विवेकानद जी जैसे महापुरुषों ने सारे जगत् में घूमकर जो कहा था कि ससार के मस्तक पर हमारा झडा फहराएगा, वह दिन निकट आ रहा है, इसमें कोई सदेह नहीं।

'हिंदुत्व' के प्रबल भाव को जागृत करे

अब परिश्रम कर सबको मिलाकर हिंदुत्व की प्रबल भावना जागृत करने की आवश्यकता है। यह हम स्वत से प्रारभ करें। इसमें उपदेश की कोई बात नहीं। प्रत्येक स्वत से प्रारभ कर कहे कि मैं हिंदू था, हिंदू हूँ और हिंदू ही रहूँगा। श्रद्धा से इसके मत का, आचार-नियमों का पालन करूँगा। श्रद्धा से इसके सिद्धातों का अध्ययन कर सब प्रकार से अपने जीवन का उद्धार करूँगा। गुणसपन्न, चारित्र्यसपन्न, शीलसपन्न बनकर जगत् के मानव के सामने आदर्श बनूँगा। यदि कोई बुराई है, तो उसे जड-मूल से उखाडने के लिए भगवान से प्रार्थना कर सब प्रकार से यशस्वी बनूँगा– ऐसा प्रयत्न सबको करना पडेगा। स्वत में यह परिवर्तन करते-करते हम सब एक-दूसरे के साथ हृदय मिलाकर, परस्पर के इस दृढ विश्वास और निश्चय की अनुभूति का आदान-प्रदान करते हुए यच्चयावत् हिंदू-समाज में, मैं हिंदू हूँ और हिंदू के नाते मैं सूत्रबद्ध रहूँगा, ऐसा निश्चय करना चाहिए। सब पथ-सप्रदाय मेरे हैं, सब जातियाँ मेरी हैं, गिरिकदराओं में रहनेवाले लोग मेरे हैं। वे दु खी हैं तो हम लोगों के दोष के कारण ही हैं। समझदार कहलानेवाले अपने हिंदू-समाज के बडे वर्ग के कारण उपेक्षित पडा हुआ अपना वन्य समाज मेरा अभिन्न अग है। इसके साथ इतने वर्षों तक किए गए अन्याय का परिमार्जन करने के लिए जो-जो आवश्यक है, वह मैं करूँगा, इस प्रकार की प्रबल धारणा सबके अदर उत्पन्न कर, एकसूत्रबद्ध, शक्तिसपन्न, जगत् में मस्तक ऊँचा करके खडा होनेवाला हिंदू-समाज अपने जन्मस्थान इस मूल भूमि में आसेतु-हिमाचल खडा होगा इसका निश्चय कर काम में जुटें।

इस निश्चय से ही जगत् के कोने-कोने में जाकर हम लोग अपने धर्म का प्रसार कर, वहाँ के सब हिंदुओं को जागृत ओर सुसस्कारित कर सकेंगे। ज्वलत स्फुल्लिंग के नाते प्रत्येक व्यक्ति काम कर सकेगा। इस प्रकार से अपने महान धर्म के अमर तेज से जगत् को यच्चयावत् हिंदू आप्लावित करेंगे, ऐसा निश्चय कर अपने को काम करने के लिए आगे बढना होगा। इस काम का यह प्रारभ है।

सम्मेलन में पारित प्रस्ताव के अनुसार स्थायी समिति बन रही है, उसका कार्य शुरू हो जाएगा। उसके जो कर्ता-धर्ता हैं, वे काम करेंगे, लेकिन हम लोगों का कर्तव्य रहेगा कि पूर्ण शक्ति लगाकर उसका अच्छा पोषण करें। जो-जो काम करने की आवश्यकता पडेगी, उसको पूर्ण करने के लिए अपना पैर कभी भी पीछे नहीं रहेगा, ऐसा निश्चय करके हम काम करें। अपने सामने कर्तव्य बहुत बडा है। सब बधुओं को स्मरण करा देने का जो मेरा कर्तव्य था, वह मैंने किया है। सब साधु-सतों का आशीर्वाद ग्रहण कर, विश्व हिंदू परिषद् को सदा के लिए प्रबल बनाने का दृढ निश्चय लेकर हम यहाँ से जाएँ।

卐 卐 卐

१७. विश्व हिंदू परिषद्, असम का प्रथम सम्मेलन

(२ अक्तूबर १९६६ को गोहाटी में आयोजित विश्व हिंदू परिषद् के सम्मेलन में दिया गया भाषण)

वनों में तथा पहाडों पर रहनेवाले अपने बधुओं के पास अनेक शताब्दियों से हम गए नहीं। सपूर्ण रूप से हम उनको भूल गए, एक प्रकार से उनके पिछडेपन को सहाय्य करते रहे। ब्रिटिश अपनी समाज-व्यवस्था के टुकडे-टुकडे करना चाहते थे। उन्होंने अपने भाई-बहनों को 'आदिवासी', 'वनवासी', 'पहाडी' आदि एक से एक विभक्ततासूचक नाम दिए। विदेशी शासकों के द्वारा अलगाव की प्रवृत्ति का बीजारोपण करने के कुअभिप्राय को न समझकर हम उनके जाल में फँस गए। अपने इस विशाल देश में कुछ लोगों को महानगरों में, कुछ लोगों को शहरों में, बहुसख्यकों को गाँवों में तथा कुछ लोगों को पहाडों में रहना पडेगा। किंतु ऐसा सब होने पर भी क्या हम सारे एक नहीं हैं? सत्य यह है कि हम इन लोगों के पास कभी गए ही नहीं। हमने अपने इन भाई-बहनों को आधुनिक शिक्षा सस्कृति एव कला का परिचय तक नहीं कराया। इसीलिए इनका पिछडापन स्वाभाविक ही है। किसी भी समाज में कुछ लोग प्रगति कर लेते हैं तो कुछ पिछडे रहते हैं, कुछ दु खी और कुछ सुखी होते हैं। कुछ लोग शिक्षा-दीक्षा के साधन प्राप्त न होने के कारण जीवन की सुख-सुविधाओं से वचित रहकर दु ख

एव दारिद्र्य का जीवन विताते हैं, किंतु इसके लिए जिम्मेदार हमारे पिछडे भाई-बहन नहीं, बल्कि हम स्वय हैं।

देश में तथा विदेशों में बहुत से ऐसे हिंदू हैं, जो हिंदू जीवन-पद्धति से अनभिज्ञ होने के कारण पवित्र सस्कार एव आचारों के बिना जीवनयापन कर रहे हैं। जन्म से मृत्युपर्यंत हमारे लिए कुछ सस्कारों की व्यवस्था की गई है। ये सस्कार हमारे जीवन के आदर्श एव उद्देश्यों का पथ-निर्देश करते हैं। जो लोग इन सस्कारों की सुविधाओं से वचित तथा अनभिज्ञ हैं, उन्हें अपनी जीवन पद्धति को अपनाने के लिए हमें आग्रह करना पडेगा। ऐसे लोग भारत से बहुत दूर विदेशों में रहनेवाले ही नहीं हैं, अपने ही इस देश में, जगल, पहाड एव कदराओं में भी वास करते हैं। उन सबको आज की प्रचलित भाषा में 'निम्न', 'पिछडे' आदि अनेक नामों से अभिहित करना घोर अन्याय होगा। कुछ लेखकों ने लिख दिया कि नागा हिंदू नहीं हैं और हम भी वही बात कहने लगे कि ये वनवासी, गिरिवासी भाई-बहन जड पदार्थों के उपासक हैं। ये लोग साँप, वृक्ष, पत्थर, नदी एव बादलों की पूजा करते हैं। एक बार मैंने एक राजनैतिक नेता से प्रश्न किया— 'हिंदू नागाओं को किसी कमेटी, आयोग अथवा सरकार में क्यों नहीं लिया जाता? किसी समस्या पर विचार-विमर्श में उनको क्यों नहीं बुलाते। जबकि इसाई धम में धर्मांतरित नागाओं से इनकी सख्या बहुत ज्यादा है?' उन्होंने कहा— 'ये लोग केवल सस्कृति के उपासक हैं, हिंदू नहीं हैं।' वे कहना चाहते थे कि ये केवल जड-पदार्थ, वृक्ष एव पशु पक्षियों की पूजा करते हैं, इसलिए हिंदू नहीं हो सकते। मैंने उन्हें कहा, 'मैं भी अन्य हिंदुओं की तरह वट-वृक्ष एव साँप की पूजा करता हूँ। तब क्या मैं हिंदू नहीं हूँ?' सब हिंदू प्रकृति पूजक हैं। अपने देश में साँप और पहाड, वृक्ष और नदी की पूजा कौन नहीं करता? हम भगवान को सर्वव्यापी मानते हैं और सभी को भगवान के प्रतीक स्वरूप मानकर पूजा करते हैं। भगवान सुब्रह्मण्यम के मदिर में सर्प और मयूर, शिव के मदिर में नदी, राम के मदिर में बदर और भगवान विष्णु के मदिर में गरुड आदि भगवान के प्रतीकों की हिंदू उपासना करते हैं। नाग पचमी सर्प पूजा का एक उत्सव है, जिसका हिंदू पचाग के अनुसार सर्वत्र पालन किया जाता है।

ईश्वर-उपासना के विभिन्न स्वरूप

कुछ लोग पूछ सकते हैं कि जीव-जतुओं की उपासना क्या

है? इसमें आश्चर्यचकित होने का कोई कारण नहीं। अपने ज्ञान-विज्ञान के भंडार वेदों में यम, वरुण, वायु, सूर्य, अग्नि आदि की उपासना-विधि तक का वर्णन है। यह कहना गलत होगा कि वैदिक ऋषि-मुनियों ने इन सबका अलग अस्तित्व माना है। सच बात तो यह है कि ऋषि अलग-अलग रूपों में अलग-अलग पद्धति से पूजा करने पर भी यह समझते थे कि ये सब ईश्वर के प्रतीक मात्र हैं।

एकेश्वरवाद एवं अद्वैत के उद्‌घोषक भगवान शंकराचार्य ने स्वयं शिव, विष्णु, गणेश एवं शक्ति की पूजा का विधान बताया है। उन्होंने स्वयं पाँच देवी-देवताओं की 'पंचायतन' उपासना को सारे देश में प्रचलित किया। हमारा यह अटल विश्वास है कि अलग-अलग उपासना-पद्धतियाँ होने पर भी हम एक हैं। ईश्वर-उपासना भिन्न पद्धति से, चाहे पर्वत की हो या वृक्ष की, नदी की हो या मूर्ति की अथवा आदर्श की, जो जिसे अच्छी लगे, उस प्रकार उपासना करते हुए भी हम एक हैं। जाति, भाषा, विश्वास और संप्रदाय के नाम पर आदिवासी, गिरिवासी, वनवासी और हरिजन आदि नाम देकर वर्गभेद की दुःखदायी मनोवृत्ति से समाज को विखंडित कर केवल मात्र विदेशी शासक एवं देश के शत्रु ही लाभान्वित हुए हैं। हमारा अथवा अपने समाज का कोई उपकार इससे नहीं हुआ। विदेशी शासकों द्वारा मिकिर, नागा, गारो, खासी आदि को एक-दूसरे से अलग कर अकेला बनाकर उन्हें संपूर्ण जाति से, समाज से दूर करने का रचा हुआ यह एक षड्यंत्र मात्र है। शत्रु को जीतना हो तो पहले उनमें भेदों की सृष्टि करके देश की एकता की कड़ी कमजोर करनी पड़ती है। अंग्रेजों ने शासन के प्रथम दिन से ही इसी कूटनीति का अनुसरण किया और अपने समाज को छिन्न-विच्छिन्न करने के लिए समाज-व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास किया, जिससे छोटे-छोटे हिस्सों में बँटे समाज पर वे निश्चित हो शासन कर सकें। गत बीस वर्ष के स्वाधीनता-काल में भी हमने शत्रु की भेदनीति के दुष्परिणामों को समझने का प्रयास नहीं किया। अब हमें अपनी भ्रांत धारणाओं को दूर कर अपने चिरस्थायी धर्म की भित्ति पर आधारित बृहत्तर हिंदू समाज को एकता के सूत्र में आबद्ध करना होगा। हम आगे बढ़ेंगे, अपने धर्म की रक्षा के लिए, अपने भाई-बहनों की रक्षा के लिए और अपनी इस मातृभूमि भारतवर्ष की रक्षा के लिए। हिंदू राष्ट्र के नाते मानव-मात्र की शांति का दायित्व हमारे ऊपर है, इसीलिए विश्व हिंदू परिषद् की स्थापना हुई है।

हमारा उद्देश्य सबको एक ही प्रका
करना नहीं है। अगर यह हुआ तो यह परि
रह जाएगी। बहुत लोग इस प्रकार के सि
विभिन्न संप्रदायों की उपासना-पद्धति में एक
प्रकार की उपासना-पद्धति हिंदू धर्म में चलत
सबको समाविष्ट कर लेना। हिंदू शब्द का
प्रति श्रद्धा एवं सहिष्णुता।

शंकराचार्य जी द्वारा किए गए प्रयास

क्रिश्चियन पादरी अकाल एवं दा
जाकर खाद्य सामग्री, दवा आदि वितरित कर
प्रकार के प्रलोभन भी देते हैं। आश्चर्य की
को स्वयं करना चाहिए, वह कार्य अर्थात् उ
सरकार इन क्रिश्चियन पादरियों के द्वारा क
कहते हैं कि भगवान ईसा मसीह ने हमें आप
भेजा है। गाँव के भोले-भाले लोग इनकी बात
हैं। पादरी इनके सरल स्वभाव का धर्मांतरण
उठाते हैं। इसे सरकार को बंद करना
क्रिश्चियन पादरियों को खाद्य वितरण का मा
व्यापारी एवं बैंक कृषकों को ऋण नहीं देते,
जाकर रुपया उधार देते हैं। इसे बंद करना

कांचीपीठ के शंकराचार्य जी ने कुछ
सहायता के लिए एक अति व्यावहारिक माध
शिष्यों एवं समग्र समाज को दीन-दुखियों के
का आह्वान किया है। यह संग्रहित अन्न
एकत्रित किया जाएगा और वहाँ से दीन-दु
व्यवस्था होगी। इस कार्य का उत्साहजनक ला
व्यवस्था सर्वत्र प्रचारित होनी चाहिए। हमें उ
के विषय में चिंतन करना चाहिए। उनकी

के भावों को दूर करना पडेगा। तभी हम अपने पिछडे भाई-बहनों के हृदय में अपने समाज एव धर्म के प्रति आस्था जागृत कर सकेंगे।

हमारे कार्य की दिशा

हमें अपने बीच व्याप्त सदेह एव अविश्वास के वातावरण का त्यागना पडेगा। अपना नेतृत्व वर्ग और देशवासी एक स्थान पर एक साथ एकत्रित नहीं होते, यह दु ख का विषय है। यही नहीं, अलग-अलग पीठों के शकराचार्य एव विभिन्न वैष्णवाचार्य भी एक साथ नहीं आते। यहाँ तक ही नहीं तो लिगायत सप्रदायवाले अन्यों का छुआ पानी भी नहीं पीते। ऐसे अलग-अलग विचारोंवाले लोग कभी एकत्र नहीं हुए। भगवान के आशीवाद से अब परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। पिछले प्रयाग-सम्मलेन में धर्माचार्य, धर्मगुरु, वैदिक-अवैदिक आदि सभी एक ही मडप में सम्मिलित हुए थे। सबने मिल कर समाज की समस्याओं पर जो विचार-विमर्श किया वह देखने लायक था। जो व्यक्ति एक बार हिदू समाज से धर्मांतरित हो गया, उसे सदा-सर्वदा के लिए समाज से अलग कर देते हैं। यह नहीं होना चाहिए। उसे फिर से अपने घर में लाना ही होगा। यदि अपने समाज में किसी व्यक्ति को कोई धर्मांतरित करना चाहे अथवा धर्मांतरण करा भी दे, तो इसके लिए हमें सावधान रहना पडेगा। अगर धर्मांतरण हो गया तो उसे अपने गले लगाकर उसे फिर से स्वधर्म, स्व-समाज में लाना ही पडेगा। समाज अगर जीवित रहेगा, तभी धर्म जीवित रहेगा। धर्मगुरु एव धर्माचार्यों का अपने पुराने शिष्य एव श्रावकों के बीच जाकर उन्हें उपदेश एव ज्ञान देकर पवित्र करके पुन स्वधर्म में लाना चाहिए, यह समय का आह्वान है।

विश्व हिदू परिषद् की स्थापना का उद्देश्य

मैं पूज्यपाद सत्राधिकारियों से अनुरोध कर रहा हूँ कि उन्हें स्वय यह उद्घोष करना चाहिए कि 'हम अपने समस्त शिष्य एव भक्तों को जो धर्मांतरित हो गए हैं, फिर से स्वधर्म में लाएँगे। वे हमारे साथ रहकर हमारा धर्म मानेंगे।' गुरुजनों को अपने शिष्यों के घर जाकर उन्हें सर्वसहायता कर अपने धर्म में विश्वास रखने के लिए तैयार करना पडेगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आदि शकराचार्य ने अपने धर्म की रक्षा के लिए तीन बार सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया था। गुरु एव आचार्य स्वय आश्रम में बैठकर धर्म रक्षा कर सकेंगे एव शिष्य सग्रह कर सकेंगे, यह असभव है। यह विशेष फलदायी भी नहीं होगा। मैं सबसे प्रार्थना करता हूँ कि आश्रम

से बाहर निकलकर समाज में भ्रमण कर जो अपने धर्म से विमुख हो गए हैं, उनकी रक्षा करने के लिए अग्रसर हों। सरकार हमें सहायता करने आएगी, ऐसी आशा करना व्यर्थ है। आत्मघात न हो इसके लिए हमें स्वय अपनी सहायता करनी पडेगी। यदि कोई स्वय की रक्षा नहीं करना चाहता तो वह स्वय का नाश कराएगा। विश्व हिंदू परिषद् का जन्म इसीलिए हुआ है ताकि लोगों को अपने कर्तव्यों का स्मरण हो सके।

मैं एक बात और कहूँगा। अपना सपूर्ण कार्य, धर्म के प्रति श्रद्धा एव विश्वास का है, कभी भी प्रतिक्रियाशील नहीं होना चाहिए। क्रिश्चियन एव मुसलमान सक्रिय हो गए हैं, इसीलिए हमें अपने समाज एव धर्म के लिए काय करना चाहिए, ऐसी बात नहीं है। औषधि से बीमारी दूर होती है, यह सत्य है, किंतु शरीर को स्वस्थ एव सबल बनाना चाहिए ताकि कोई बीमारी हो ही नहीं। हमें अपने कर्तव्य को अभावात्मक या प्रतिक्रियास्वरूप न लेकर दृढ विश्वास के साथ करना चाहिए। अपनी सस्कृति, समाज एव धर्म के प्रति स्पष्ट प्रेम रहना आवश्यक है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि हमारे विरुद्ध कार्यरत क्रिश्चियन मिशनरी एव मुस्लिम-समाज न रहने पर भी हमें अपने धर्म एव समाज के लिए सदैव कार्यरत रहना है। यही आदर्श लेकर विश्व हिंदू परिषद् की स्थापना की गई है। मुझे निस्सदेह प्रतीत होता है कि सबके समर्थन से इस पूर्वांचल में हिन्दू धर्म एव सस्कृति की रक्षा करने के लिए यह परिषद् एक शक्तिशाली केंद्र बनेगी।

१८ 'पूजा' मासिक का उद्घाटन

(२१ अक्तूबर १९६६, नागपुर)

आज विज्ञान युग का डिमडिम बज रहा है, तो भी मानवी जीवन दुर्दशाग्रस्त है। जीवन में सुरक्षा व स्वास्थ्य रहा नहीं। विज्ञान से जीवन की सभी पहेलियों का उत्तर मिला नहीं है। कारण, केवल भौतिक विज्ञान से मानवी जीवन का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। इसलिए मानव को अध्यात्म एव धर्म का आधार लेना ही पडता है। सृष्टि के प्रारभ से निर्माण हुए युगों-युगों में ऐसा एक भी युग नहीं है कि जिसमें अध्यात्म का विचार न हुआ हो। परतु आज लोगों में विज्ञान युग के परिणामस्वरूप भ्रम निर्माण होने के कारण लोग स्वय को बुद्धिवादी मानने लगे हैं। उनका भ्रमनिवारण होना चाहिए क्योंकि मनुष्य श्रद्धामय होता है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने कहा है–

'श्रद्धामयोऽय पुरुष ।'

विज्ञान द्वारा मानवी जीवन के सत्य का ज्ञान अधूरा ही हुआ है। उसमें 'क्यों?' का उत्तर नहीं मिलता, केवल 'कैसा?' का ही उत्तर मिलता है, क्योंकि वह ही उसको सहजसुलभ है, परतु अध्यात्म 'क्यों?' का उत्तर दे सकता है। अतत विज्ञान को अध्यात्म का अनुसरण करना पडेगा।

भौतिक विषय के शास्त्रज्ञों द्वारा प्रतिपादित किए गए विधानों में मतैक्य नहीं है। कारण, प्रत्येक का अनुभव अलग-अलग है। परतु अध्यात्म के क्षेत्र में 'अतिम सत्य' के विषय में किसी का मतभेद नहीं है।

इहलोक में सौख्य व भगवद्प्राप्ति– ये धर्म के दो अग है। पर मानवी जीवन के अभ्युदय की ओर दुर्लक्ष्य नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि धर्म जीवन में सबसे जुडा हुआ है। कुलधर्म, राष्ट्रधर्म, जातिधर्म व अखिल मानवता का धर्म, इन सभी धर्मो का पूर्णत पालन ही पूर्णत धर्मजीवन है। सामान्यत मनुष्य का ऐहिक जीवन सतोषप्रद हो इसकी शिक्षा लेते समय अथवा वह शिक्षा पूर्ण होने पर अध्यात्म जीवन में प्रवेश करना चाहिए।

हम सर्वसामान्य मानव हैं, उसी के साथ-साथ जिस समाज में हम रहते हैं, उसके घटक भी हैं। तब इस इहलोक में रहते समय प्रत्येक का इहलौकिक कर्तव्य है, दायित्व है– यह ध्यान में रखकर प्रत्येक मानव को अपना कर्तव्य निभाने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

इहलोक का महान धर्म परस्परों के गुण-सवर्धन व विकास के लिए प्रयत्न करनेवाला है। यह मार्गदशन 'पूजा' मासिक द्वारा बार-बार होता रहेगा। यही अपेक्षा इस समय व्यक्त करता हूँ।

१९ गोरक्षा-महाभियान

(१ नवबर १९६६ को गोरक्षा महाभियान समिति के तत्वावधान में मुगेर की जनसभा में दिया गया भाषण)

गोहत्या पर प्रतिबध के लिए अनेक वर्षो से प्रयत्न होते रहे हैं। इन सारे प्रयत्नों में राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का भी सहयोग रहा है। १४ वर्ष पूर्व गोहत्या पर प्रतिबध लगे, इस हेतु केवल ४ सप्ताहों की अवधि में पौने दो

करोड लोगों का असदिग्ध अभिमत उस समय के राष्ट्रपति राजेंद्रबाबू को दिया गया था। राजेंद्रबाबू धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे, उनका भी यही मत था कि गोहत्या पर प्रतिबध लगाना चाहिए। परतु शासकीय व्यवस्था के कारण वे लाचार थे, कुछ कर नहीं सकते थे। इसके अतिरिक्त समय-समय पर भिन्न-भिन्न लोगों का प्रयास चलता ही रहा है। लाला हरदेव सहाय जी ने अथक प्रयास किए। वे बहुत समय तक काग्रेस के कट्टर और एकनिष्ठ कार्यकर्ता थे। अधिक परिश्रम के कारण असमय ही उनकी मृत्यु हो गई।

गाँधी जी का मत

हमें विदित ही है कि स्वय महात्मा गॉधी गोरक्षा के पक्ष में थे। अपनी प्रार्थना में सबसे पहले गो और ब्राह्मण की रक्षा का श्लोक कहा करते थे। गोरक्षा के प्रश्न को वे कितना महत्त्व देते थे, इसका एक उदाहरण बताता हूँ। अपने देश को अग्रेजों से स्वतत्र कराने के प्रयत्न चल रहे थे, तब काग्रेस ने सोचा कि मुस्लिम लीग से समझौता कर लेने पर स्वराज्य-प्राप्ति में सुगमता होगी। महात्मा जी काग्रेस के सक्रिय सदस्य तो नहीं थे, परतु परामर्श अवश्य देते थे। मुस्लिम लीग से समझौते का कागज श्री महादेव देसाई ने जब उन्हें दिखाया, तब उन्होंने उसे पढकर लौटा दिया और समझौते को अपनी स्वीकृति दे दी।

उस समझौते में एक शर्त यह थी कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद मुसलमानों को गोहत्या का अधिकार रहेगा। इस छोटी-सी बात के कारण गाँधी जी को बडी बेचेनी हुई। उन्हें रातभर नींद नहीं आई। रात में ही उठकर उन्होंने श्री महादेव देसाई को बुलवाया और समझौते का कागज मँगवाया। उसे ठीक से पढने के बाद उन्होंने कहा 'गोहत्या की शर्त मुझे मान्य नहीं। गो के प्रति हम कृतज्ञ हैं। इसलिए उसकी रक्षा अपना परम कर्तव्य है।' समझौता उसी समय टूट गया।

कुरान-शरीफ मे आदेश नहीं

गोहत्या के सबध में कुछ लोगों का कहना है कि कुरान-शरीफ में ऐसा आदेश है, परतु यह तर्क उचित नहीं है। यदि ऐसी कोई बात होती, तो मुगलों के शासनकाल में गोहत्या पर प्रतिबध नहीं होता। हम लोग यह जानते हैं कि बाबर ने यहाँ के लोगों की भावना को कुचलना उचित न समझकर गोहत्या पर प्रतिबध लगा दिया था। गोहत्या के पीछे यदि मुसलमानों का धार्मिक भाव होता, तो बाबर उसका पालन करता, क्योंकि

वह अपनी धार्मिक पुस्तक के विरोध में जानेवाला व्यक्ति नहीं था।

हमारी सरकार गोहत्या-संबंधी मुसलमानों के अधिकार को मानती है। इसका कारण यह है कि उन्हें मुसलमानों का संगठित समर्थन प्राप्त होता है। सर्वसाधारण मुसलमानों को छोड़ दिया जाए, तो उनके बड़े-बड़े नेताओं की गतिविधियाँ हमेशा हिंदूविरोधी भाव पर ही आधारित रही हैं। यहाँ के लोगों की धर्म-भावनाओं को कुचलकर अधिकाधिक माँगें मनवाना ही उनकी नीति रही है। इसी कारण वे गोहत्या का आग्रह करते हैं। धार्मिकता का केवल बहाना बनाया जाता है, जबकि वस्तुतः यह धर्म-भावना का प्रश्न ही नहीं है। किंबहुना राष्ट्रविरोधी भावना ही इसका आधार है। फिर भी कोई इसे 'धर्मभावना' ही कहता है, तो प्रश्न उठता है कि धर्म-भावना क्या केवल मुसलमानों में ही है? हिंदुओं की क्या कोई धर्म-भावना है ही नहीं? मुसलमान बहुसंख्य लोगों की धर्म-भावनाओं को कुचलें, क्या इसे गणतंत्र कहेंगे? यह तो तानाशाही है। अतः इसका विरोध अत्यंत आवश्यक है।

अपने देश के मुसलमान किसी समय के हिंदू ही हैं। इसलिए उनका व्यवहार हिंदुओं के समान ही होना चाहिए। हिंदू 'गो' को माता का रूप मानते हैं। मुसलमानों को भी चाहिए कि वे उसे माता का रूप मानकर अपने राष्ट्रीयत्व का परिचय दें। इसी में से उनका भारतीयत्व समझ में आएगा। गोहत्या तो भारत-विरोधी कार्य है।

अपने समाज की विशेषता

आजकल लोग 'गौ' को माता कहने में संकोच अनुभव करते हैं। अपने समाज की यह विशेषता रही है कि भले ही जड़ वस्तु ही क्यों न हो, किंतु जो-जो अपने पर उपकार करता है, उसे हम मातृरूप मानते हैं। इसीलिए अन्न-जल से अपना भरण-पोषण करनेवाली इस पृथ्वी को हमने 'माता' कहा है। अपने पवित्र जल से हमें तृप्त करनेवाली यहाँ की नदियों को भी हम 'माता' मानते हैं। 'गंगा मैया' शब्द कितना पुराना है। अपनी माता का दूध छूट जाने पर गो-दुग्ध पीकर ही हम जीते हैं। गौ के दूध को ही हम लोग दूध कहते हैं। दूध का नाम ही 'गोरस' है। भैंस, बकरी आदि के दूध गो-दुग्ध से उनकी साम्यता के कारण भले ही दूध कहलाते हों, परंतु 'दूध' कहने पर गो-दुग्ध ही माना जाता है। वैसे तो घास-पत्तों में भी दूध के समान जो पदार्थ रहता है, उसे भी 'दूध' ही कहा जाता है। उसे 'दूध'

कहने का कारण गाय के दूध से उसकी समानता ही है। तात्पर्य यही कि गौ हमें जीवनदायी दुग्ध प्रदान करती है, इसी कारण हम उसे 'गोमाता' कहते हैं।

सब प्रकार के उपकार करनेवाली गौ को अप्राकृतिक मृत्यु से बचाना हमारा परम कर्तव्य हो जाता है। प्राकृतिक मृत्यु पर तो अपना वश नहीं रहता, परतु मनुष्य अपने स्वाथ के लिए जो गोहत्या करता है, उसे तो रोकना ही होगा।

पाप का समर्थन महापाप

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो गोहत्या के समर्थन में वेदों के प्रमाण देते हैं। वे कहते हैं कि वेदों में 'गो-मेध' यज्ञ का वर्णन आया है। उनका कहना है कि प्राचीन काल में लोग गोहत्या करके हवन किया करते थे, गोमास खाते थे। वस्तुत ये सब प्रमाण काल्पनिक हैं। शब्दों के अर्थ यथार्थ लगाना चाहिए। 'गो-मेध' का अर्थ यदि गो को काटकर हवन करना है, तो 'पितृमेध' का भी अर्थ माता-पिता की आहुति देना हो सकता है। 'गृहमेध यज्ञ' भी कहा गया है, परतु उसका अर्थ घर को आग लगाना तो है नहीं। इसका अर्थ कुछ और ही है। इसलिए जो वास्तविक अर्थ है, उसको लेना चाहिए। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ऐसे पाप का समर्थन करना अनुचित है। वास्तव में, कुकृत्य से भी बढकर महापाप है।

लोग तर्क भी देते हैं कि गायों की वृद्धि से मनुष्यों की भोजन-सामग्री घट जाएगी। यह तर्क भी युक्तिसगत नहीं है, क्योंकि गाय मनुष्य का भोजन तो खाती नहीं। वह तो अनाज निकालने के बाद जो भूसा बचता है, वही खाती है। अपनी प्राचीन परपरा में अपने पास जो भी जमीन होती थी, उसका एक तिहाई हिस्सा गोचर के रूप में छोड दिया जाता था। इसके पीछे एक शास्त्रीय दृष्टिकोण है। प्रथमत तो गोचर से गायों को घास प्राप्त होती है, दूसरी बात यह कि इससे भूमि की उर्वरा-शक्ति बनी रहती है।

पाश्चात्यो के अनुभव

प्रथम महायुद्ध के समय इग्लैंड के लोगों ने सोचा कि अनाज के मामले में स्वावलबी बनेंगे। इसके लिए उन्होंने सपूर्ण भूमि जोत में लाई। प्रारभ में तो पैदावार बढी परतु कुछ समय के बाद भूमि की उर्वरा-शक्ति कम होने लगी। अत उन्हें पुन गोचर-भूमि छोडनी पडी। अब भारत में

भी वही विधि लागू कर गोचर-भूमि समाप्त की जा रही है। पशुओं को जगलों में चरने नहीं दिया जाता, फिर चारे की कमी बताकर गोहत्या जारी रखने का औचित्य सिद्ध किया जाता है। यह पूर्णत अनुचित है।

अमरीका में खेती की प्रगति की वैज्ञानिक जाँच की गई, तब पाया गया कि कृत्रिम खाद के अधिक उपयोग से खेतों की उर्वरा-शक्ति कम हो गई। वे खेत मरुभूमि में बदल गए, जहाँ घास का तिनका तक नहीं उगता। समूची भूमि क्षारमय हो गई। यह बात भी उनके ध्यान में आई कि गाय-बैल के गोबर से पैदावार भी बढती है और भूमि की उर्वरा-शक्ति भी कायम रहती है। इसलिए अब वे गोबर की खाद का उपयोग अधिक कर, कृत्रिम खाद का उपयोग कम करने लगे हैं। पर वह कृत्रिम खाद हमारे यहाँ भेज रहे हैं।

परकीय देशो का उद्देश्य

कृत्रिम खाद यहाँ भेजने से उनके दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है। एक तो खाद भेजने से हम पर उनका कर्ज बढता जा रहा है। दूसरा यह कि उस खाद से हमारे यहाँ की भूमि की उर्वरा-शक्ति कम होती जा रही है। इस बात को हमारे यहाँ के लोग समझते नहीं। वे समझते हैं कि विदेशी विशेषज्ञ हमारी सहायता कर रहे हैं। उन्हें इस बात का पता नहीं है कि विदेशी हमारे देश की भलाई नहीं, वरन् स्वय के देश का भला सोचते हैं।

वे कहते हैं— 'यहाँ की गायों का दूध क्षयरोगवाहक है।' यदि यहाँ की गायों का दूध पीने से क्षयरोग हो सकता है, तो उसका मास खाने से क्या नहीं हो सकता? असलियत यह है कि वे चाहते हैं कि यहाँ का पशुधन नष्ट हो और दूध पाउडर के लिए हम उनपर निर्भर रहें। यह सब अपने देश को गुलाम बनाकर रखने की नीति मात्र है। इसलिए अपने देश के हितों को सदैव ध्यान में रखकर तथा उनके स्वार्थो को समझकर ही हम उनकी कोई सलाह लें। पराधीनता की कोई बात स्वीकार न करें। यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि विदेशी बिना माँगे ही जब कोई सलाह देते हैं, तो उसके पीछे उनका स्वार्थ रहता है। अत हमें स्वतत्रतापूर्वक विचार करना चाहिए यही बुद्धिमानी की बात है।

कुकृत्यो को रोकना शासन का काम

गोहत्या-बदी के विषय में यह तर्क भी दिया जाता है कि इसके

लिए कानून की क्या आवश्यकता है, अपनी गायें कसाइयों के पास न बेचें। तब गोहत्या अपने आप रुक जाएगी। इसमें कुछ तथ्य अवश्य है, कुछ सरलता भी है, परंतु स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद लोगों की श्रद्धा कम होती जा रही है। कोलकाता के ग्वाले पंजाब से गायें लाकर उन्हें कसाई के हाथों बेचते हैं। ऐसी अवस्था में यह तो शासन का ही काम है कि वह ऐसे कृत्यों को रोके।

कानून बनाने की आवश्यकता का तर्क करनेवालों से शराबबंदी के विषय में भी यही प्रश्न किया जा सकता है। उसके लिए आखिर कानून बनाना पड़ा। यह तो नहीं कहा गया कि कानून बनाने की आवश्यकता नहीं, लोगों में इस बात का प्रचार ही पर्याप्त होगा कि शराब बुरी चीज है। इसे नहीं पीना चाहिए। ठीक यही बात गोहत्या के लिए भी लागू होती है। कानून बनाना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि विपरीत मनोवृत्ति का पोषण होने देना उचित नहीं।

अपने देश के कसाई इसे वंश-परंपरा से चला आया अपना व्यवसाय मानते हैं तथा इसी आधार पर उन्होंने सुप्रीम कोर्ट में मामला भी चलाया। न्यायाधीश महोदय ने यह निर्णय दिया कि जवान गाय, बैल न मारे जाएँ। कसाइयों की रोजी न मारी जाए, इस आधार पर न्यायाधीश महोदय ने कहा कि बूढ़ी गायें मारी जा सकती हैं। अब सोचें कि गायों के कट जाने के बाद कोई कह सकता है कि मांस बूढ़ी गाय का है या जवान गाय का? यह पता लगाना मुश्किल है। दूसरी बात यह कि इस राज्य में जब बड़े-बड़े लोग भी भ्रष्ट हो गए हैं, तब ये छोटे लोग थोड़े से पैसे के लिए यदि जवान गायों को भी बूढ़ी होने को प्रमाण-पत्र दे दें, तो इसमें क्या आश्चर्य? इसलिए अपने विद्वान न्यायाधीश महोदय को इस प्रकार का निर्णय नहीं देना चाहिए था, जिसका परिणाम उनके ही निर्णय के विरुद्ध हो। एक ओर गाय को मारने पर प्रतिबंध लगाते हैं और दूसरी ओर 'लूप होल' रखते हैं। यह ठीक नहीं। अतः संपूर्ण गोवंश की हत्या पर प्रतिबंध लगाना ही न्यायसंगत होगा। इससे कम कोई बात नहीं मानी जाएगी।

वंश-परंपरा से धंधे की बात को ही लें। प्रश्न उठता है कि स्वर्ण-नियंत्रण के द्वारा लाखों स्वर्णकारों को उनके रोजगार से वंचित करना क्या न्यायसंगत था? शराबबंदी के कारण कुछ लोगों का धंधा बंद हो गया। चोरी करना भी कुछ लोगों का धंधा है, तो क्या हम उन्हें ऐसा करने की

अनुमति देंगे? इसलिए यह कहना ठीक नहीं है कि यह उनका धंधा है। यह समाजहित की बात नहीं है। उन्हें अन्य कोई और धंधा दें, न कि गोहत्या का धंधा।

केंद्रीय गृहमंत्री ने एक पत्र लिखकर कहा था कि सभी प्रांत गोहत्या बंदी का कानून बनाएँ, परंतु बंगाल और महाराष्ट्र ने इसे अस्वीकार कर दिया। शिवाजी के वंशजों का नाम लेकर मत प्राप्त करके शासन चलानेवाले लोग शिवाजी के जन्मस्थान पर ही गोहत्या करनेवालों का समर्थन करें, यह कदापि उचित नहीं।

देशव्यापी कानून आवश्यक

यह नितांत आवश्यक है कि गोहत्या-बंदी के लिए केंद्रीय शासन देशव्यापी कानून बनाए, इसके लिए चाहे संविधान में संशोधन ही क्यों न करना पड़े। भिन्न-भिन्न बातों को लेकर संविधान में २२ बार संशोधन हो चुके हैं। अपने देश की जमीन शत्रु को देने का अधिकार प्राप्त करने के लिए जब संविधान में संशोधन हो सकता है, तब गोहत्या-बंदी के लिए संशोधन क्यों नहीं हो सकता? अभी-अभी शुरू होने जा रहे संसद के सत्र में सिंधी भाषा को अपनी एक राजभाषा बनाने के लिए संविधान में संशोधन की बात चलनेवाली है। तब इसके लिए संशोधन न करने की बात युक्तिसंगत नहीं है।

गोरक्षा महाभियान समिति ने निर्णय लिया है कि गोहत्या-बंदी के लिए केंद्र को संविधान में संशोधन कर कानून बनाना ही होगा। हम भी यह निश्चय करें कि इसे कानून के द्वारा बंद करवाकर ही रहेंगे।

शासन चलानेवाले इसे 'पॉलिटिकल स्टंट' कहते हैं। वस्तुतः प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, शंकराचार्य जी, जैनमुनि आदि लोग साधुपुरुष हैं। उन्हें पूजा-अर्चना के सिवा अन्य किसी बात से क्या लेना-देना? मंत्री बनने जैसा जघन्य कार्य वे पसंद भी नहीं करेंगे। जगद्गुरु शंकराचार्य ने तो एक सभा में यहाँ तक कह दिया कि सरकार यदि इसे 'पॉलिटिकल स्टंट' ही समझती है, तो गोहत्या पर अविलंब प्रतिबंध लगाकर वह जनता का समर्थन प्राप्त कर ले। वही यह 'पॉलिटिकल स्टंट' क्यों नहीं कर लेती? उसके लिए तो यह बड़ा ही सरल उपाय होगा। परंतु बात ऐसी नहीं है। स्वयं कांग्रेस के ही एक वरिष्ठ नेता सेठ गोविंददास जी ने कहा है, यदि कांग्रेस गोहत्या बंद नहीं करती, तो उसे मदद या वोट न दिया जाए। यदि सरकार समझती है कि

मुसलमानों के वोट प्राप्त करने के लिए गोहत्या कराना ही है, तो हम हिंदू उसे कतई वोट न दें। मुसलमानों के वोट लेकर वह चुनाव जीत ले।'

कुछ लोग मुझे भी राजनीतिक नेता ही मानते हैं। उनकी यह धारणा है कि मेरा भी मत्री बनने का प्रयास है। परतु मैं राजनैतिक धधा पसद नहीं करता। सौभाग्य से अपने समाज की सेवा का जो क्षेत्र है, वही श्रेष्ठ है। उसी के द्वारा समाज की सेवा में मैं अपना जीवन दे दूँगा। राजनीति में प्रवेश की बात तो मैं स्वप्न में भी नहीं सोचता। मेरी बुद्धि विकृत हो जाने पर भी मैं इसे पसद नहीं करूँगा। परमात्मा की दया से अभी बुद्धि ठीक है। अमृत पिया हुआ व्यक्ति भला छाछ के लिए लालायित होगा?

मेरी इच्छा थी कि प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी अनशन न करें। उनकी घोषणा के पूर्व मुझे यदि पता चलता, तो मैं इसके लिए उन्हें मना भी करता। परतु अब, जबकि वे घोषणा कर चुके हैं, तो वे अनशन पर अटल ही रहेंगे। मैं उन्हें जानता हूँ। वे बात के बहुत पक्के हैं। इसलिए २० तारीख से वे अनशन अवश्य करेंगे।

यह नहीं हो सकता कि अपने साधु-पुरुष उपवास करें और हम देखते रहें। २० तारीख को हम सब एक दिन का उपवास करें। कीर्तनकार लोग भगवान से यह प्राथना करें कि यह धर्मकार्य पूर्ण हो। हम सब एक स्वर से शक्तिशाली आवाज उठाएँ कि गोहत्या बदी के लिए कानून हो।

समय की माँग

सारे देश में घूमते समय मैं देख रहा हूँ कि गोहत्या-बदी के प्रश्न पर लोगों में चेतना आई है, परतु आप सब लोगों से मेरी प्रार्थना यही है कि इसका विस्फोट प्रक्षोभक रूप में न हो। गोमाता की ममता और उसके करुणामय रूप को देखें और अपने मन में तनिक भी प्रक्षोभ न लाते हुए शातिपूर्वक माँग को रखने का प्रयत्न करें। यदि सरकार की बुद्धि विकृत हो गई है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि हमें भी वैसा ही बनना है। अपने आप को पूर्ण सयमित रखते हुए इस आदोलन को चलाना होगा। चीन और पाकिस्तान का सकट सीमा पर विद्यमान है। ऐसी स्थिति में हमें यह सावधानी बरतनी होगी कि इस आदोलन के कारण कोई भीषण विस्फोट न हो। हम सारे समाज को जगाकर ऐसा जनजागरण करें, जिससे 'गौ', जो राष्ट्र का मानबिंदु है, की रक्षा हो सके।

'गो' की आर्थिक-सामाजिक उपयोगिता आदि के विषय में कुछ

करने की आवश्यकता नहीं है। हम केवल यही कहते हैं कि यह अपना मानबिंदु है तथा इसकी रक्षा होनी ही चाहिए। यदि यह न रही तो फिर हम जी कर क्या करेंगे? अतः एक बार फिर से आप सब लोगों से विनम्र प्रार्थना है कि इसे कानून के द्वारा बंद कराकर ही रहेंगे, यह दृढ निश्चय लेकर चलें। यही समय की माँग है।

२० विश्व शाकाहारी महासभा

(अंतर्राष्ट्रीय शाकाहारी संघ की उन्नीसवीं महासभा के लगभग ८० विदेशी प्रतिनिधियों को श्री गुरुजी ने दिल्ली में संबोधित किया, २३ नवंबर १९६७)

भारत में जीवदया अर्थात् प्राणियों पर दया के बारे में अत्यंत सर्वकष और सूक्ष्म चिंतन किया गया है। अपने पवित्र ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता पर संत ज्ञानेश्वर ने मराठी भाषा में भाष्य लिखा है। उसमें उन्होंने 'अहिंसा' शब्द का अर्थ समझाते हुए, दैनिक जीवन में हमारे द्वारा जाने-अनजाने में विविध प्रकार से होनेवाली हिंसा के अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इसका वर्णन करते हुए वे स्पष्ट करते हैं कि लोग स्वतः को जीवित रखने के लिए विविध प्रकार के जीवधारी वनस्पति जगत् को नष्ट करते हैं। यहाँ तक कि आँख खोलने व बंद करने या शरीर रगड़ने और धोने में हम बड़ी संख्या में सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं।

जीवदया-संबंधी गहन चिंतन

हमारी सभी धर्म-पुस्तकों में सर्वप्रथम अहिंसा का आचरण करने के लिए कहा गया है। यहाँ तक कि 'सत्य' दूसरे क्रमांक पर आता है। उदाहरण के लिए– 'अहिंसा सत्यमस्तेयम्' आदि। परंतु यदि अहिंसा का मात्र अक्षरशः पालन किया तो मानव नष्ट हो जाएगा। अतः मनुष्य को जीवन-निर्वाह हेतु सब्जियों की अनुमति प्रदान की गई। जीवन निर्वाह करते समय किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि विश्व की रचना केवल उसी के उपयोग के लिए की गई है। अस्तु! अपने देश के लोग मांस खाते हैं, परंतु आदर्श अवस्था यही है कि ऐसा न किया जाए।

जीवन का उद्देश्य

अपने पवित्र धार्मिक ग्रंथों में जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य ईश्वर के

साथ तादात्म्य प्रस्थापित करना बताया गया है। हमारे सभी संतों और महापुरुषों की यही आकांक्षा रही है कि सर्वोच्च सत्ता के साथ एकात्म भाव स्थापित करें।

हिंदू चिंतन के अनुसार प्रत्येक मनुष्य में तीन गुण– सत्व, रज और तम विद्यमान हैं। विविध प्रमाण में इनके प्रभाव से मनुष्य के स्वभाव व व्यवहार की निर्मिति होती है। तमोगुण से मनुष्य में आलस्य व सन्मार्ग से विचलन, जिसे 'प्रमाद' कहा जाता है, आता है। रजोगुण तमोगुण से कुछ श्रेष्ठ है। पूर्ण सांसारिक जीवन की इच्छा रखनेवाले कर्मशील व्यक्ति में यह पाया जाता है। सांसारिक व्यक्ति को स्वहित में दूसरों का शोषण करने में कोई संकोच नहीं होता। तीसरा सतोगुण है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति बुद्धि और अंतःकरण के श्रेष्ठ गुणों का संपादन करता है। उसका व्यवहार हर दृष्टि से उत्तम होता है। ऐसा कहा गया है कि सतोगुण के विकास से व्यक्ति अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

शाकाहार का महत्त्व

मनुष्य पर उसके आहार का प्रभाव पड़ता है। आहार में हिंसा का सहारा लेनेवाला व्यक्ति निश्चित रूप से व्यवहार में हिंसक होगा। सात्त्विक आहार व्यक्ति को सात्त्विक ही बनाएगा। अनेकविध प्रयोगों के बाद पुरातन काल के योगवेत्ताओं का यही निष्कर्ष है कि गाय का दूध, फल, शाकाहार आदि व्यक्ति को शुद्ध कर, आत्मसंयमित बनाकर उसकी आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होते हैं, जिससे अंततः वह आत्मतत्त्व में विलीन हो सके। ऐसा आहार लेनेवाला व्यक्ति केवल मानव मात्र को ही अपने बंधु-भगिनी नहीं मानता, अपितु संपूर्ण प्राणी जगत् के प्रति भी पारिवारिक भावना रखता है। यह केवल इसी देश के लिए सत्य न होकर दुनिया के अन्य देशों के लिए भी है। असीसी के सेंट फ्रांसिस तथा वर्तमान काल के थोरो से हम परिचित हैं। वे शाकाहार के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

ग्राम से प्रारंभ करते हुए व्यक्ति शनैः-शनैः अपने संबंधों को देश, संपूर्ण मानवता तथा अंततः संपूर्ण सृष्टि तक विस्तृत करता है। फलस्वरूप वह जगत् के साथ एकात्म हो जाता है। अतः शाकाहार आत्मशुद्धि तथा सकल चराचर के प्रति सर्वसमाहित स्नेहभाव निर्मिति हेतु आवश्यक है।

यह प्रक्रिया विश्व-भर में संगठित रूप धारण कर रही है। आशा करें कि हम इस मानवीय आधार पर अविलंब एकजुट होंगे।

२१ नगरसेवकों का स्वागत

(राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नागपुर शाखा की ओर से नागपुर महानगरपालिका के नवनिर्वाचित सदस्यों के स्वागत का एक कार्यक्रम १५ अप्रैल १९६९ को आयोजित किया गया था। इस अवसर पर दिया गया भाषण)

महानगरपालिका निर्वाचित सदस्यों द्वारा चलाई जानी चाहिए, परंतु बहुत समय से नागपुर महानगरपालिका प्रशासक के हाथों में ही रही। इसे एक आपत्ति ही कहना चाहिए। अब निर्वाचन हो गया है, इसलिए यह आपत्ति भी दूर हो गई है। मुझे विश्वास है कि चुनाव बडे प्रेम व आनंद से हुए होंगे।

निर्वाचन के प्रसंग आते हैं, तब मतभेद आते ही हैं, थोडी-बहुत खींचातानी होती ही है। एक-दूसरे पर छींटाकशी भी होती है। अब निर्वाचन हो चुके हैं, इसलिए ये सब बातें समाप्त हो जानी चाहिए। भूतकाल के गर्त में इस तरह विलीन हो जानी चाहिए, मानो वे कभी हुई ही न हों।

मैं तो इन निर्वाचनों को कबड्डी के समान मानता हूँ। दो पक्ष इधर-उधर खडे हो जाते हैं। एक-दूसरे के विरुद्ध सभी प्रकार के प्रयत्नों में जुट जाते हैं। 'यह मारा', 'वह मर गया' कहते हैं। अंग्रेजी में 'आऊट' बोलते हैं। अपने यहाँ 'आऊट' नहीं कहते, 'मारा', 'मर गया' कहते हैं। यह अपने तत्त्वज्ञान के अनुरूप ही है क्योंकि हमारी यह मान्यता है कि मनुष्य मरने के बाद पुनः जीवित होता है। पुनर्जन्म के अमिट सिद्धांत को दिखानेवाला यह खेल है। जब खेल चलता है, तब बडे आवेश के साथ चलता है। परंतु जब वह समाप्त हो जाता है, तो कोई हारा हो या कोई जीता हो सभी आपस में मिलते हैं, घनिष्ठ मित्र के नाते एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं। मैं समझता हूँ कि निर्वाचनों में भी यह बात लाभदायक होती है। मेरी प्रार्थना है कि नव-निर्वाचित बंधु भी इसी प्रकार का विचार रखें कि सभी का लक्ष्य एक समान ही है। नगरपालिका, याने वास्तविक रूप में नगर का पालन करनेवाली। इस कार्य को यथार्थ रूप में हम निभा सकें, उसका निर्वाह कर सकें, यही सबका एकमेव लक्ष्य है। अतः इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए आपस में अधिकाधिक विचार-विमर्श कर

सभी दृष्टि से योग्य योजनाएँ बनाएँ और सब कंधे से कंधा मिलाकर प्रयत्न करें। महापौर महोदय और स्थायी समिति के अध्यक्ष महोदय ने इस प्रकार का आश्वासन दिया भी है।

नागपुर की हालत

मैं नागपुर का पुराना निवासी हूँ। मेरा जन्म नागपुर में ही हुआ है। बचपन का बहुत सा हिस्सा यहीं बीता है। बाद में यद्यपि मैं बहुत घूमता रहा, फिर भी आते-जाते बहुत लंबी अवधियाँ मैंने नागपुर में बिताई हैं। इसलिए मुझे नागपुर से आत्मीयता भी बहुत है। काम की दौडधूप में पैदल घूमने का अवसर आजकल कम ही मिलता है। परंतु पहले संपूर्ण नागपुर की गली-गली पैदल ही घूमा करता था। इतना ही नहीं, यहाँ के बडे-बडे गंदे नालों का भी मैंने अध्ययन किया है। मैं जब यहाँ कॉलेज में पढता था, उस समय एक बार एक विशेष प्रकार की वनस्पति की चर्चा चल पडी। प्रश्न उठा कि वह कैसी है, कहाँ मिल सकती है। मैंने अपने प्राध्यापक महोदय और विद्यार्थी बंधुओं को बताया कि प पू डा हेडगेवार जी के मकान के पीछे जो नाला बहता है, उस नाले में, शुक्रवारी की सडक के पास, पुल के नीचे वह वनस्पति मिल सकती है। मैंने जब वह वनस्पति लाई, तो सबको बडा आश्चर्य हुआ कि मैंने वह कब देख ली थी। मैंने उन्हें बताया कि मैंने नागपुर का चप्पा-चप्पा छाना है।

मैंने नागपुर की हालत देखी है, इसलिए मुझे लगता है कि अपने सामने बहुत बडा काम है। मैं विचार करता हूँ कि अपने समाज में कुछ लोग तो भाग्यवान हैं, जबकि दुर्भाग्य से कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हें किसी प्रकार की अनुकूलता नहीं है। उनके रहने के स्थान कितने गंदे हैं। वे जिन झोपडियों में रहते हैं, वहाँ चारों ओर कीचड भरा पडा है। कीचड में कीडे पडे हुए हैं। उसी कीचड या गंदे नाले के पास कहीं पर छोटे से कुएँ से पीने का पानी लेते हैं। शारीरिक धर्म के लिए स्थान नहीं है। आँधी आ गई, वर्षा हो गई, तब तो उनकी दुर्दशा की कोई सीमा ही नहीं रहती। इस प्रकार कितने ही लोग अपने इस नगर के भिन्न-भिन्न भागों में रहते हैं।

पिछले २०-२५ वर्षों में कुछ प्रयत्न कर अपने शासन ने कुछ छोटे-बडे मकान बना दिए। कुछ थोडा-सा सुधार हुआ। अब अधिक ध्यान देकर इस दिशा में काम करना लाभदायक होगा। टूटी-फूटी कुटियों में रहनेवालों के लिए योजना बनाकर उनके जीवन में सुधार लाना अपना

कर्तव्य है। उनके लिए छोटे-बडे मकान बना दें। ये मकान पक्के न भी हों, मराठी में जिन्हें 'शिदीचे घर' कहते हैं, वैसे मकान हों तो भी चलेगा, परतु जिनमें से वर्षा का पानी न टपके, आँधी-वर्षा से जो टूटेंगे नहीं, जिनमें शौचालय, स्नान, पानी आदि का प्रबध हो — ऐसे सस्ते छोटे घर बनाकर उन्हें दे सकते हैं। उसी प्रकार वे जहाँ रहते हैं, वहाँ की गदगी, गदे पानी को निकालने की समुचित व्यवस्था, जहाँ पानी का प्रबध नहीं हैं, वहाँ हमेशा पानी मिलने की निश्चित व्यवस्था का प्रबध करना हम सबका कर्तव्य है। केवल महानगरपालिका के नाते ही नहीं, तो मनुष्य के नाते भी हमारा यह एक कर्तव्य है।

बहुत समय से मेरे हृदय में इस बात का अतीव दु ख है कि हमारे यहाँ सडकों के किनारे कीचड में लोग पडे रहते हैं। हम लोग उनके पास से चले जाते हैं, परतु क्या कभी हमारे मन में यह विचार आता है कि उनके रहने के लिए, गर्मी व धूप से बचने के लिए थोडा बहुत आश्रय बना दे? क्या ऐसा नहीं लगता कि हम ऐसी स्थिति उत्पन्न करने का प्रयत्न करें, जिससे वे अपने स्वत के परिश्रम से छोटा-मोटा कामधधा कर सकें? मुझे लगता है कि हमारे मन में यह विचार नहीं आता। कई बार राजनैतिक क्षेत्र में लोग बडी-बडी स्वार्थमूलक योजनाएँ लेकर चलते हैं, बडे-बडे कारखानों की योजनाएँ चलती हैं, परतु अपने निकट ही अत्यत दुर्दशा में पडे अपने बधुओं के लिए किसी योजना की ओर ध्यान कम ही जाता है।

अत हम लोग अपनी महानगरपालिका की ओर से कम से कम यह प्रयत्न करें कि उनके रहने के जो स्थान हैं, उनमें सुधार हो। आवागमन के साधनों में सुधार करें। छोटे-बडे लोगों को उनकी शक्ति-बुद्धि के अनुसार, भिन्न-भिन्न प्रकार के कारोबार देने, नागपुर की सापत्तिक उन्नति और सभी दृष्टि से उसे आकर्षक बनाने के लिए कुछ योजना बनाकर चलें, तो जनसाधारण सुखी होगा। हम भी सुखी होंगे। सब लोग मिलकर इसी दृष्टि से कार्य करें यही मेरी प्रार्थना है।

नगरपिता एक दायित्व

आप सब लोगों को पिता कहा है नगरपिता! हम लोग तो आपके बच्चे बन गए। अब यह शब्द-प्रयोग पुराना है। पुराने समय में ४ वर्ण माने जाते थे और एक जगल में रहनेवाला निषाद। इन पाँचों में से बुजुर्ग, तपे हुए ज्ञानी चारित्र्यवान ऐसे एक-एक प्रतिनिधि मिलकर पचायत बना करती

थी। वे सब मिलकर समझदारी से काम किया करते थे। यह बात विदेशों में भी थी। वहाँ इन्हें 'एल्डर्स', 'सिटी फादर्स' कहा जाता था, क्योंकि वे सब बुजुर्ग, बूढे रहते थे। परतु अपने यहाँ निर्वाचन की पद्धति है, उसके कारण २१-२२ वर्ष का व्यक्ति भी निर्वाचन में खडा होकर चुनकर आ सकता है। यह बात अलग है कि उसे एक भी बच्चा न हो, अगले ५-७ वर्षो में ऐसी सभावना भी न हो, फिर भी वह 'सिटी फादर' कहला सकता है।

'फादर' कहलाना कोई आसान बात नहीं है, वह एक बडा दायित्व है। जो अपने पाल्य बने हैं, उन सबकी रात-दिन चिता करनी होगी। उनको उद्योग मिलता है या नहीं, योग्य आश्रय है या नहीं, इन सब बातों की चिता करनी पडेगी। इसके साथ ही साफ-सफाई, रोग-निवारण आदि जो काम महानगरपालिका के द्वारा होने चाहिए, वे ठीक ढग से हुए अथवा नहीं, यह भी देखना होगा। मुझे विश्वास है कि सभी प्रकार से भलाई का विचार कर हम सब उद्योगशील रहेंगे।

सभी से नाता

हम लोग जिस कार्यक्रम के निमित्त यहाँ एकत्रित हुए हैं, उसका अपनी दृष्टि से कारण भी बता देना आवश्यक समझता हूँ। अपना यह जो सघकार्य है, वह राजनैतिक नहीं है। कुछ लोग हमें कहते हैं– 'तुम्हारे और जनसघ के बीच कोई अतर नहीं है।' मैंने कहा– 'लोगों को अतर इसलिए दिखाई नहीं देता, क्योंकि दोनों में 'सघ' शब्द समान है। परतु और भी बहुत से सघ हैं यथा– सेवा सघ, सर्वोदय सघ आदि। आश्चर्य तो यह होता है कि इन सबके साथ हमारा नाता क्यों नहीं जोडते। जोडना चाहिए। वास्तव में उनसे हमारा नाता ज्यादा है। वे सेवा करते हैं, हम भी सेवा की इच्छा रखनेवाले लोग हैं।'

लोग चाहे जो कहें, परतु अपनी स्वत की धारणा यही है कि सपूर्ण देश की जनता हम लोगों के लिए एक है। देश के पुत्र के नाते ईमानदारी के साथ काम करने के लिए जो तैयार हैं, परपरा से चलनेवाली राष्ट्रगगा का अभिमान लेकर जो खडा होता है, उसकी रक्षा के लिए सर्वस्व समर्पण करने को जो कटिबद्ध है, वह हमारा है। हम दल-उपदल नहीं मानते। इसलिए सभी दल हमारे हैं। हम सभी के साथ आत्मीयता से रहेंगे, सभी के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करेंगे एक-दूसरे की सहायता करेंगे, एक-दूसरे का सम्मान करेंगे। अपनी इसी धारणा के कारण हमने सोचा कि

सपूर्ण नगर का प्रतिनिधित्व करनेवाली महानगरपालिका के नव-निर्वाचित सदस्यों के रूप में पूर्ण नागपुर ही अपने सामने आए और हम उसका स्वागत करें। इस कार्यक्रम से मुझे बडा सुख प्राप्त हुआ है।

एक और कारण

सुख का एक और भी कारण है। निर्वाचन होते हैं तो कोई न कोई चुनकर आता ही है। कभी-कभी बडा अच्छा सयोग उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार का एक सयोग इस बार हुआ है, वह यह कि महापौर पद पर अपने राजा साहब चुने गए हैं। हमारा उनके साथ बहुत पुराना सबध है। सघ की सर्वप्रथम शाखा जिस समय मोहिते के बाडे में शुरू हुई, उस समय वह बाडा सरदार मोहिते के हाथों से निकलकर, किसी के पास गिरवी चला गया और बाद में उसी का हो गया। मोहिते का बाडा जिसके पास चला गया था, उसने सोचा कि ये सघवाले बाडे में शाखा लगाते हैं, कहीं उसपर अपना अधिकार न जमा लें। इसलिए उसने वहाँ शाखा लगाने के लिए मना कर दिया। प्रश्न यह उठा कि कहाँ जाएँ? कुछ ही दिनों बाद वर्ग लगनेवाला था।

अपना एक आश्रय-स्थान था, वह याने अपने महापौर राजासाहब के पिता श्री राजेबहादुर लक्ष्मणराव भोंसले। हम उनके पास गए। उन्होंने कहा चिता की क्या बात है, अपना हाथीखाना है। हाथीखाने में ही अपना वर्ग लगा, शाखा लगी, विजयादशमी के कार्यक्रम हुए। अनेक वर्षों तक अनेक प्रकार के कार्यक्रम वहाँ अबाधित रूप से चलते रहे। दुर्भाग्य से राजासाहब इहलोक छोडकर चले गए।

उनके बाद भी आपकी वदनीय माता इदिरा राजे भोंसले ने अपने कार्य पर मातृवत् प्रेम किया। उनके ये सभी पुत्र हमारे भाई हैं। उसी प्रेम और बधुत्व के कारण तथा मैं उम्र में थोडा बडा होने कारण आशीर्वाद देने का विशेष अधिकार रखता हूँ। अपने छोटे भाई के नाते वे इतने श्रेष्ठ पद पर अधिष्ठित हुए, इसका आनद हुआ।

भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वे सभी प्रकार से यशस्वी हों और उनके नेतृत्व में चलनेवाली नागपुर महानगरपालिका इस नगर का सभी प्रकार से कायाकल्प कर दिखाए।

२२ मातृत्व के त्रिविध रूप

(४ अक्तूबर १९६९ को पुणे में 'मातृपूजन' ग्रथ के प्रकाशन समारोह में दिया गया उद्बोधन)

आज के कार्यक्रम की जानकारी देनेवाले पत्रक में श्रेष्ठ मातृभक्त के नाते मेरा उल्लेख किया गया है। मैं स्वत का विचार करता हूँ तो लगता है कि मैं इस विशेषण के योग्य नहीं हूँ। मेरी माँ की अनेक सतानें हुई, परतु उनमें से मैं अकेला ही जीवित रहा। इस कारण स्वाभाविक रूप से माँ की समस्त ममता मुझ पर ही केंद्रित थी, किंतु मैं रहा केवल एक यायावर, सतत घूमते रहनेवाला ही।

इतना लाड प्यार

एक बार मैं घर से चला गया था। किसी को भी पता नहीं था कि मैं कहाँ गया हूँ। केवल अपने एक मित्र को जो नागपुर में ही रहता था, बताकर गया था। लगभग चार मास के बाद मैं लौटा। वे अनुभव मुझ तक ही सीमित हैं, बताने योग्य नहीं। जब मैं नागपुर वापस आया, तब पता चला कि माँ बीमार है। माता-पिता उन दिनों नागपुर के समीप रामटेक में रहते थे। वहाँ जाकर माँ से उसकी तबीयत के हालचाल पूछे। पता चला कि उसे हृदय-विकार है। डाक्टर ने 'अजायना पेक्टोरीस' नाम का हृदय-रोग बताया था। माँ को बहुत कष्ट हो रहा था। हमारे मित्र डाक्टर उसे औषधि दे रहे थे, किंतु उनकी औषधि से कोई लाभ नहीं हो रहा था। मुझे स्मरण है कि उस अवस्था में भी अपने गायब हुए पुत्र को लौट आया देखकर वह मेरी सुख-सुविधाओं की ओर स्वय ध्यान देने लगी। फिर एक दिन माँ बोली, 'मुझे डाक्टर की औषधि नहीं चाहिए। तू ही औषधि दे।'

पुत्र-लोप का दौरा

मैं न डाक्टर था, न वैद्य। कठवैद भी नहीं हूँ। किंतु माँ का आग्रह था कि मैं ही उसे औषधि दूँ। उसके आग्रह के कारण मैं नागपुर आया। नागपुर में रामकृष्ण मिशन का आश्रम है। उस आश्रम में अनेक रोगियों को मुफ्त होम्योपेथिक औषधि देने की व्यवस्था है। वहाँ सर्वसामान्य लोगों को एक वृद्ध साधु औषधि देते थे। मैं उनके पास गया और कहा, 'मेरी माँ को ऐसा-ऐसा कष्ट है, कौन सी औषधि देना ठीक होगा?' उस वृद्ध

साधु ने मुझसे ही पूछा, 'तुम्हारा क्या विचार है?' मैंने उत्तर दिया, 'कुछ सोचा नहीं। आप ही कुछ बताएँ। आपने यदि साधारण शक्कर की पुड़िया दी तो भी चलेगा।' तब उन्होंने एक औषधि का नाम बताया। मैंने वह औषधि माँ को दी और सचमुच, माँ को आराम हुआ। वह स्वस्थ हो गई। उसके बाद कई वर्षों तक वह जीवित रही। जब तक उसके हाथ-पैर काम करते रहे, तब तक अपार कष्ट झेलते हुए वह घर के सब काम करती रही। फिर कभी उसे दिल का दौरा नहीं पड़ा। वास्तव में उसे दिल का दौरा नहीं, पुत्र-वियोग का दौरा पड़ा था। डाक्टर ने भी यही कहा, 'चूँकि तुम घर से भाग गए थे, इसलिए ऐसा हुआ। इस घटना से स्पष्ट है कि मैं माँ को सुख पहुँचानेवाला नहीं, दुःख देनेवाला ही ठहरा।

फिर एक बार माँ को लकवा मार गया। उसका दाहिना अंग लूला पड गया। उसी समय मुझे अपने निर्धारित प्रवास पर जाना था। मैं घर गया। मेरे साथ सदैव ही एक डाक्टर रहते हैं। उन्होंने कहा, 'यह पेरालीसिस का स्ट्रोक है। एकदम आराम नहीं होगा।' अन्य डाक्टर भी आए और औषधोपचार प्रारंभ हुआ। मैं ठहरा हमेशा का प्रवासी। स्वीकृत कार्य के लिए मुझे ट्रेन से जाना था। मैं माँ से बोला, 'जाऊँ क्या?' उसने कहा, 'नहीं'। 'ठीक है।' कहकर मैं अपने मुकाम पर आ गया। विचार किया कि पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम रद्द करने के लिए सब स्थानों पर तार द्वारा सूचित करना होगा, किंतु फिर सोचा कि कुछ देर बाद निर्णय करूँगा। इसके बाद ग्यारह-साढे ग्यारह बजे पुनः मैंने माँ से पूछा, उसने 'जा' कहा। सोचने की बात है कि उसे उस समय कैसा लगा होगा? क्या वह यह सोचती होगी कि अपनी कठिन बीमारी में इकलौता पुत्र भी समीप न रहे? बात यह थी कि मेरे द्वारा एक कार्य स्वीकृत है, इस कार्य में किसी प्रकार का खंड पडने देना उसे मंजूर नहीं था। इसीलिए उसने मुझे जाने की अनुमति दी। उसने यह भी कहा, 'मनुष्य का जीवन-मरण किसी के पास रहने या न रहने पर निर्भर नहीं होता।' यह सब बताने का अर्थ कोई ऐसा न समझे कि मेरी माँ श्रेष्ठ योगिनी वगैरह थी। हाँ, वह भक्त जरूर थी और इसी कारण उसके मन में धैर्य था।

माँ-संबंधी कुछ संस्मरण मैंने आपके समक्ष रखे हैं। इसीलिए मैंने कहा कि मैं श्रेष्ठ मातृभक्त जैसा कुछ नहीं हूँ। हाँ, किंतु मेरी माँ सचमुच माँ थी। मेरे कर्तव्य मार्ग में उसने अपनी बीमारी नहीं आने दी।

वैसे, प्रत्येक मनुष्य लिख-पढकर जब बडा होता है, तब उसकी माँ को यही लगता है कि वह कुछ काम-धाम करे। मैंने अपने घर के दरवाजे पर बोर्ड लटकाकर वकालत करने का नाटक जरूर किया था। माँ को लगा कि मैं अब वकील बन गया। प्रत्येक माँ की यह इच्छा भी रहती है कि लडके का विवाह हो। फिर मैं तो अपनी माँ की अनेक सतानों में से बचा हुआ इकलौता पुत्र था। इसलिए मेरे सबध में माँ की वैसी प्रबल इच्छा होना स्वाभाविक ही था। मैं विवाह करूँ इसके लिए माता-पिता ने बहुत प्रयत्न किए, किंतु ईश्वरेच्छा भिन्न थी। लडकी देखने की एक प्रथा चल पडी है। पता नहीं उसमें क्या होता है? नाटक देखना, सिनेमा देखना जैसी बातें तो समझ में आती हैं, किंतु 'लडकी देखना' समझ में आना कठिन है। जो हो, ऐसी कुछ बातें भी हुई। एक स्थान पर मुझे भी साथ ले जाया गया। मैं आँख मूँदकर बैठा रहा। बाद में मुझसे पूछा गया– 'लडकी देखी?' मैंने कहा– 'आँखें बद थीं।' अर्थात् इससे उन्हें इस बात की कल्पना हो गई कि ऐसा कुछ सभव नहीं हो सकेगा। बाद में मैं जब सघकार्य निमित्त प्रवास करने लगा, तब माँ ने इतनी शीघ्रता से अपने हृदय को समझा लिया कि मुझे भी आश्चर्य हुआ।

एक बार एक स्वयसेवक की माँ, मेरी माँ के पास शिकायत लेकर पहुँची कि उसका दूसरा लडका विवाह करने से इनकार कर रहा है। मेरी माँ ने उसकी सब बात शातिपूर्वक सुनी और समझाते हुए कहा– 'तुम्हारा दूसरा लडका विवाह नहीं कर रहा, परतु पहले का विवाह तो हो चुका है। मेरा तो इकलौता पुत्र है और वह विवाह नहीं कर रहा, फिर भी मुझे दुःख नहीं हो रहा। भला तुम क्यों मन खट्टा कर रही हो?' मुझे लगा कि चलो अच्छा ही हुआ, राष्ट्रकार्य के लिए एक प्रचारक मिला। इस प्रकार उसने सघकार्य में मेरी सहायता ही की। ऐसी कुछ छोटी-छोटी घटनाओं का स्मरण मुझे अपनी माँ की याद दिला रहा है। मेरी माँ सचमुच माता थी। माता के कर्तव्य अथवा जिसे हम 'मातृत्व के गुण' कह सकते हैं, वे उसमें थे, परतु मुझे 'मातृभक्त' नहीं कहा जा सकता। वैसी मेरी योग्यता भी नहीं है। हाँ, ऐसी श्रेष्ठ माता के पुत्र के नाते यदि मुझे यहाँ निमत्रित किया गया हो, तो वह उचित ही हुआ है।

फिर एक अन्य घटना याद आती है। मनुष्य के जन्मग्रहण करने

के पूर्व जन्मदात्री माता उसके पार्थिव शरीर का स्वत अपने रक्त से, जन्म के पश्चात् अपने दूध से तथा आगे यावज्जीवन प्रेम से उसका पोषण करती है, किंतु निसर्ग नियम के अनुसार कभी न कभी तो मातृवियोग का प्रसग आता ही है। वैसा ही प्रसग मुझपर भी आया। इसकी सूचना देने के लिए मैंने अपने स्वभावानुसार कुछ लोगों को, जिनके प्रति मुझे नितात आदर है और उस मन स्थिति में भी जिनका मुझे स्मरण हुआ, पत्र लिखे। कामकोटि पीठ के आदरणीय श्रीमत्शकराचार्य जी को भी पत्र लिखा था। उन्होंने तुरत श्लोकों के रूप में मुझे सात्वना देनेवाला पत्र लिखा था। श्लोकों का अर्थ इस प्रकार था–

'अस्थिचर्ममय मानवदेहधारिणी तुम्हारी माँ यद्यपि नहीं रही, किंतु वह भारतमाता जो, तुम्हारे समान असख्य पुत्रों की माता है, जो केवल आज ही नहीं, सहस्रों वर्षों से असख्य पुत्रों की जन्मदात्री है और भविष्य में भी सहस्रों वर्षों तक ऐसे ही पुत्रों की माँ रहेगी, सबका धारण-पोषण करनेवाली, पवित्र और नित्य चैतन्यमयी विराजमान है। उस भारतमाता के कार्यार्थ कटिबद्ध हुए तुम्हें मातृवियोग हो ही नहीं सकता। तुम शोक न करो। तुम्हारे लिए शोक का कारण नहीं है।'

मुझे लगता है कि जिस दिन पूज्य माँ का देहावसान हुआ, उस दिन मेरी ऑख से आँसू की एक भी बूँद नहीं टपकी। जो लोग वहाँ आ-जा रहे थे, उनके साथ में मुक्तरूप से बातें कर रहा था। हो सकता है, अनेक वर्षों से जो सतत अभ्यास चला है, उसी का यह परिणाम रहा हो। यह एक ऐसा प्रसग था, जब मन का सतुलन रखना कसौटी की बात ही है। भगवान की कृपा से मैं उस अवस्था से बाहर निकल सका। श्रीमत् शकराचार्य ने जो सात्वना प्रदान की, उससे हृदय में व्याप्त वेदना का शमन कर, मन का सतुलन बनाए रखने का कार्य हो सका।

मातृभक्ति का ह्रास

मातृपूजा का विचार करते समय हमें अपनी जन्मदात्री माँ के समान ही अपनी मातृभूमि का भी विचार करना चाहिए। किंतु दुर्दैव की बात है कि यह सब हमें बताना पडता है, क्योंकि इस भावना का लोप होता जा रहा है। आज ऐसे लोग कम ही मिलेंगे जो विशुद्ध मातृभूमिभक्त हैं। कुछ लोग हैं जो सत्ता, यश अथवा स्वार्थ के लिए मातृभूमि की भक्ति करते हैं। किंतु मातृभक्ति से ओतप्रोत हृदय का क्या कहीं दर्शन होता है,

इसका उत्तर देना कठिन है। छोटे-छोटे स्वार्थो के लिए मातृभूमि के पुत्र आपस में लडते-झगडते दिखाई दे रहे हैं, आपस मे सघर्ष कर रहे हैं। इस दृश्य को देखकर क्या कोई कह सकता है कि इनमे मातृभूमि की भक्ति है?

मातृभूमि-हिदूराष्ट्र

वैसे यह हमारी मातृभूमि है और हम इसके पुत्र हैं। यह नई बात नहीं है। अति प्राचीनकाल से इस मातृभूमि के पुत्र के नाते हमारा यहॉ राष्ट्र-जीवन रहा है। इस बात की घोषणा केवल हम ही करते हैं– ऐसी बात नहीं है। जिन लोगों ने भी निष्पक्ष होकर सत्य को देखने का प्रयत्न किया, उन सभी का यही कहना है। मेरे पास एक पुस्तक है। उसमें पुरानी अग्रेजी मासिक पत्रिका 'एडिनबर्ग रिव्यू' के सन् १८७२ वर्ष के एक अक का उद्धरण दिया हुआ है, जिसमें कहा गया है–

"Hindu is the most ancient Nation on the earth and has been unsurpassed in refinement and culture" (पृथ्वी पर 'हिदू' एक अति प्राचीन राष्ट्र है जो सभ्यता और सुसस्कृतता में अद्वितीय है।)

लेकिन अग्रेज राज्यकर्ताओं ने अपने साम्राज्यवादी स्वार्थो की पूर्ति के लिए हिदूराष्ट्र-जीवन को विशृखल कर 'खिचडी राष्ट्र' निर्माण करने का प्रयत्न किया। आज अग्रेज प्रत्यक्ष रीति से हट गया है, फिर भी उनके द्वारा प्रचारित राष्ट्र-विस्मरण के कार्य को लोग अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए आगे बढाते जा रहे हैं। आज यह कहना कि हम मातृभूमि के पुत्र हैं, यह कहना कि हिंदुस्थान हिदुओं का है, विषाक्त माना जाता है और यह धर्मशाला है, आओ-जाओ, घर तुम्हारा है– ऐसा कहना अमृतमय समझा जाता है। यह तो बहुत ही दु खद स्थिति है। अग्रेजी में जिसे 'फैशन' कहते हैं, वैसे ही 'यह राष्ट्र सबका है' कहने की पद्धति आजकल चल पडी है। इस फेशन से स्वार्थ पूरा होता है, किंतु मातृभूमि का विस्मरण होता है।

आधुनिक जीवन-प्रवाह में बहने के कारण जन्मदात्री मॉ के प्रति अनादर बढता जा रहा है। अपने जन्म को माता-पिता के वैषयिक सुख का 'बाय प्रॉडक्ट' कहने की प्रवृत्ति निर्माण हो रही है। पूर्व काल में विशिष्ट सकल्प कर, उस पवित्र सकल्प से ही पुत्र-प्राप्ति की जाती रही और शेष जीवन सयम से व्यतीत किया जाता था, किंतु आजकल सब कुछ बदल गया है, सपूर्ण जीवन काममय हो चुका है।

जगन्माता का विस्मरण

हम जन्मदात्री को भूल गए, वैसे ही संपूर्ण राष्ट्र को जन्म देनेवाली मातृभूमि को भी भूल गए। इन दो महान माताओं के विस्मरण के बाद यह कैसे सम्भव है कि सर्वसृष्टि को जन्म देनेवाली अखंड मंडलाकार जगन्माता का स्मरण रहे? किसी को धर्म भाता नहीं। 'धर्म' का नाम लिया कि जगन्माता का स्मरण होता ही है और उसके साथ उसकी पूजा भी आती है। शिव के साथ शक्ति की पूजा स्वाभाविक ही जुड़ी है। संत ज्ञानेश्वर ने जगन्माता का स्वरूप विशद करते हुए उसे 'शिवशक्ति रूप' ही बताया। हम सबको इसी जगन्माता के स्वरूप का विचार करना चाहिए।

भगवान रामकृष्ण परमहंस के जीवन का एक प्रसंग है। वे साधना करने के बाद सिद्ध पुरुष हो चुके थे, फिर भी कालीमाता के भक्त थे। ईश्वर-कृपा से तोतापुरी नाम के साधु से उनकी भेंट हुई। तोतापुरी अद्वैत स्थिति की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त किए हुए श्रेष्ठ साधु थे। रामकृष्ण को अद्वैत ज्ञान पाने का अधिकारी पुरुष पाकर उन्होंने कहा, 'मैं तुम्हें अद्वैत का ज्ञान प्रदान करता हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने रामकृष्ण के सिर पर हाथ रखा। तत्काल ही रामकृष्ण को समाधि लग गई। वे तीन दिन तक समाधि में रहे। श्वास का स्पंदन भी बंद हो गया था। यह देखकर तोतापुरी को आश्चर्य हुआ। इतना होते हुए भी रामकृष्ण की कालीमाता की भक्ति में कोई कमी नहीं आई। कालीमाता के मंदिर में जाकर उसकी भक्ति में मस्त हो जाते थे। तोतापुरी ठहरे कठोर अद्वैती। वे कहते थे, 'यह सब पाट-पसारा बाह्य आडंबर व्यर्थ है। जग मिथ्या है। केवल ब्रह्म ही सत्य है। ऐसा होते हुए भी तुम कालीमाता की भक्ति क्यों करते हो?' रामकृष्ण ने उनसे कहा, 'मैं इसकी भक्ति करता हूँ, क्योंकि यह जगन्माता है।' तोतापुरी को यह बात पटती नहीं थी।

एक बार तोतापुरी जी अस्वस्थ हो गए। उन्हें दस्त लगने लगे। औषधि आदि से भी कुछ लाभ नहीं हुआ। वे पद्मासन लगाकर ध्यान किया करते थे, किंतु शारीरिक अस्वस्थता के कारण अब आसन लगाकर बैठना भी कठिन हो गया। तब यह सोचकर कि अब देह समाप्त करने का समय आ चुका है, किसी को कुछ भी न बताते हुए वे गंगाजी में उतर पड़े। काफी देर तक प्रयास करने के बाद भी उन्हें डूबने लायक पानी नहीं मिला। इसलिए वे वापस आए और विचार करने लगे कि ऐसा क्यों हुआ?

तभी उन्हें जगन्माता का साक्षात्कार हुआ। जगन्माता ने उनसे कहा, 'मुझे पार कर ही ब्रह्म को पाया जा सकता है। तब मुझे समझे बिना ब्रह्म कहाँ से प्राप्त होगा? यदि मैं पार न जाने दूँ तो वह दिखाई कैसे देगा?'

श्रीरामकृष्ण सदैव एक कथा सुनाते थे। राम, लक्ष्मण, सीता वन में चलते थे, तब राम और लक्ष्मण के बीच में सीता जी चलती थीं। एक पंक्ति में तीनों चलते थे, इसलिए बीच में सीता के आने के कारण लक्ष्मण को राम नहीं दिखाई देते थे। तब सीता जी बीच में चलते हुए अपना एक पग थोड़ा बाजू में रख लेतीं, ताकि लक्ष्मण को राम दिखाई पड़ें। ठीक ही है, माया के बाजू होने पर ही परब्रह्म के दर्शन संभव है। यही साक्षात्कार तोतापुरी जी को भी हुआ।

जगन्माता के कारण शक्ति

यह स्पष्ट है कि जगन्माता के सिवाय ज्ञान नहीं। उपनिषद् या अन्य कहीं एक कथा आती है। युद्ध में दैत्यों का पराभव करने पर देवताओं को अपने पराक्रम का भारी गर्व हो गया। गर्व होना अच्छी बात नहीं है। जिस समय सब देवता सभा में विराजमान थे, उनके समक्ष अकस्मात् एक भव्य रूप प्रकट हुआ। ग्रंथ में उसे 'यक्ष' कहा गया है। दैत्यों से भी अधिक भयंकर उस रूप को देखकर सब देवता घबरा गए। अब किसी न किसी को उसका सामना करना पड़ेगा, इसलिए तय हुआ कि जो सबसे बलवान हो, वह पहले जाए। सर्वप्रथम वायु देवता उसका मुकाबला करने सामने आए। यक्ष ने वायु से पूछा, 'तुम्हारी शक्ति किस बात में है। वायु ने कहा — 'मैं अपनी शक्ति से सारी सृष्टि को हिला सकता हूँ। यक्ष ने कहा, 'ठीक है। यह घास का एक तिनका यहाँ रखा है, इसे हिला कर बताओ।' वायु ने अपनी सारी शक्ति लगा दी किंतु उस घास के तिनके को वह हिला तक न सका। आखिर लज्जित होकर वापस हो गया। तब अग्नि देवता उठे। किंतु अग्नि भी अपनी समस्त दाहक शक्ति का प्रयोग कर थक गए, पर उस तिनके को जला न सके। इंद्र विचार करने लगा कि देवताओं के इस पराभव का क्या कारण हो सकता है? तभी उसे एक देदीप्यमान स्त्री दिखाई दी। अत्यंत तेजस्वी, हेमवती स्वरूप की उस स्त्री ने कहा, 'तू जिसकी खोज कर रहा है, जिससे वायु गतिमान है, जिसके कारण अग्नि में दाहकता है, वह तो समस्त सृष्टि की शक्ति परब्रह्म की जननी है। यही जगन्माता मातृत्व का मूल स्वरूप है।

माता-मातृभूमि-जगन्माता

विश्व में मातृत्व का इतना उदात्त विचार किसी ने प्रस्तुत नहीं किया। मातृत्व के संबंध में कोमलता और पवित्रता के विचार तो सर्वत्र प्रस्तुत किए जाते हैं। रोमन कैथलिकों में मेडोना और उसके पुत्र येशु के ऐसे चित्र जो हृदय को स्पर्श करनेवाले हैं, पूजे जाते हैं। अपने यहाँ ज्ञानदायी, करुणामयी, जगत् को धारण करनेवाली होने के साथ-साथ 'विनाशाय सर्व भूतानाम्' स्वरूपिणी शक्ति, इन तीन रूपों में उसका वर्णन हुआ है। जगन्माता का यह स्वरूप अन्य लोगों के ध्यान में नहीं आया। हमारे यहाँ माता, मातृभूमि और जगन्माता– मातृत्व के ये त्रिविध रूप बताए गए हैं।

अब हमें विचार करना चाहिए कि क्या हम इस संसार में केवल खाने-पीने के लिए ही जीवित हैं? इस प्रकार का जीवन तो पशु-पक्षी भी जी लेते हैं। मनुष्य तो विचार करनेवाला बुद्धिमान प्राणी है। इसलिए अपने हृदय में मातृत्व के संबंध में श्रेष्ठ भावना जगाकर अत्यंत कृतज्ञता के साथ जन्मदात्री, धरित्री और जगद्धात्री से अपना माता-पुत्र का नाता है, ऐसा मातृत्व के स्वरूप का ध्यान धारण कर उसकी उपासना करने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। पूर्ण श्रद्धा के साथ इसका पालन करना चाहिए। मानव-जीवन में कृतज्ञता का स्थान असामान्य है।

आजकल हम कहते हैं कि हमारी बड़ी प्रगति हो रही है, किंतु मनुष्य कृतज्ञता को भूलता हुआ दिखाई पड़ रहा है। अपने निजी सुख में डूबा वह माँ को भूल गया है। कृतज्ञता की भावना क्षीण हुई प्रतीत होती है। यह प्रगति नहीं, यह तो मानवता से विमुख होनेवाली बात है। सर्वज्ञान-प्रदायिनी शक्तिदात्री जगन्माता की वास्तविक भावना के अभाव और केवल स्वार्थ-सीमित दृष्टि से ही उसकी ओर देखने के कारण अपना जीवन पशुतुल्य बनता जा रहा है। कामप्रधान जीवन सुसंस्कृत मनुष्य के जीवन का लक्षण नहीं है। अंतःकरण में यदि कृतज्ञता का भाव नहीं रहा, तो जीवन जंगली हो जाता है। इसलिए सुसंस्कृत होकर माता के प्रति अपनी भक्ति उसके इन त्रिविध स्वरूपों में नित्य करना ही अत्यावश्यक है।

२३ नवप्रभात का आह्वान

(उडुपी में १३ दिसंबर १६६६ को सपन्न विश्व हिंदू परिषद्, कर्नाटक के सम्मेलन के अवसर पर उद्घाटन भाषण)

अपने धर्म के बडे ऊँचे सिद्धांतों एव धर्मोपदेशों को हम सामान्यतया सुनते हैं। अपने धमग्रथों में वर्णित महान सत्य के सबध में अपने धर्मगुरुओं एव आचार्यों के भी धर्मोपदेश सुनने को मिलते हैं। इनसे एक सीमा तक हम प्रगति पथ की ओर अग्रसर भी होते हैं।

किंतु यह ध्यान देने योग्य है कि हमारे धर्म में दो पक्षों, भौतिक वैभव एव आध्यात्मिक आनद की ओर समान रूप से बल दिया गया है। यदि हम केवल बाद के लक्ष्य पर ध्यान दें और प्रथम की उपेक्षा करें, तो यह धर्म के प्रति अपूर्ण दृष्टिकोण कहलाएगा। वस्तुत सामाजिक शाति और सुरक्षा के अभाव में किसी मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति सभव नहीं। सामाजिक जीवन के सुदृढ आधार के बिना यह कैसे सभव हो सकता है कि महान आत्माएँ जन्म लें और समाज के आध्यात्मिक विकास के लिए कार्य करें? इसलिए धर्म की प्रथम शर्त उचित सामाजिक स्थिति ही है।

अकेलेपन की वृत्ति

प्राचीन काल में हम अपने राष्ट्रीय जीवन को सक्षम, स्वतत्र एव स्वाभिमानपूर्ण रखने के पक्ष की ओर दुर्लक्ष्य कर बैठे थे। हम भूल गए कि हमें सगठित सामाजिक इकाई के रूप में जीना है। अपनी विशाल मानवशक्ति को भुलाकर हम एकातिक बन गए थे। एक बार नागपुर में २०,००० व्यक्तियों की एक विशाल सभा हो रही थी। अकस्मात कोई चिल्लाया, 'लो, वे आ पहुँचे।' तुरत पूरी सभा अस्त-व्यस्त हो गई। लोग अपनी चप्पलें तक छोडकर भाग गए। किसी ने भागते हुए एक से पूछा– 'भाई, क्या हो गया?' वह बोला, 'मुझे पता नहीं। सब भाग रहे हैं, अत मैं भी भाग रहा हूँ। 'किंतु तुमने रुककर किसी से यह क्यों नहीं पूछा कि क्या बात है?' उसने उत्तर दिया, 'मैं क्या करता? मैं तो अकेला था। एकता के भाव के अभाव में अपने समाज के दु ख-सुख में साझी न होने का ऐसा ही परिणाम होता है। यही कारण समाज बधुओं के विघटन एव

जैसा बोओगे, वैसा काटोगे

विश्व हिंदू परिषद्, जिसका जन्म स्वामी चिन्मयानद जी के आश्रम 'सादीपनी साधनालय' में हुआ, का एक उद्देश्य विदेशों में बसे हिंदुओं को सगठित कर अपने धर्म की परपराओं के सरक्षण में उनकी सहायता करना है। दूसरा, प्रमुख उद्देश्य हिंदुस्थान में वास करनेवाले हिंदुओं में आत्मसम्मान एव गौरव के भाव को विकसित करना तथा उनको शक्तिशाली सामाजिक इकाई के रूप में सगठित करना है। यह तभी सभव है जब हम स्वार्थ को त्यागकर अपने भीतर ऐसी सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय स्वाभिमान को जागृत करें, जिससे हम स्वाभिमानपूर्ण राष्ट्र के रूप में विश्व के समक्ष खडे हो सकें। तभी हम ससार में बिखरे हिंदुओं को उनके सम्मानपूर्ण जीवन की सुरक्षा की गारटी दे सकेंगे।

आज, जबकि अपने देश हिंदुस्थान में ही हिंदू निर्बल और विघटित अवस्था में है, तब यह सोचना कि हिंदू सभी जगह सुरक्षित और सरक्षित हैं, भ्रांति ही है। यहाँ पर व्यावहारिक रूप से हमारे स्वत्वहीन रहने के कारण ही विदेशों में रहनेवाले हिंदू उच्छेदित, अपमानित एव दुखित हैं। आज हमारे बीच ऐसे व्यक्ति हैं, जो अपने प्राचीन वीरों से गौरव की प्रेरणा नहीं लेते। हम उस व्यक्ति को 'देशभक्त' कैसे कह सकते हैं, जो अपने पूर्वजों के लिए शर्मिंदा होता हो? वास्तव में हमारी सामाजिक चेतना तथा शक्ति इतनी विशाल होनी चाहिए कि हिंदू के छोटे से शिशु को भी छेडने का कोई दुस्साहस न करे। दुर्भाग्य से आज यह स्थिति नहीं है। विदेशों में रहनेवाले हिंदू, अपनी मातृभूमि की ओर से अपनी रक्षा तथा सरक्षण की कोई आशा नहीं कर सकते।

इस देश के हिंदुओं पर ही यह प्रारम्भिक दायित्व आ पड़ा है। इसलिए हिंदू चरित्र और हिंदू आदर्शों को महान बनाए रखने के लिए हमें जूझना है। हमें धर्म के सिद्धातों के अनुरूप अपने जीवन को फिर से ढालना है और सगठित एव स्वाभिमानपूर्ण समाज के रूप में खडा होना है।

अपने पवित्र धर्मगुरु सहयोग की भावना से परिपूर्ण होकर यहाँ एकत्रित हुए हैं। यह आशीर्वाद मुझे आश्वस्त करता है कि कालरात्रि व्यतीत हो चुकी है और हिंदू की पूर्ण दीप्ति से चमकता नवप्रभात का प्रस्फुटन हो रहा है।

२४ धर्माचार्यों से अनुरोध

(धर्माचार्यों की बैठक में १३ दिसंबर १९६९ की रात्रि में धर्मगुरुओं से किया गया अनुरोध)

यदि हमारे मठाधिपति सर्वसाधारण समाज के मध्य भ्रमण करना प्रारंभ कर दें, तो महान कार्य हो सकता है। अब तक वे अपने मठों की बंद दीवारों में हाथीदाँत के स्तंभ के समान बैठे रहे हैं। परिणाम यह हुआ कि हमारा समाज, विशेषकर दूर वनों, गिरि-कंदराओं में निवास करनेवाले व्यक्ति धर्म की सहायता से वंचित हैं। असम में चारों 'सत्राधिकारी गोस्वामी' सैंकड़ों वर्षों से अपने मठों से बाहर नहीं निकले। यद्यपि उन चारों के मठ ब्रह्मपुत्र नदी के एक ही द्वीप पर अवस्थित हैं, तब भी वे एक-दूसरे से आज तक नहीं मिले। जब ये चारों प्रथम बार असम के विश्व हिन्दू परिषद् के सम्मेलन में पधारे, तब एक-दूसरे से पूछा कि वे कौन हैं? किंतु अब स्थिति में कुछ अंतर आया है। पूज्यपाद दक्षिणपथ स्वामी जी, जो आज भी अपने मध्य विराजमान हैं, ने यात्राएँ की हैं। इन्होंने अपने जनजातीय अनुयायियों से भेंट की तथा उन्हें 'ओंकार दीक्षा' दी है। इसने उन भागों के जनजातीय भक्तों में आनंदातिरेक उत्पन्न कर दिया है।

एक प्रश्न जो आज सामान्यतया पूछा जाता है, वह यह है कि धर्म की जो दुस्साध्य एवं अधिक समय लेनेवाली परंपराएँ हैं और जिनका आम आदमी अपने जीवन में पालन नहीं कर पाता, क्या उनके स्थान पर सरल एवं लाभदायक पद्धति अथवा संस्कारों का विधान नहीं बनाया जा सकता? मैं कहूँगा कि उनके लिए सरल विधि 'राम नाम' अथवा अन्य किसी देवता का नाम ही पर्याप्त है। यह कहना कि किसी मंत्र अथवा संप्रदाय में प्रारंभिक भक्ति का मार्ग न होने के कारण वे भक्ति नहीं कर पाते, ठीक नहीं है। समाज के इस वर्ग में महानतम आध्यात्मिक संतों का जन्म हुआ है और उन्हें तथाकथित उच्च जातियों का स्वाभाविक आदर मिला है। शताब्दियों से इस वर्ग ने सरल रीतियों से ही सच्ची भक्ति की है और हृदय के उल्लेखनीय गुणों के विकास का परिचय दिया है। अब यह धर्मगुरुओं का काम है कि वे उनके पास पहुँचें और छिपी भक्ति एवं सद्गुणों को विकसित करें।

हमारे धर्मगुरुओं का यह कर्तव्य है कि वे आज की प्रचलित कुरीतियों से हमारी रक्षा करें। हमारे प्रत्येक धर्मगुरु का किसी-न-किसी

विशेष मठ एव सप्रदाय से सबध है। निस्सदेह, यह उनका कर्तव्य है कि वे उस मठ की पूजा की पारपरिक पद्धति की रक्षा करें। किंतु जब वे मठ से बाहर आए, तब उन्हें उन सिद्धातों पर ही बल देना चाहिए जो सभी के लिए उचित हों। किसी विशेष दर्शन का उपदेश देना अथवा भगवान के किसी विशेष स्वरूप को अच्छा बताकर अन्यों की आलोचना करना हिंदू समाज की एकता एव पुनरुत्थान के महान मिशन के अनुकूल नहीं होगा।

२५ धर्मध्वजा सर्वत्र फहराएँ

(उडुपी, १४ दिसबर १९६९)

दो दिन के अधिवेशन में अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चाएँ हुई हैं। तो भी, केवल बातें करने अथवा प्रस्ताव पारित करने से स्थिति में अतर नहीं आनेवाला। उदाहरण के लिए— हमने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया है कि सभी हिंदुओं को अस्पृश्यता को त्याग देना चाहिए।

रूढियाँ धर्म नहीं

अब से पहले भी हमारे अनेक सतों, राजनीतिक एव सामाजिक नेताओं ने समाज से अस्पृश्यता को समाप्त करने के प्रयास किए हैं। इनमें से कुछ हैं — गुरु नानक, रामानुज, बसवेश्वर, दयानद गाँधीजी तथा वीर सावरकर। इन्होंने इस दिशा में भरसक कार्य किया, फिर भी यह धब्बा रह ही गया। आज भी तथाकथित उच्च जातियाँ, तथाकथित अस्पृश्यों से समानता के आधार पर व्यवहार करने को तैयार नहीं हैं। वृत्तपत्रों में समाचार आया था कि राजस्थान के गाँव में एक हरिजन को केवल इसलिए मार डाला गया, क्योंकि उसने मूँछे रख ली थीं। चूँकि मूँछें रखना केवल क्षत्रियों का चिह्न ही समझा जाता है। हमारे धर्मगुरुओं ने भी इसकी भर्त्सना नहीं की, क्योंकि वे भी रूढियों को धर्म समझने की भूल करते हैं। किंतु अब स्वय हमारे धर्मगुरुओं ने ही अस्पृश्यता त्यागने का निर्देश दिया है। तब इस निर्देश का जीवन पर्यंत पालन करना हमारा कर्तव्य है।

एकता पर बल दें

हमको इस भूमि के प्रत्येक पुत्र को अपने प्रत्येक धर्मावलबी एव सास्कृतिक बधु को, बिना यह पूछे कि उसकी क्या जाति है, अपने भाई के

समान समझना है। यह तभी सभव होगा जब हम एकता के तत्वों पर बल देंगे तथा मतभेदों को भुलाएँगे। इसी से पारस्परिक सबद्धता एव सामजस्यता अर्जित हो सकती है। यह मैं राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ, जिसका मैं एक विनम्र स्वयसेवक हूँ, में आए अपने अनुभवों के आधार पर कह रहा हूँ। उपरोक्त स्वर्णिम सिद्धात का पालन कर सघ में हमें जाति, सप्रदाय, भाषा या अन्य किसी प्रकार का भेदभाव देखने को नहीं मिलता।

एक बार मुझे गाँधी जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने उनके समक्ष अपनी आशका व्यक्त की थी कि नया नाम 'हरिजन' चाहे उसका वास्तविक अर्थ कितना भी पवित्र हो, आगे चलकर अलगाव की भावना का निर्माण कर सकता है, जिसका राजनैतिक निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा अनुचित लाभ उठाया जा सकता है, परिणामस्वरूप समाज की एकता को क्षति पहुँच सकती है। किंतु गाधी जी ने मुझे विश्वास दिलाया कि यह सब नहीं होगा। दुर्भाग्य से यह खाई निरतर बढती ही जा रही है। अब मतभेदों ने राजनैतिक स्वरूप अपना लिया है।

एक ओर तो हमने अपने समाज के ही एक अग तथाकथित 'हरिजनों' के प्रति जो नीति अपनाई, उसके अभीष्ट परिणाम नहीं निकले। दूसरी ओर मुसलमानों के प्रति हमारी नीति के भी अच्छे परिणाम नहीं निकले। हमने उन्हें इस भूमि की राष्ट्रीय धारा में मिलाने पर बल नहीं दिया। आज कुछ राजनैतिक दल इस प्रकार के हैं, जो मुसलमानों में केवल अलगाव निर्माण करने के इच्छुक ही नहीं है, अपितु उसके लिए सघर्ष भी करते हैं। उनकी दृष्टि मुसलमानों के वोट प्राप्त करने पर रहती है। इन्हीं निहित स्वार्थी शक्तियों द्वारा सदैव राष्ट्रीय विघटन को प्रश्रय दिया जाता है। उसकी आग भडकाई जाती है और यह भी 'राष्ट्रीय एकता' सम्मेलनों के आयोजनों के माध्यम से।

पूजा-विधियों में अतर होने से समाज में विघटन नहीं होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भक्ति अपने प्रकार से करने की छूट होनी चाहिए। यहाँ तक कि कुछ महान सतों ने ईश्वर के विशिष्ट स्वरूप एव नाम की भक्ति की है, किंतु वे दूसरे स्वरूपों के प्रति अनुदार नहीं हुए।

एक बार सत तुलसीदास को श्रीकृष्ण के मदिर में ले जाया गया। मुरलीधर श्रीकृष्ण की मूर्ति के समक्ष वे भावशून्य से रहे। उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की— 'हे नाथ, मैं जानता हूँ कि सभी [illegible] है,

तो भी मेरे लिए कोदडधारी श्रीराम के रूप में दर्शन देने की कृपा करो।' कहा जाता है कि श्रीकृष्ण की मूर्ति कोदडधारी श्रीराम के रूप में परिवर्तित हो गई।

आधुनिकतावाद की बाढ

हमारे परिवार का जो भी देवता हो, हमें उसकी पूजा श्रद्धापूर्वक करनी चाहिए तथा पारिवारिक परपरा को बनाए रखना चाहिए। आजकल इन वस्तुओं का लोप हो जाना कितना दु:खदायक है। कम-से-कम दक्षिण में अपने घरों में तुलसी वृदावन दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे ही गोधूलि की वेला समाप्त होती है, माताएँ इनके समक्ष दीप जलाती हैं। मदिरों की घटियों की मधुर आवाज एव प्रार्थना सुनाई देती है, किंतु उत्तर में इसका लोप होता जा रहा है। तथाकथित आधुनिक घरों में जूते रखने तक की विशेष व्यवस्था मिलती है, पर भगवान के लिए कोई स्थान नहीं है। आधुनिकतावाद ने हमारे घरों से भगवान को विदा कर दिया है।

आधुनिकतावाद ने कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण जीवन-सिद्धातों को हमसे छीन लिया है। 'ज्ञानेश्वरी' में कहा गया है— 'एक पवित्र पुरुष उसी प्रकार विनय के वस्त्रों से अग ढकता है, जिस प्रकार सुशील नारी वस्त्रों से अपने शरीर को ढकती है।' इसमें नारीत्व के शील की प्रकृति का वर्णन किया गया है। किंतु आधुनिक नारी सोचती है कि 'आधुनिकता' शरीर के अगों को अधिकाधिक दूसरों को दिखाने से ही प्रदर्शित होती है। कितना घोर पतन!

लगभग दो दशाब्दी पूर्व हमारी माताएँ प्रभात में श्लोक एव प्रार्थनाएँ गाया करती थीं। शिशु इस पवित्र गायन में आँखें खोलते एक सुसस्कार धारण करते थे। मेरे अदर जो भी सस्कार अथवा सदाचार आपको दिखाई देता है, वह इसी रीति से मेरी माँ के द्वारा मुझमें किया गया था। आजकल हमारे बच्चे प्रभात से रात्रि तक अश्लील एव भद्दे गाने गुनगुनाते हैं। यही उपयुक्त समय है, जब हम इस प्रकार के चरित्र-हनन को कठोरता से रोकें और अपने घरों में भगवद्गीता, रामरक्षा अथवा किसी अन्य ग्रथ का पारायण प्रारभ करें। हमारी माताएँ प्रभात में बच्चों को जगाएँ, बडों को प्रणाम करना सिखाएँ तथा घर के देवता की पूजा उनसे कराएँ। हमारे बच्चों में मातृभक्ति, देशभक्ति तथा देवभक्ति उत्पन्न करने का दायित्व माताओं का है।

अव समाज के प्रति हमारे व्यवहार का प्रश्न है। हमारे दर्शन में वताया गया है कि समाज परम शक्तिमान परमेश्वर का विराट स्वरूप है। इसलिए समाज के प्रति हमारा प्रेम तथा भक्ति प्रकट होनी चाहिए। उदाहरण के लिए– हमारे समाज में अनेक वधु हैं, जिन्हें रोजाना भोजन नहीं मिल पाता। क्या इसकी हमें अनुभूति है? क्या हम उनके लिए कुछ प्रयास करते हैं? प्राचीन काल में 'वलि वैश्व देव' यज्ञ हुआ करते थे। इन यज्ञों में पहले भूखे लोगों को भोजन कराया जाता था, उसके पश्चात् ही अन्य लोग भोजन करते थे। आज हम प्रत्येक दिन मुट्ठीभर अनाज समाज के व्यक्तियों के लिए इकट्ठा कर सकते हैं। हमें वैसा करना भी चाहिए। यही सच्चा 'वलि वैश्व यज्ञ' होगा।

भगवान विश्वभर की एक कथा है। वे अपना भोजन सभी जीवित प्राणियों को भोजन कराने के पश्चात् करते थे। एक दिन नारद ने कुछ चीटियों को डिविया में वद कर दिया। वाद में ये भगवान विश्वभर के पास जाकर पूछने लगे कि क्या आपने सभी जीवित प्राणियों को भोजन करा दिया हे? भगवान के 'हा' कहने पर नारद ने उनको 'झूठा' वताने के लिए अपनी छोटी डिविया खोली। जैसे ही उन्होंने डिविया का ढक्कन खोला, तो देखा कि सभी चीटियों के मुँह में शक्कर के दाने हैं। इसीलिए उन्हें भगवान विश्वभर कहा गया है। यदि हम भगवान के भक्त हैं तो हमें वही करना चाहिए, जिससे भगवान प्रसन्न हों। निस्सदेह हम ससार के प्रत्येक प्राणी को भोजन नहीं करा सकते, तो भी यथासभव भूखे वधुओं की क्षुधा दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

हिदू धर्म की ध्वजा ऊँची करे

हिदू के रूप में जन्म लेने के कारण हमारा दायित्व हो जाता है कि हिदू चरित्र की विशेषताओं, जिनके समक्ष समस्त ससार कभी नतमस्तक था, को अपने अदर उत्पन्न करें। हिदू सत्य के प्रति अगाध भक्ति और शुद्ध चरित्र से पहचाना जाता है। किंतु आजकल हमारे नेता तक भ्रष्टाचार और चारित्रिक पतन के लिए वदनाम हैं। ईश्वर हमें इस चारित्रिक पतन को रोकने और एक वार फिर से नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों को पुनर्जागृत करने के लिए परिश्रम की पराकाष्ठा करने का वल प्रदान करें।

इस सघर्षशील ससार में इन आदर्शों की रक्षा और अपनी सस्कृति

के प्रचार के लिए हमें हिंदू समाज को सगठित कर शक्तिशाली समाज के रूप में खडा करना है। यदि हमारे कुछ नेता हिंदू धर्म एव समाज के पुनरुत्थान के मार्ग में रोडा बनते हैं, तो हमें स्पष्टता से घोषणा करनी चाहिए कि वे अब हमारे नेता नहीं रहे। वे नेतृत्व छोड दें। यदि हमने प्रत्येक कार्यक्रम में बिना कोई समझौता किए यह रुख अपनाया और इस बात पर बल दिया कि हमारी सस्कृति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाशित करे, तो यह सबकी ऑखें खोल देगा। याद रखें कि धर्म के आधार के बिना हमारे देश का कोई भविष्य नहीं है।

२६ धर्मरक्षा की कार्य व दिशा

(विश्व हिंदू परिषद्, पश्चिम उत्तरप्रदेश के प्रांतीय अधिवेशन, हरिद्वार में दिया गया भाषण)

इस कार्य को स्वतत्र रूप से चलाया जाना चाहिए, क्योंकि अपने देश में छोटा-बडा कोई भी काम होता है तो तुरत ही उसमें राजनीति घुस जाती है, पक्षों-विपक्षों के झगडे भी आ जाते हैं। वैसा इसमें नहीं होना चाहिए। इसकी सपूर्ण रचना इस प्रकार की बने।

हम लोग हिंदू नाम से जैसे अपने इस भारतवर्ष में रहते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के और अनेक देशों में भी भिन्न-भिन्न कारणों से हिंदू जाकर बसे हुए हैं। बहुत प्राचीन काल से ही यह जो बाली द्वीप है नवद्वीप है, इधर हिंदू रहते ही आए हैं। वहाँ पर अपने बडे-बडे मदिर भी विद्यमान हैं और भारत के ही अनुसार अपने जीवन का सब प्रकार से सयोजन करने की दृष्टि से यहाँ के पवित्र स्थानों के नाम भी वहॉ पर दिए गए हैं। वहॉ पर एक नगरी अयोध्या के नाम से भी है। इस प्रकार उधर भी अपने को 'हिंदू' कहकर उसके अनुसार अपना जीवन चलानेवाला बहुत बडा जनसमुदाय विद्यमान है। अभी एक या दो वर्ष पहले इडोनेशिया में उन्होंने ऐसा नियम बनाया कि प्रत्येक नागरिक किसी-न-किसी धर्म का होना चाहिए। यह नियम इसलिए बनाया, क्योंकि कुछ लोग यह कहकर कि हम साम्यवादी हैं, हम तो धर्म में विश्वास नहीं करते, वहाँ पर विद्रोह पैदा करने का प्रयत्न करते थे। उनको विद्रोह से परावृत्त करने की दृष्टि से उन्होंने ऐसा नियम बनाया है। वहॉ पर मुस्लिम हैं, हिंदू हैं और थोडे-बहुत बौद्ध मिलेंगे। ऐसा

होने के कारण ही उनके सामने यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि जो लोग अपने को साम्यवादी बताकर किसी भी धर्म के नहीं मानते हैं, उन्हें इन तीनों में से किसी में सम्मिलित होना चाहिए। अधिकांश लोगों ने अपने को हिंदू धर्म में सम्मिलित करना इष्ट माना। जैसा लोगों ने मुझे बताया, वहाँ इस समय सब मिलाकर लगभग एक कोटि जनसंख्या है, जो अपने आपको हिंदू कहती है।

इंडोनेशिया के हिंदू अपने ऐसे धर्मग्रंथों की माँग करते हैं, जिन्हें सरलता से समझ सकें। वे इसकी माँग भी करते हैं कि कोई वहाँ जाकर उनको संस्कार प्रदान करे और समय-समय पर कीर्तन, भजन, हवन, प्रवचन आदि के द्वारा उनके हृदय में धर्म की श्रद्धा को दृढ करने के लिए प्रयत्न करे। वे इसकी माँग भी करते हैं कि वहाँ पर अपने मंदिर हैं उनमें यथाविधि पूजा-पाठ चले, इसकी भी कोई व्यवस्था हो। उनकी ये सभी माँगें योग्य हैं, क्योंकि वे अपने को अभिमान के साथ हिंदू रखना चाहते हैं। हिंदू केवल शब्दमात्र न रहे, वे उसी के अनुसार अपना जीवन चलें-- इस प्रकार की इच्छा अपने अंतःकरण में रखते हैं। यह वास्तविक रीति से हम सब लोगों के लिए एक बडी शिक्षा देनेवाली बात है।

हिंदू की मूल भूमि, याने भारत से दूर और गत कई शताब्दियों से संबंध विच्छिन्न हो जाने की स्थिति होते हुए भी, चारों ओर विपरीत परिस्थिति और इस्लाम आदि अन्य मतों के वहाँ पर प्रबलता से विद्यमान होते हुए भी इन लोगों ने स्वयं को 'हिंदू' नाम से अभिमान के साथ बचाकर रखा है। आगे भी अभिमान के साथ बचाकर रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। ये सब लोग वास्तविक रीति से बधाई के पात्र हैं, अभिनंदनीय हैं और उनको उसी प्रकार से उत्कृष्ट हिंदू बनाकर रखने की दृष्टि से हम लोगों को हर प्रकार से सहायता करने की आवश्यकता है।

ऐसे अन्य कई छोटे-बडे देश हैं, जिनमें हिंदू बसे हैं और उन्होंने अपना धर्म नहीं छोडा है। दूसरा कुछ न आए तो वे रामचरितमानस का ही पाठ कर लेते हैं। विवाह के मंत्र मालूम न होने के कारण सीता-विवाह के मंगल प्रसंग का पाठ कर विवाह कर लेते हैं। क्योंकि मंत्र-विधि सब भूल-भाल गए हैं। उनमें से कई तो केवल ग्रामीण और जंगली क्षेत्रों में चले जाने के कारण इन बातों को जानते भी नहीं है। इसीलिए उनका जीवन विचित्र सा हो गया है।

इसी प्रकार से वेस्टइडीज में ब्रिटिश गुयाना है, मॉरीशस है। इन सब स्थानों में काफी सख्या में अपना हिंदू समाज विद्यमान है, परतु उनको सस्कार देनेवाला कोई नहीं है। उनके चारों ओर तरह-तरह के मतों का घेरा पडा हुआ है। सबके बीच उनको अपना जीवन हिंदू के नाते सुदृढता से चलाना है। इसलिए उन सबकी अपेक्षा यह है कि धर्म-जननी भारतमाता और उसमें रहनेवाला धर्म का ज्ञाता, वेत्ता और परिपालनकर्ता हिंदू समाज है, यह अपने में से किन्हीं अच्छे रत्नों को समय-समय पर वहाँ भेजकर, उनको सब प्रकार से श्रेष्ठ और अच्छा बनाकर हिंदू के नाते स्वाभिमान के साथ खडा होने के लिए शक्ति प्रदान करे। उनकी यह अपेक्षा और इच्छा बिल्कुल स्वाभाविक है।

वैसे तो हम लोग यह भी कह सकते हैं कि हमारे यहाँ ऐसा भी वर्णन आया है कि अपने भारत के चारों ओर रहनेवाले भिन्न-भिन्न लोग, जो आज समाज से सर्वथा पृथक हैं, कभी-कभी समाज के विद्रोही भी दिखाई देते हैं, वे भी पूर्वकाल में हिंदू इस नाते रहते थे। अपने यहाँ कहीं-कहीं ऐसा वर्णन भी आता है कि ये जो म्लेच्छ वृद है, ब्राह्मणस्थ आदर्श के नाते सस्कार न दिए जाने के कारण ही हुआ है। लगभग इसी प्रकार की स्थिति बाकी के सब देशों में भी हो चुकी है। उसको हमें ठीक करना चाहिए। एक बार जो अपने सस्कार से च्युत हो गए, उनको अपने समाज से और अपने धर्म से निकाल बाहर करना ठीक नहीं होगा। उनको फिर से सस्कारित करके योग्य रूप से अपने धर्म का परिपालन करनेवाले स्वाभिमान-सपन्न हिंदू के नाते अपना एक जागतिक प्रभुत्वसपन्न समाज खडा करना उचित होगा।

अनेकता मे एकता

यह तो विदेशों की बात रही, परतु अपने देश में भी तो पूजा के अनेक रूप अनेक प्रकार और अनेक प्रकार के देवता वृद विद्यमान हैं। यही नहीं, अनेक प्रकार के पुराण और अनेक प्रकार के पथ इत्यादि भी हैं और इन सबसे अपने को पृथक मानने वाले भी हैं। दक्षिण में तो शैव और वैष्णव का झगडा भी हो गया था। तुलसीदास जी जैसे विद्वान लोगों ने अपने ग्रथों के प्रचार द्वारा यह झगडा दूर करने के लिए 'मानस' में यहाँ तक लिखा कि जो शिव को मानता है और विष्णु को नहीं मानता है वह अधोगति को जाएगा और जो विष्णु को मानता है तथा शिव की अवहेलना

करता है, वह शैव नरक में गिरेगा। ऐसा कहकर, दोनों का समान रूप से एक ही ईश्वर के नाते अत करण से आदर करने को प्रेरित किया। इसका अर्थ यह है कि उस समय कुछ न कुछ तो झगडे यहाँ पर भी रहे होंगे।

दक्षिण के लोग तो एक कदम और भी आगे हैं। वे तो विशिष्ट प्रकार से माथे पर चदन लगाने वालों को ही अलग सप्रदायवाले मानने लगे हैं। इनका झगडा तो यहाँ तक हुआ कि भगवान की शोभायात्रा में निकलनेवाले हाथी के माथे पर कौन सा नाम लिखा जाए, उसके लिए भी खूब लट्ठबाजी हुई। यह मामला उस समय इग्लैंड की प्रिवी कौन्सिल तक गया। वहाँ पर फैसला होने के पहले ही वे हाथी मर गए। इस प्रकार कुछ वेद को प्रमाण माननेवाले, कुछ वेद को कुछ मात्रा में माननेवाले तथा कुछ न माननेवाले अनेकविद् पथ हैं। किंतु सभी के मूल में अध्यात्म की जो चिंता है, वह समान है और मनुष्य मात्र में जो सद्गुण उत्पन्न होने चाहिए, उसकी चिंता भी समान है। केवल उपासना के मार्ग और कुछ पद्धतियाँ मात्र ही भिन्न हैं। फलत अपने समाज की रचना के लिए लगनेवाले जो सस्कार हैं, उनमें थोडा-बहुत भिन्नत्व देखने के लिए मिलता है। इसके परिणामस्वरूप अपना यह समाज इस छोटी सी भिन्नता को लेकर ही पृथक-पृथक अशों में बँट गया है।

अपने यहाँ चातुर्वर्ण्य है। चातुर्वर्ण्य, याने एक शरीर के अवयव के रूप में सपूर्ण समाज है, एक ही उसकी शक्ति है, एक ही उसका चैतन्य है और एक ही उसका जीवनरस है। इस प्रकार की धारणा को अपने अदर स्थापित करें। समाज की जो बुद्धि, जो क्रियाशक्ति और उसको योग्य रीति से विकसित करने की जो व्यवस्था है वह ईश्वर प्रदत्त ही है। क्योंकि स्वय भगवान ने कहा है कि यह चारों वर्ण मेरी ही सृष्टि है, अर्थात् यह व्यवस्था तो भगवद्प्रदत्त है। इसमें वास्तविक रीति से परस्परानुकूलता है, परस्पर-पूरकता है, उसमें कोई भेद नहीं, कोई झगडा नहीं। जब जातियाँ बनीं, तब जाति-व्यवस्था भी बनी, लेकिन जाति-भेद तो परकीय लोगों ने यहाँ पर बनाया हुआ है, वह अपना नहीं है। हमारे लिए तो यह सब एक सामाजिक व्यवस्था है, और ईश्वरप्रदत्त रचना होने के कारण सब प्रकार से श्रेष्ठ है।

अपनी इस व्यवस्था में कालगति का परिणाम मानें या यहाँ आए विदेशी और विधर्मी लोगों द्वारा उत्पन्न किए हुए भेद मानें या आपस में वैमनस्य के दुर्भाव का परिणाम मानें या अपनी ही बुद्धि कुछ क्षीण हो जाने

के कारण स्वत्व को हम लोग भूल गए– इसको मानें, आज अपने को जाति की व्यवस्था के स्थान पर जाति के विवाद ही अधिक मात्रा में देखने को मिलते हैं। अत अपने सपूर्ण समाज को यह बताने की आवश्यकता है कि यह भेद नहीं है, यह तो व्यवस्था है। हम सब लोग मिलकर एक होकर रहें तो ही अपना समाज अपने सपूर्ण श्रेष्ठत्व को लेकर जीवित रह सकेगा, अन्यथा इस ससार के चलनेवाले भयकर सहार में वह कहीं पर टिक नहीं सकेगा। इस दृष्टि से किसी की भी अवहेलना या अनादर न करते हुए और किसी के विनाश की या किसी पथ को अपनाकर खा लेने की किसी प्रकार की इच्छा न रखते हुए कार्य के लिए सबका एकसूत्रीकरण करना है, ताकि लोग समाज-रक्षा और समाज-उन्नति हेतु प्रयत्नशील बनें।

यदि हम लोग प्रबल बनें, शक्तिसपन्न बनें, सद्धर्म का आचरण करनेवाले बनें और सही प्रकार से जिसका जो कुछ कर्म है, उसका जो ज्ञान है, उसको प्राप्त कर उसको जीवन में उतारकर, जीवन में लाने की क्षमता अपने अदर लाकर चलें, तो अधिक उचित रहेगा। जितनी मात्रा में ऐसा होगा, उतनी मात्रा में हम लोग जगत् में फैले हुए अपने सब बधुओं को प्रेरणा देकर उनके हिंदुत्व को दृढ करते हुए, स्थान-स्थान पर अपनी भारतमाता की प्रभुता की छाप डाल सकेंगे। यही विचार अपने सामने है और इसी विचार को लेकर अपनी विश्व हिंदू परिषद् का कार्य चलता है।

परानुकरण से उपजी स्वत्वहीनता हानिकर

एक बात और भी रही कि आधुनिक शिक्षा-दीक्षा भी काफी मात्रा में प्रारभ हो चुकी है, बहुत बढ भी गई है। उसका परिणाम अपने जीवन पर बहुत हो गया है। जो पढा-लिखा समाज है, वह तो स्वत्व से दिन-प्रतिदिन दूर ही जा रहा है। उसको अपना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अपने यहाँ पर तो मकान भी बनाना हो, तो वह अपने ढग से नहीं बना सकते। उसके लिए भी इग्लैंड का आर्किटेक्ट मँगाना पडता है। चडीगढ का निर्माण करने के लिए फ्रास से एक नगर-निमाण करने का शास्त्र जाननेवाला आदमी आया था और उसने उसे ऐसा बनाया कि हमारे इसी प्रदेश के डा सपूर्णानद ने कहा कि 'भई कुछ भी करो, पर चडीगढ के समान कोई और नगर मत बसाओ, क्योंकि उसने तो यह एक मुर्दा लाकर रखा है।' यह बात सच भी है। मैं भी कई बार चडीगढ गया हूँ। वहाँ जाकर लगता है कि विशाल भूगर्भ से उत्खनन कर एक पुरातन शहर

सबके सामने खडा करके रख दिया गया है। यहाँ पर कोई जीवन नहीं, चैतन्य नहीं और देवता का निवास बिलकुल नहीं। ऐसा दिखाई देता है कि अपना जीवन सभी प्रकार से पराङ्करण में जा रहा है। एक अच्छे शिल्पशास्त्री से मेरी पहचान है, वे कहते हैं कि 'हमारा आदमी इग्लैंड जाता है और वहाँ से पढ कर आता है कि मकान कैसे बनाना है। वह इस प्रकार का विचार नहीं करता कि अपने यहाँ की परिस्थिति कैसी है, जलवायु कैसी है, यहाँ पर किस प्रकार का मकान होना चाहिए। वह तो यहाँ भी इग्लैंड के समान ही मकान बनाता है। फिर रहनेवालों को चाहे कष्ट भी होता हो, तब भी इसी प्रकार से मकान बनते चले जाते हैं। यह उन्होंने ठीक ही कहा था।

समाज को सस्कारसपन्न बनाना

अपने धर्म के सबध में भी आज बहुत अश्रद्धा उत्पन्न हो गई है। मैंने ऐसे बहुत से लोग देखे हैं, जो कहते हैं कि जनेऊ पहनने में, शिखा रखने में सध्या करने में, गायत्री जपने में क्या है? मैंने उनसे कहा कि तुम हर चीज में 'क्या है, क्या है' कहते हो। तुम्हारे जीने में भी क्या है? हमारी दृष्टि से तो कुछ भी नहीं है, जितनी जल्दी चले जाओ उतना ही अच्छा है। हर चीज में 'क्या है, क्या है' कहते रहोगे तो किसी में कुछ नहीं रखा है। परतु विचार करो कि ऐसी अनेक छोटी बातें मिल कर एक दृढ सस्कृति की जीवनधारा बनती है और इसलिए हर चीज के सबध में ऐसी उपेक्षा करना चितनीय है। हम सब लोगों को उस पर विचार करना चाहिए। शातचित्त से सभी लोगों की आज की प्रवृत्ति को समझते हुए धीरे-धीरे अपने मार्ग पर ले आने के लिए, उनपर केवल टीका-टिप्पणी या शाब्दिक प्रहार न करते हुए, उनको अपने इस सद्धर्म की ओर ले जाने का प्रयत्न करना चाहिए। उनमें से कितने ही ऐसे लोग अपने को दिखाई देंगे, जिनमें कोई सस्कार ही नहीं हैं। मैंने देखा है कि एक लडका था, लडके के माँ-बाप से मेरे सबध होने के कारण उसका यज्ञोपवीत सस्कार किया गया। बाद में वह मुझे मिला, तब मैंने पूछा– 'तेरा यज्ञोपवीत सस्कार हो गया है। क्या कभी तूने सध्या-वदन किया हे?' उसने कहा, 'कभी नहीं किया।' मैंने पूछा, 'क्या तू गायत्री मत्र जानता हे?' उसने कहा, 'नहीं जानता।' मैंने कहा तुझे तो फिर से एक बार व्रात्य समझकर व्रतबध करना पडेगा। यह स्थिति अपने को बहुत जगह देखने को मिलती है। ऐसे लोगों को भी कुछ सस्कार देना चाहिए।

अब लोग कहेंगे कि अपने पुराने सस्कारों में बडी जटिलता आ गई

है। अत उन्हें सपन्न कराने में कई कठिनाइयाँ आती हैं। यह बात अगर मान भी लें, तो भी यह कहा जा सकता है कि अपने यहाँ प्राचीनकाल में जो बडे-बडे स्मृतिकार हुए हैं, उन्होंने समाज की आपद्‌काल में होनेवाली स्थिति का भी विचार किया है। ऐसा विचार कर भिन्न-भिन्न ऐसी अनेक बातें उन्होंने अपने सामने रखीं कि आपद्धर्म में कम से कम इतना सस्कार करो ही। इससे कम करना, याने सब प्रकार से धर्म से वचित होकर पशतुल्य जीवन व्यतीत करना है। ऐसा एक न्यूनतम कायक्रम सबने दे रखा है। उसी का ठीक प्रकार से सकलन करते हुए और सपूर्ण समाज के आबालवृद्ध से उस न्यूनतम मर्यादा का पालन कराना ही चाहिए। ऐसा वातावरण उत्पन्न कर उसकी शिक्षा-दीक्षा कराते हुए ऐसा प्रयास करना है कि वह उन मर्यादाओं का अधिकाधिक पालन करते हुए अपने धर्म के उपागों का पालन करनेवाला व्यक्ति बने। इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करने का प्रयत्न करने की आज बडी आवश्यकता दिखाई देती है। इस दृष्टि से सर्वदूर जगत् के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में रहनेवालों को और अपने यहाँ पर भी सस्कार-शून्य बने हुए अपने सब बधुओं को सस्कार प्रदान करने की दृष्टि से ठीक प्रकार से मार्गदर्शन करने का प्रयत्न करना, यह अपना एक कार्य समझकर विश्व हिंदू परिषद् उसे करने में जुटी हुई है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम सब और सभी सस्कारों की ज्ञाता साधुमडली, उचित मार्गदर्शन करके उसको उसके कार्य में सफलता प्रदान करा देगी।

धर्मांतरितो का परावर्तन आवश्यक

हम सबके सामने एक प्रश्न यह भी है कि पिछली कुछ शताब्दियों में अपने समाज में से कई लोग अन्यान्य मतों में चले गए हैं। वे अपनी इच्छा से तो गए नहीं। उनके सामने कभी बहुत बडा प्रलोभन आ गया होगा, प्राण-सकट खडा हो गया होगा या भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्य अत्याचार उनपर हुए होंगे। ऐसे कई कारणों के परिणाम से बहुत लोग चले गए हैं। मध्यकाल में अनेक प्रकार के ऐसे आक्रमण हुए, जिनके कारण अपने यहाँ पर पुरुषों को प्राण-भय उत्पन्न हो गया, स्त्रियों की पवित्रता भी भ्रष्ट करने की स्थिति उत्पन्न हुई। उस समय लोगों ने पतित हुई स्त्रियों को छोड दिया। मुझे स्मरण आता है कि, ऐसी स्त्री के बारे में विशेषकर यह कहा है कि यदि किसी की अनिच्छा से बलात्कार से परपुरुष से सयोग हो जाए तो प्रथम रजोदर्शन के उपरात उसको पवित्र ही मानना चाहिए।

इस प्रकार से अनेक लोग हिंदू धर्म को छोड़ गए और छोड जाने के कारण उनके साथ फिर से वैसा व्यवहार हुआ नहीं, जबकि अपनी एक स्मृति के अनुसार वैसे लोगों को पतित नहीं मानना चाहिए ऐसा कहा गया है। ऐसे अनेक कारण हुए और आज भी अपने को ऐसे कार्य चलते हुए दिखाई दे रहे हैं, जिनके कारण प्रतिदिन अपना यह हिंदू अपने समाज धर्म से गिरता हुआ, अन्य समाजों की सख्या वढाता हुआ उनके तथाकथित धर्म का अनुयायी वन रहा है। अपने यहाँ से जो लोग जाते हैं, वे अपनी शक्ति को कम करते हैं और परधर्मी लोगों में जाकर उनकी शक्ति को वढाते हैं। इस प्रकार से शत्रु की शक्ति का सवर्धन और अपनी शक्ति का ह्रास दिन-प्रतिदिन होता हुआ दिखाई देता है। अव विचार करने के लिए अपने सामने यह प्रश्न है कि ऐसा ह्रास होते हुए हम देखते ही रहें कि कुछ करें। कभी-कभी तो ऐसा प्रश्न निकलने के वाद अपने यहाँ के कई लोग वडे रुष्ट भी होते हैं। अपने एक ऐसे ही शास्त्री जी थे, उन्होंने मुझसे कहा, 'दूध का दही वनता है, पर दही का दूध नहीं वनता। मैंने उनसे कहा, चलो, अव तो छुट्टी हो गई। अव पूरे दूध का दही वन जाने के वाद फिर दूध खोजने चले जाना। वह कहीं पर भी मिलेगा नहीं। फिर क्या करोगे?' इसके लिए कोई विधि है कि नहीं, इसके लिए कोई नियम है कि नहीं? धर्मशास्त्र इसके लिए विरोध करता है क्या? इत्यादि वातें वडी विचारणीय हैं। मैं तो इसका अधिकारी नहीं कि इसपर विचार करूँ। लेकिन आप सव श्रेष्ठ हैं, हमारे समाज की धुरी हैं, धर्म के ज्ञाता हैं। आपका यह अधिकार है। अत इसके सवध में विचार करें। मैंने अपने अनेक आचार्यों से भी वातचीत की और उनसे इसके वारे में परामर्श माँगा। कार्य करने के लिए क्या करना चाहिए— इसके सवध में मार्गदर्शन भी प्राप्त करने की चेष्टा की। मुझे ऐसा दिखाई दिया कि हमारे वहुत से आचार्य इस वात को मानने के लिए सिद्ध हैं कि कोई व्यक्ति किसी भी कारण से अपने धर्म से गिरा हुआ दिखाई दे, तो हम लोग किसी न किसी प्रकार से शुद्धिकरण करके उसको अपने समाज में पुनरपि वही स्थान दे सकते हैं।

अव प्रश्न उत्पन्न हुआ कि जो नया हो, उसका तो अपने को पता है कि कहाँ का है, किस परिवार का है, किस जाति का है। उसको तो उसमें विठाना अपने लिए कोई कठिन नहीं होगा। पर जो सौ वर्ष के पहले हुए, उनका कुछ भी पता नहीं, उनका क्या करें? अपने प्रवास में मैंने ऐसा देखा है कि अपनी जो ग्रामीण जनता है, वह उनमें से हुए मुसलमान या

खिस्ती लोगों के बारे में जानती है कि वे किस जाति में उत्पन्न हुए हैं। दक्षिण में तो वे अभी तक अपनी जाति का नाम भी लगाते हैं। काग्रेस के एक अध्यक्ष हुए— कामराज नाडार। वे तो हिदू हैं, परतु उनकी ही जाति के कितने ही लोग जो खिस्ती बने हुए हैं, वे भी नाडार ही कहलाते हैं। याने दोनों नाडार यदि सामने खडे हो गए तो अपने को यह बताना कठिन हो जायेगा कि यह हिदू अथवा अहिदू। खिस्ती होने के बाद भी लोग अपने नाम के साथ रेड्डी ही लगाते हैं। ऐसे कई लोगों की जातियों का, उनकी परपराओं का सबको पता है। इसलिए उसमें कोई कठिनाई आने का विशेष कारण नहीं है। हॉ, जिनके बारे में सब कुछ विस्मरण हो चुका हो, ऐसे लोगों के बारे में एक बडा प्रश्न उठता है। इसका मैं एक छोटा सा प्रसग बताता हूँ। दक्षिण में एक बहुत बडा वेश्य वर्ग है जो चेट्टी कहलाता है। अब उन्हें कोई तो चेट्टी कहते हैं और कोई 'शेट्टी' कहते हैं। फिर उसका ही सम्मानदर्शक शब्द 'चेट्टियार' बन जाता है। पर ये सब सस्कृत शब्द 'श्रेष्ठि' के ही अपभ्रश हैं। वहाँ पर बडे-बडे वैश्यों को 'श्रेष्ठि' ही बोलते हैं। वैश्य होने के नाते उनके गोत्र भी हैं। उन गोत्रों का विस्मरण हो गया है। इसलिए उनमें से कई लोग किसी पेड को ही अपना गोत्र मानते हैं।

शृगेरी पीठ के द्वारा कुछ छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनमें से किसी एक पुस्तक में, जो आचार्य स्वामी की नहीं, वरन् किसी दूसरे पडित की है, यह लिखा है कि ये सब शूद्र बन गए हैं। अभी के शृगेरी मठ के हमारे आचार्य स्वामी प्रवास के लिए निकले, तब इन शेट्टी लोगों ने उनके विरुद्ध काले झडे लेकर प्रदर्शन किए। जब मैं उनके दर्शन के लिए हेदराबाद गया था, तब उन्होंने मुझे बताया कि ऐसी-ऐसी बात हुइ है। मैंने कहा कि ऐसा होना तो ठीक नहीं हे। में इसके बारे में प्रयत्न करूँगा कि फिर से ऐसा न हो। जब मैंने आचार्य स्वामी से पूछा कि ऐसा क्यों हुआ? तब उन्होंने बताया कि इनको अपने गोत्र का भी पता नहीं और जिसके गोत्र का भी पता नहीं, वह 'द्विज' कैसे हो सकता है? इस पर मैंने आचार्य स्वामी से कहा कि महाराज जी! वे वैश्य हैं— यह आप मानते हैं कि नहीं। उन्होंने कहा कि हैं तो वैश्य ही। इसपर मैंने कहा कि अगर गोत्र का विस्मरण हो गया हो तो अपने यहॉ ऐसी कोई व्यवस्था है या नहीं कि धर्माचार्य उन लोगों को गोत्र देकर फिर से एक बार द्विजत्व में प्रस्थापित कर सकें। एक व्यवस्था तो मुझे मालूम है कि जिसको किसी गोत्र का स्मरण नहीं, उसे 'कश्यप' गोत्र का कहना चाहिए। सबका आदिगोत्र

नहीं है। इस प्रकार से समस्या बन सकती है। इसपर उन्होंने कहा कि जो तुमने कहा है वह ठीक ही कहा है। मैं इस पर सोचूँगा। मैंने कहा कि आप उनके प्रतिनिधियों को बुलाइए और एक-एक को एक-एक गोत्र का नाम देकर उनके अनुसार उनका नामकरण कीजिए। उनका सामूहिक रूप से फिर से एक बार संस्कार कर दीजिए और उनका मिलन, जो आज टूट चुका है उनको फिर से ले लीजिए।

यह प्रसंग मैंने इसलिए बताया कि इसी कारण मैंने अपने सभी आचार्यों से प्रार्थना की कि यदि किसी को अपनी जाति मालूम न हो तो उसके साधारण गुण लेकर उसको किसी भी जाति में आप रख सकते कि नहीं? आप तो धर्म की व्यवस्था देनेवाले हमारे श्रेष्ठ पुरुष हैं। आप आदेश करें कि इसको 'वैश्य' कहो, तो सब समाज उसको 'वैश्य' के रूप में ग्रहण करेगा। तब उसको समाज जीवन में समाविष्ट करके एकरूप, एकरस करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं होगी। इस पर उन्होंने कहा कि अच्छा हम सोचेंगे। मुझे तो आशा है कि कुछ न कुछ रास्ता निकल आएगा। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि उनकी अलग जाति बनाओ। उनकी एक अलग जाति बनाना अच्छा नहीं होगा, इसलिए मैं उसके पक्ष में नहीं हूँ। अलग जाति बनाने से वे अलग तो रह ही गए और फिर अनुभव ऐसा है कि उनको ऐसा लगता है कि हिंदू समाज में अलग जाति बनाकर एक प्रकार से बाकी के समाज से अस्पृश्य होकर रहने से तो फिर से मुसलमान या ख्रिस्ती बन जाने में क्या नुकसान है? यदि उनके मन में ऐसा विचार आया तो यह बड़ा हानिकर होगा। इस प्रकार के विचार से यदि कोई व्यक्ति पुनरपि एक बार मुसलमान या ख्रिस्ती बना, तो वह अपने समाज का अधिक घोर शत्रु बनेगा। इस दृष्टि से भी अपने को विचार करना पड़ेगा। हम तो धर्मशास्त्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते। कर भी नहीं सकते, क्योंकि यह हमारा अधिकार नहीं। परंतु धर्म के अनुकूल क्या है और उसके द्वारा इस समस्या का हल क्या हो, इसका मार्गदर्शन अपने साधु-संत कर सकते हैं। आज इसकी बड़ी आवश्यकता है।

इस बात से मुझे बड़ा सुख हुआ कि कुछ लोगों ने, जो दक्षिण प्रांत में कन्याकुमारी के पास ग्राम में रहकर मछली पकड़ने का धंधा करते हैं, स्वेच्छा से वहाँ के अपने कार्यकर्ताओं के पास जाकर कहा कि ईसाई मत में रहते-रहते हम ऊब गए हैं अब हमें अपने पुराने मत में आने दो। वैसे तो वे बहुत साल पहले ख्रिस्ती बने थे, परंतु उनकी जाति वगैरह, सब वैसी

की वैसी ही थी। सब प्रथाएँ और सब प्रकार के व्यवहार भी वैसे के वैसे ही थे। वहाँ पर साधुओं ने उनका यथाविधि शुद्धिकरण कर, उनके नाम वगैरह बदल दिए। प्रश्न उत्पन्न हुआ कि साधु मिल गए और उन्होंने कर दिया, परतु हमारे जो शृंगेरी मठ के मठाधिपति, जिनका वहाँ पर शकराचार्य की दृष्टि से अधिकार चलता है, वे मान्यता देंगे कि नहीं? एक पीठ जो 'कामकोटिपीठ' नाम से बोला जाता है, उन्होंने कहा कि यह ठीक है और बहुत अच्छा हुआ है। अब उन लोगों को उपासना के लिए एक स्थान चाहिए। ख्रिस्ती लोगों का वहाँ पर गढ होने के कारण उनके गिरजाघर तो चारों और खडे हैं, परतु हिंदू का एक छोटा-सा मदिर भी नहीं है। कहीं पर देवता की एक छोटी-सी मूर्ति भी किसी के घर में नहीं है। गाँव के गाँव ख्रिस्ती बने हुए हैं। ऐसी स्थिति में इन दोनों आचार्यों ने कहा कि हम मदिर खडा करवा देंगे और उन्होंने उसका जो नक्शा वगैरह बनाना था बनवाकर, अपने आदमियों को बताकर कहा कि यह काम कराओ। इसके लिए जो कुछ पैसा लगेगा, अपने आश्रम में से या जो कुछ दान आता है, उसमें से देंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि उनके पुनरावर्तन पर एक प्रकार से आचार्यों की मुहर लग गई। अपने सब लोगों के लिए यह एक बडा प्रोत्साहन हो गया। इसी प्रकार का प्रोत्साहन यदि मिला तो दक्षिण में समुद्र के किनारे-किनारे सैकडों ग्राम, जो पहले किसी कारण से ईसाई बन गए थे, वे सबके सब पुन ईसाई मत को छोडकर अपने बीच में आ जाएँगे।

अपने को असम की गडबड तो मालूम ही है। असम सब प्रकार के खतरे में पडा हुआ है। वहाँ पर अलग-अलग राज्य बनाने की योजना भी अपने शासन ने बनाई है। अब शासन चलानेवाले तो राजनीति के धुरधर पुरुष हैं और मैं तो राजनीति जानता नहीं। परतु मुझे दिखता है कि उन्होंने अपनी राजनीति की चतुराई में जो कुछ काम किया है, वह असम प्रात और उसके कारण समग्र भारत के लिए भयकर सकट उत्पन्न करनेवाला है, याने ईसाइयों के दबाव में आकर उस क्षेत्र को, जहाँ पर ७० प्रतिशत ऐसे गैर-ईसाई लोग रहते हैं, जिनको हमारे शासक जनजातियाँ, पहाडी जातियाँ, गिरिजन इत्यादि नाम देकर हिंदू समाज से पृथक रखते हैं, को ईसाइयों के शिकार के रूप में उनके हाथ में छोड दिया है, जो कभी भी भारत के साथ सच्चाई से नहीं रहेंगे। नागा पहाडियों में चलनेवाला विद्रोह तो अपने को मालूम ही है। उसी प्रकार की पुनरावृत्ति सर्वदूर करके सपूर्ण असम मानो सकटग्रस्त कर देने की यह योजना हमारे बडे नेताओं

को सूझी– यह बडे आश्चर्य और दु ख की बात है।

सवादहीनता के दुष्परिणाम

वहॉ पर जो ईसाई बने हैं, वे पहले वैष्णव थे। वहाँ पर एक महापुरुष शकरदेव हुए हैं। जिनके निर्वाण को २५ अगस्त को ४०० वर्ष पूर्ण हुए हैं। उनकी स्मृति में अपने लोगों द्वारा कुछ कार्यक्रम करने का प्रयत्न किया गया। खासकर असम में, जहॉ पर उनका कुछ विशेष स्थान है। ऐसे एक तिनसुकिया नाम के नगर में बहुत बडा कार्यक्रम आयोजित हुआ। वहाँ पर शकरदेव महापुरुष द्वारा प्रस्थापित कुछ मठ हैं जिनको 'सत्र' बोलते हैं। हरेक सत्र के प्रमुख को 'सत्राधिकार' कहा जाता है। ये मठ एक बडे द्वीप में हैं, परतु आश्चर्य की बात हे कि एक ही द्वीप में रहनेवाले ये मठाधीश गत दो-तीन शताब्दियों में एक-दूसरे से नहीं मिले। द्वीप बडा है– यह बात सच है, परतु बहुत दूर तो जाना नहीं था। कुछ ही मीलों के अदर हे। अपने एक महापुरुष के अनुयायी के रूप में सब रहते हैं। पर किसने किसको मिलने के लिए जाना? पहले अपने घर से कौन जाए, फिर वह बडा होगा कि मैं बडा हो जाऊँगा, पता नहीं कौन-कौन से विचार मन में आए होंगे, भगवान जाने, लेकिन वे गए नहीं।

सपर्क के सुखद परिणाम

ईश्वर की कुछ ऐसी कृपा हुई कि विश्व हिदू परिषद् के नाते जो काम हुआ, उसके कारण अपने प्रयाग के सम्मेलन में इनमें से एक प्रमुख सत्राधिकार आए। फिर उनकी सहायता से और उनकी प्रेरणा से सभी सत्राधिकार डेढ-दो साल पहले असम में आयोजित एक कार्यक्रम में आए। उस समय सबसे बातचीत हुई। उन्हें बताया गया कि ये सब गिरि क्षेत्रों में रहनेवाले आपके अनुयायी हैं। जब उनसे यह पूछा गया कि उनके पास आपमें से कोई जाता है क्या? उनका मार्गदर्शन कौन करेगा? समय-समय पर उनको भगवान के नाम से भजन-पूजन करना कौन सिखाएगा? उनके अत करण की, अपने समाज की, धर्म की श्रद्धा को कौन पक्का रखेगा? वे वश-परपरा से आपके सत्र के शिष्य हैं, उनका मार्गदर्शन करने का जो स्वाभाविक अधिकार है, उसको विस्मृत करके हम चलें– यह ठीक होगा क्या? तो सबने कहा कि यह बात हमारी ओर से ठीक नहीं हुई है और हम इस चीज को ठीक करेंगे। उन्होंनें उस कार्य को शुरू भी किया है। कुछ लोगों को कार्य करने के लिए उन क्षेत्रों में भेजा। उसका परिणाम यह हुआ

कि उन्होंने वहाँ पर भजन करने के लिए एक छोटा सा कमरा बना लिया। वहाँ पर आस-पास के जो पुराने हिंदू वैष्णव हैं, उनको लेकर भजन-कीर्तन प्रारंभ किया। शंकर महाप्रभु के बने हुए जो भजन हैं, उनका गान किया और भागवत का पाठ करने लगे।

उनको भजन करते देखकर जो ईसाई बने हुए थे, उनकी भी इच्छा हुई और वे भी भजन करने के लिए वहाँ आकर बैठने लगे। भजन करानेवाला विश्व हिंदू परिषद् का जो कार्यकर्ता था, उसने पूछा कि भाई, तुम तो ईसाई हो, यहाँ कैसे आ गए? उन्होंने कहा हम काहे के ईसाई? हम को तो ऐसे ही जोर-जबर्दस्ती से ईसाई बनाया गया था। हमको तो इस भजन में आनंद आता है। ईसाई बनने में यह आनंद नहीं आता। हमको अपने में ले लो। यह ईश्वर की अच्छी कृपा रही कि उनके नाम हिंदू नाम थे, उनको भी हिंदू बना लिया गया।

अब हमारे वहाँ के सत्ताधिकार भी उसको मानने लगे। इस प्रकार से यह जो आक्रमण आया है, उस आक्रमण से केवल अपनी रक्षा नहीं तो प्रत्याक्रमण करके, अपने से बिछुड़ा हुआ समाज है, उन सबको अपने अंदर समाविष्ट कर आक्रमणकारी की शक्ति सर्वथा निष्प्रभ व निर्बल और विनष्ट कर देने की आवश्यकता है। उस आवश्यकता के अनुसार ही कुछ कार्य करने का प्रयत्न चलता है।

२७ हम सब एक हैं

(जोरहाट में संपन्न विश्व हिंदू परिषद्, असम के द्वितीय सम्मेलन में २६ मार्च १९७० को प्रतिनिधियों के सम्मुख व्यक्त विचार)

अपने प्रांत की जो स्थिति है, उससे सब परिचित हैं। यह क्षेत्र अपने देश की सीमा पर होने के कारण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस प्रदेश के उत्तर में चीन जैसा बड़ा देश है और दक्षिण-पूर्व की ओर पूर्वी पाकिस्तान (बाँग्लादेश) है। दोनों ही ओर से हर समय संकट की स्थिति बनी रहती है। परंतु इन संकटों से ग्रस्त यह अपना प्रदेश संकटों का सामना करने के लिए जिस प्रकार एकात्म भाव लेकर खड़ा होना चाहिए, वैसा नहीं है। इस क्षेत्र की प्रगति के लिए आवश्यक एकात्मता की भावना आज बढ़ने के

स्थान पर कम ही नहीं हुई है, वल्कि वह एकदम नष्ट भी हो गई है। ऐसा करने में इस क्षेत्र में स्वाधीनता के वाद वने नए राज्यों की भूमिका अत्यत महत्त्वपूर्ण रही है।

कुछ समय पूर्व अपने नागा वधुओं के लिए एक पृथक राज्य का निर्माण किया गया। उस राज्य में अपने धर्म, अपनी परपरा, अपने इतिहास, अपने राष्ट्रीय जीवन का जो वैशिष्ट्य है, उसके स्थान पर परकीय धर्म प्रसारित हुआ और एक प्रकार से उनकी ही सत्ता प्रस्थापित हुई। अपने ऐसे नागा वधु जो इस परधर्म में नहीं गए, उनकी स्थिति वहुत अच्छी नहीं है। कारण, उन्हें न तो धर्म की शिक्षा ही मिल पाती है और न ही उनमें स्वाभिमान के जागरण का कार्य हो पाता है। अपने देश के वहुत से लोग आजकल उधर जा नहीं सकते, क्योंकि शासन की ओर से प्रतिवध लगा हुआ है। इस कारण अपने इन स्वधर्मी नागा वधुओं से निकट सपर्क रखकर उनके जीवन का सभी प्रकार का उत्कर्ष करने का प्रयत्न अपने लोगों के लिए एक प्रकार से कठिन हुआ है। किंतु विश्व हिंदू परिषद् तो अपनी ओर से एकात्मता लाने के लिए प्रयत्न करने का सकल्प ले चुकी है और उसी के एक प्रत्यक्ष परिपाक के नाते यहाँ पर जो विश्व हिंदू परिषद् का महिला सम्मेलन हुआ, उसमें प्रमुख अतिथि के रूप में नागा वधुओं की श्रद्धास्पद रानी उपस्थित हुई। उन्हें अपने पूज्यपाद श्रीमद् पेजावर मठाधीश स्वामी श्री विश्वेशतीर्थ जी ने भगवान श्रीकृष्ण की एक मूर्ति आशीर्वाद के रूप में दी। अपने वधुओं ने हाथीदाँत की एक और मूर्ति लाकर मुझे दी, जिसे मैंने भी श्रद्धास्पद रानी को देकर प्रार्थना की कि इस मूर्ति का नित्य दर्शन कर वे उसे प्रणाम किया करें। रानी का यहाँ का आगमन अपने समस्त स्वधर्मी नागा वधुओं के अत करण में श्रद्धा जागृत करने में समर्थ होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। भारत का पूरा हिंदू-समाज नागा-वधुओं के साथ खडा है, वह उनके सुख-दु ख में समरस और सुख-सवर्धन करने के लिए कटिवद्ध है, ऐसा विश्वास उनके मन में उत्पन्न होगा।

अव मेघालय नाम से भी एक अलग राज्य वनाया जा रहा है। उसकी वहुत पहले से कल्पना थी। मुझे भी उसका पता होने के कारण अपने देश की राजनीति के जो कर्णधार माने जाते हैं, उनसे कहा था कि ऐसा पृथक राज्य न वनाया जाए। यह पृथक राज्य अपने लिए वहुत ही सकट उत्पन्न करनेवाला हो सकता है। थोडे से ख्रिस्ती वने हुए लोग, जो परकीय विदेशी ख्रिस्ती सस्थाओं से धन और सव प्रकार का सहयोग लेते

हैं, उनका अपने देश में इस प्रकार संकट उत्पन्न करनेवाला राज्य खडा नहीं होना चाहिए, परंतु किसी प्रभाव या किसी दबाव में आकर यह सब हुआ।

गैर-ईसाई प्रकृतिपूजक हैं

बडे दुर्भाग्य की बात तो यह है कि वहाँ रह रहे ईसाई लोगों का अस्तित्व तो अपने शासन ने मान लिया, परंतु बाकी के समाज का जो 'हिंदू है', उसे अपना शासन मान्यता देने के लिए तैयार नहीं। उन्हें जन-जातियाँ कह कर हिंदू-समाज से पृथक माना गया है। पृथकतावादियों का कहना है कि वे लोग वृक्षों, पाषाणों, सर्पों इत्यादि की पूजा करते हैं। इसलिए वे हिंदू नहीं हैं। हिंदू के संबध में जिसको पूर्ण अज्ञान होगा, ऐसा बुद्धिहीन मनुष्य ही यह कहेगा कि वे हिंदू नहीं हैं। हम हिंदू क्या वृक्ष की पूजा नहीं करते? अपने यहाँ तुलसी, बिल्व, पीपल आदि वंदनीय और पूजा करने योग्य वृक्ष हैं या नहीं? यहाँ तक कि भगवद्‌गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं को 'अश्वत्थ', याने पीपल बताया। नाग और सर्प भी बताया। अनेक प्रकार के पशु-पक्षी के रूप में भी बताया। पर्वत, नदी इत्यादि भी बताया। जहाँ-जहाँ श्रेष्ठत्व प्रकट होता है, वह सब भगवानप्रदत्त है —

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्।।
(गीता अध्याय १०, श्लोक ४१)

उन्होंने कहा कि इन सबमें उनका वास्तव्य है। इन सभी की हम पूजा करते हैं। नाग की पूजा अपने देशभर में प्रचलित है। अपने सुदूर दक्षिण में तो 'सुब्रह्मण्यम् स्वामी' इस नाते से केवल नाग के लिए ही बडे-बडे मंदिर हैं। वहाँ पर उत्कृष्ट रीति से भक्ति और पूजा होती है। ये सब करनेवाले 'प्रकृति पूजक' नहीं हैं, उसी प्रकार पहाडों में रहनेवाले हमारे खासी, जयंतिया आदि वनवासी बंधु भी 'प्रकृति पूजक' नहीं हैं। यह नितांत झूठा तर्क है।

परंतु दुर्भाग्य अपना ऐसा है कि इस प्रकार की बातें कर हिंदू-समाज की शक्तियों को क्षीण करने का जो प्रयत्न अंग्रेजों ने किया था, वही प्रयत्न अब हिंदू-समाज में उत्पन्न हुए राजनैतिक क्षेत्र के कर्णधार कर रहे हैं।

मुस्लिमबहुल प्रदेश बनाने के प्रयास

अपने इस प्रदेश में यह भी दिखाई देता है कि पूर्वी पाकिस्तान में

इस्लाम-मतानुयायी लोगों की बहुसंख्या है। वे बहुत बड़ी संख्या में अपने इस प्रदेश में अवैध रूप से आकर बसने का प्रयत्न कर रहे हैं। आज ही नहीं तो पिछले बीस-बाईस वर्षों से उनका यह प्रयत्न लगातार चल रहा है।

अभी कुछ दिनों पूर्व मुझे कुछ प्रमुख लोग मिले थे। उन्होंने कहा कि आजकल केंद्रीय शासन में जो इस्लाम-मतानुयायी सज्जन बैठे हुए हैं, उनकी प्रेरणा से यहाँ पर पूर्वी पाकिस्तान से बहुसंख्या में मुसलमान आकर बस रहे हैं, जिससे इस प्रदेश में मुस्लिम-बहुमत प्रस्थापित कर वे अपने प्रभुत्व का राज्य उत्पन्न करने का प्रयत्न कर सकें। हमें इस संकट को समझना चाहिए।

बंधुत्व-भाव का निर्माण परमावश्यक

इन संकटों के निराकरण का उपाय तो वास्तव में सरल है। हम सब हिंदू, चाहे किसी भी बोली के बोलने वाले क्यों न हों, आजकल की शिक्षा-प्रणाली के अनुसार चाहे पढ़े-लिखे हों या न हों, अपना यह 'हिंदू' समाज बनता है ऐसी भावना जागृत करें। शब्दों को मात्र बोलने से काम नहीं होता। इसलिए उनके अनुसार आचरण और व्यवहार करना और इस व्यवहार में से अपना एकत्व प्रस्फुटित होने के लिए निरंतर प्रबल प्रयास करने की आवश्यकता है।

अपने वन्य क्षेत्रों में जाकर, गिरिकंदराओं में रहनेवाले अपने बंधुओं के पास पहुँचकर, उनको अपनी जीविका सुधारने के लिए सब प्रकार से प्रशिक्षित करना, उन्हें भिन्न-भिन्न साधन उपलब्ध करा देना, उनको अपना इहलोक का जीवन अधिक सुखी बनाने के लिए आवश्यक साधन प्राप्त करा देना और उसके साथ-साथ भगवान की शुद्धभक्ति के आधार पर अपने हिंदू-धर्म का अभिमान जागृत कर एकात्मता का बोध भरने, के लिए प्रत्यक्ष परिश्रम करने की आवश्यकता है। दूसरा कोई करेगा, ऐसा कहने से नहीं चलेगा।

हममें से अनेक बंधुओं को सोचना चाहिए कि विश्व हिंदू परिषद् की योजना से नित्य जाऊँगा। प्रतिदिन न जा सका तो सप्ताह में एक दिन जाऊँगा। इन सब बंधुओं के साथ रहूँगा, उनके साथ रहते समय सच्चे बंधुभाव से रहूँगा। उनकी कठिनाइयाँ समझूँगा, उनकी सहायता करूँगा। उन्हें शिक्षा दूँगा। धर्म की ओर उनकी श्रद्धा जागृत करूँगा। उनके साथ भोजन करूँगा। भगवान का नाम-कीर्तन करूँगा, इस निश्चय के अनुरूप

अपने जीवन की योजना बनाना अपने लिए आवश्यक है।

अपना कार्य ईश्वरीय कार्य है

ऐसे कामों में धन भी लगता है। जब अनेक प्रकार की दुःस्थिति में पडे हुए अपने बंधुओं को सुस्थिति में लाने का प्रयत्न करना है, तो उनको भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा और उपजीविका के साधन उपलब्ध कराने के लिए धन की आवश्यकता पडेगी। अतः हम लोगों को इस संबंध में धन देने का संकल्प करना चाहिए। इसके लिए हम लोग जो धन देते हैं, वह भगवान के पास पहुँचता है, क्योंकि यह भगवान का ही कार्य है।

यह कार्य अपने सब बंधुओं को श्रेष्ठ तथा उत्तम बनाने के लिए है, पर अपने अंदर दातृत्व का अभिमान करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करना कर्तव्य है– इस भावना से धन का विनियोग करने के लिए हमें आगे बढना चाहिए। धन का लाभ तो उसके विनियोग में है। केवल अपने सुख तथा उपभोग के लिए उसका विनियोग करना अति निकृष्टता है। संपूर्ण समाज की भलाई, धर्म की रक्षा तथा अपने समाज के श्रेष्ठ जीवन के निर्माण के लिए धन का विनियोग तथा सदुपयोग होना चाहिए।

जब तक उसको खर्च नहीं करेंगे, तब तक उसका कोई उपयोग नहीं। अपने पास का धन वस्तुतः समाज का ही है। समाज की भलाई में उसका विनियोग करने के लिए ही भगवान ने यह दिया है– इस विश्वास से कि उसी भगवान के भिन्न-भिन्न रूप जो अपने समाज-बंधु हैं, उनकी सहायता में यह खर्च होगा। ऐसी श्रद्धा हृदय में रखकर हमें उसका विनियोग करने के लिए सिद्ध रहना चाहिए।

हम लोग देखते हैं कि अनेक विधर्मी विदेशों से आकर कितने परिश्रम से काम करते हैं। इसमें उसका स्वार्थ भले ही होगा, स्वार्थ से प्रेरणा लेकर वे काम करते भी होंगे, परंतु वे भिन्न-भिन्न देशों से आते हैं और दुर्गम अरण्य में जाकर वहाँ छोटा-सा मकान बनाकर रहते हैं। वहाँ के रहनेवाले लोगों से मिलते-जुलते हैं। उनकी भाषा सीखते हैं। वहाँ का रहन-सहन देखते हैं। उनके साथ सहानुभूति का व्यवहार करते हैं। फिर उसके आधार पर उनका धर्म-परिवर्तन करवाकर अपनी संख्या, अपनी शक्ति बढाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार उनके जीवन में कितना परिश्रम है, इसका विचार करें। यदि हम पाँच-दस वर्षों में सम्मेलन में एकाध बार चले आएँगे, केवल प्रस्ताव पारित करेंगे, शोक व्यक्त करेंगे,

अपने इन बधुओं के लिए चिंता प्रकट करेंगे और फिर अपने-अपने घर वापस जाकर बैठ जाएगे, तो इससे भलाई कदापि नहीं होगी। 'केवल प्रस्ताव और काम कुछ नहीं' का विचार युक्तिसगत नहीं है। इसलिए इस सबध में अधिक विवरण न देते हुए मैं इतना ही कहूँगा कि हमलोग परिश्रम से प्रयत्न करने के लिए सिद्ध हों।

अगली जनगणना मे अपने को हिंदू लिखाएँ

इसी सबध में एक बात और प्रार्थना-स्वरूप मैं बोल रहा हूँ। कुछ दिन के बाद जनगणना होनेवाली है। हमें बहुत ही सतर्क रहना पड़ेगा, क्योंकि यह तो अनुभव की बात है कि जनगणना में झूठे आँकडे देकर अपनी सख्या बढाने का काम इस्लाम-मतानुयायियों ने किया है। पिछली जनगणना के समय उन्होंने ऐसा किया है। हमलोगों ने देखा कि बगाल में कुछ वर्ष पहले हिंदू की तुलना में उनकी सख्या कम थी, किंतु दस वर्ष के बाद हुई जनगणना में उनकी सख्या अधिक हो गई और हिंदू की कम, क्योंकि हिंदू ने जनगणना के बारे मे उपेक्षावृत्ति धारण की। उस समय जो राजनैतिक परिस्थिति थी, उसमें अपने नेताओं ने जनगणना का बहिष्कार करने के लिए कहा। इसलिए हिंदुओं ने अपने नाम नहीं लिखाए, सख्या नहीं लिखाई। किंतु मुसलमानों ने अपने घर में चार आदमी की जगह चौदह आदमी लिखाए और अपनी सख्या बढाई। उनके लिए यह सहज सभव भी हुआ, क्योंकि भिन्न-भिन्न रग के बुरके पहनने से पुरुष भी हों, तो स्त्री का नाम लेकर दस-दस बार अपना नाम लिखा सकता है। नागपुर में एक जनगणना के समय मैं था। उस समय लोगों को सतर्क किया कि 'भाई, देख लेना।' अच्छे दाढी-मूँछवाले, परतु स्त्री का रूप लिए हुए, स्त्री का नाम बताकर अपनी सख्या लिखवाते पकडे गए। यह कोई काल्पनिक बात नहीं बता रहा हूँ। ऐसा हुआ है। फिर से हो सकता है। सब लोगों को बडा सतर्क रहना चाहिए, ताकि कोई भी अपनी सख्या बढा-चढाकर न लिखवा सके।

दूसरी सतर्कता जिस बात की रखनी है, वह यह कि सब स्वय को 'हिंदू' लिखवाएं। भिन्न-भिन्न पथ अथवा पहाडी जातियों का नाम लेकर जनगणना में उपस्थित न हों। कोई खासी हो कोई जयतिया हो, कोई उफना हो, मिकिर हो, नागा हो, कोई भी हो, सब मिलकर अपने को हिंदू' ही लिखाएं। कोई किसी भी मत या पथ का अनुयायी रहे, आखिर सब

छोटे-बडे पथ जिस धर्म-मार्ग के हैं, हम सबका वह मूल धर्म हिंदू ही है। ऐसी बडी सतर्कता रखकर स्वत को एक सगठितरूप में खडा करें।

मैं मुबई गया था। उस समय एक साप्ताहिक में जैन बधुओं से इस बात की अपील करते हुए लेख प्रकाशित हुआ था कि आगामी जनगणना में जैन स्वय को हिंदू न लिखाएँ। केवल जैन लिखाएँ। उस लेख में यह प्रतिपादित किया गया था कि हिंदू धर्म में ब्राह्मणों का वर्चस्व है, इस कारण जैनियों पर उनका प्रभुत्व स्थापित हो जाएगा। इसके बाद जब मेरी भेंट अपने जैन पथ के एक महान नेता से हुई। मैंने उनका ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया। उस जैन मुनि ने भी मुझे कहा कि जो लोग जैनियों के हिंदू होने से इनकार करते हैं, वे वास्तव में समग्र समाज का विनाश करने की बात कर रहे हैं।

इसी प्रकार की विभेदकारी प्रवृत्तियाँ, छोटे-बडे परिमाण में अपने इस विशाल हिंदू-समाज के विभिन्न पथ-उपपथों में दिखाई दे रही हैं। इस सत्य को ओझल करने का प्रयत्न किया जा रहा है कि अपने इस विशाल देश में जैन, सिख, बौद्ध, शैव, शाक्त, लिगायत, वैष्णव इत्यादि जितने पथ और मार्ग हैं, यदि पथों और क्षेत्रीय आधार पर विभक्त होने लगे, तो हमारा राष्ट्रजीवन सकट में पड जाएगा।

भारत का राष्ट्रजीवन हिंदू जीवन है। इस सत्य का विस्मरण कर यदि हम छोटे-छोटे अल्पसख्यक गुटों में विभाजित होते हैं, तो अल्पसख्यक गुटों की भीड राष्ट्रभाव बनाए रखने में असमर्थ हो जाएगी। इस देश में यदि अल्पसख्यकों के आधार पर विचार किया जाने लगा, तो मुसलमान और ईसाई समाज अल्पसख्यकों की भीड में बडा गुट होंगे तथा वे सबसे बडे अल्पसख्यक गुट के नाते अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र में आधिपत्य स्थापित करने की स्थिति में आ जाएँगे।

मैं तो इस नए बने हुए मेघालय राज्य में अपने सब बधुओं से प्रार्थना करूँगा कि जितने अपने पहाडी या वन्य क्षेत्र में रहने वाले बधु हैं, वे सब हिन्दू के नाते फिर एकत्रित हों। अपना नेतृत्व खडा करें। अग्रेजों के राज्यकाल से हिदुओं को हिदुओं के ही विरुद्ध खडे करके हमें विभाजित करने का जो षड्यत्र चला आ रहा है, जिसके कारण अल्पसख्यक होकर भी ईसाई वहाँ हावी हुए हैं उस षड्यत्र को चूर-चूर करके इस प्रदेश के सूत्र अपने हाथों में ग्रहण करें। अपने इस पहाडी क्षेत्र में विपुल सख्या में

बुद्धिमान लोग हैं, योग्य और शुद्ध चारित्र्यवाले उत्तम लोग हैं, उनको अपने हाथ में बागडोर लेने के लिए एकत्र होना चाहिए।

हम सब भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से प्रतिनिधि के रूप में यहाँ आए हैं। पहाडी क्षेत्र से भी अच्छे बुद्धिमान प्रतिनिधि आए हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार से धर्मजागृति करते हुए सब प्रकार की विकट परिस्थिति में भी लोगों के अत करण का शुद्ध हिंदु भाव सबल बनाकर रखनेवाले श्रेष्ठ कार्यकर्ता यहाँ आए हैं। इन सब लोगों की एक सूत्रबद्ध एकता इस सपूर्ण क्षेत्र में यदि निर्माण होती है, तो हम देख सकेंगे कि आज की पूर्णत जटिल परिस्थिति को बदलकर एक अत्यत शक्तिसपन्न समाज के नाते हम यहाँ पर खडे रह सकेंगे। सब प्रकार की अहिंदू शक्तियाँ पराभूत होंगी और भारतमाता का सबल अग, इस नाते से अपना यह प्रदेश खडा हो सकेगा।

२८ मदिर प्रेरणा के अजस्र स्रोत

(इग्लैंड में रहने वाले हिंदुओं ने लदन में श्रीकृष्ण मदिर का निर्माण किया था। सन् १९७० की श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के शुभ दिन भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा का आयोजन किया गया था। इस अवसर पर लदन भेजा गया श्री गुरुजी का ध्वनि-मुद्रित संदेश)

आप सब बधु जो इस समय इग्लैंड में रहते हैं, ने मिलकर भगवान श्रीकृष्ण का एक मदिर निर्माण करने का सकल्प कर उसे पूर्ण करने की सफल चेष्टा की है। आगामी श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के पवित्र दिन वहाँ भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिमा की स्थापना भी यथाविधि आप लोग कर रहे हैं, यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई।

हम लोगों को अपने धर्म के आधार पर सबके एकत्रीकरण के लिए एक मध्यवर्ती श्रद्धा का स्थान आवश्यक ही है। ऐसा श्रद्धा का स्थान इस मदिर के रूप में यहाँ प्रकट हो रहा है, यह बहुत ही हर्ष का विषय है।

भगवान श्रीकृष्ण का योगदान

अति प्राचीनकाल से अभी तक चलती आई ... जि

श्रेष्ठ विभूतियों का अपने जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव हुआ, उनमें भगवान श्रीकृष्ण का योगदान सभी क्षेत्रों में सब लोग मानेंगे, ऐसा विश्वास मुझे है। भगवत्-प्राप्ति के लिए विशुद्ध प्रेम और उसके साथ ही एक परिपूर्ण तत्त्वज्ञान का आविष्कार उन्होंने किया है। इस जीवन में व्यक्ति को किस प्रकार से रहना चाहिए, किन गुणों की उपासना करनी चाहिए और अपने सब प्रकार के कर्तव्यों को निभाते हुए भी भगवत्-प्राप्ति किस प्रकार से करनी चाहिए, जीवन के सब पहलुओं का ऐसा सांगोपांग उपदेश करनेवाला दूसरा कोई श्रेष्ठ पुरुष संसार भर में हमें देखने के लिए नहीं मिलेगा। इसीलिए उनको जगद्गुरु के नाम से संबोधित किया गया।

उनका उपदेश भिन्न-भिन्न प्रकार से हम लोगों के सम्मुख है। श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में या श्रीमद्भागवत में उनके चरित्र द्वारा और अन्यान्य प्रसंगों पर श्रीमद्महाभारत में उनके उपदेश अपने सामने हैं। उनका हम लोग सर्वसाधारण रीति से अध्ययन करेंगे तो हमें दिखाई देगा कि प्रत्येक स्थिति के मनुष्य को जीवन के प्रत्येक प्रसंग पर योग्य मार्गदर्शन करने और उसकी सब समस्याओं का समाधान करने की क्षमता उनके उपदेश में है। निकृष्ट से निकृष्ट जीवन व्यतीत करनेवाले के लिए भी ईश्वर-प्राप्ति से अपने जीवन को कृतकृत्य करने का आश्वासन उनके उपदेशों में है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।।
(गीता अध्याय ९, श्लोक ३०)

इस प्रकार का महान आश्वासन और उसके साथ स्वयं अपनी प्रतिज्ञा कि मैं उसका उद्धार करूँगा, अन्यत्र मिलना अति कठिन है। ऐसे इस महान श्रेष्ठ जगद्गुरु का जीवन जीवमात्र के कल्याण के लिए उसकी मूर्ति अपने सामने रखकर हम सब लोग जीवन को आदर्श बनाने के लिए प्रयत्न करते हुए एकत्रित होने का संकल्प कर रहे हैं। यह एक बहुत ही भाग्य का विषय है।

श्रद्धास्थान स्फूर्ति-केंद्र बने

इसके साथ ही हम लोगों को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि हम लोग एकत्रित हों, तो केवल कुछ लोगों का एक सामूहिकीकरण मात्र न हो। हम लोग अपने इस भारत की प्राचीन परंपरा, जो कि अपनी हिन्दू

धर्म-संस्कृति की परंपरा है, को माननेवाले हैं, इस नाते से एकत्रित हो गये हैं। इस प्रकार से हम लोगों को अपना जीवन वहाँ ऐसी रीति से चलाना चाहिए कि जिससे अपनी परंपरा क्या है, अपने गुण कैसे हैं, संपूर्ण समाज के मानव को किस प्रकार के आदर्श से अनुप्राणित करने के लिए प्रयत्नशील हैं, आदि सब बातें अपने दिन-प्रतिदिन के व्यवहार से सबके ध्यान में प्रत्यक्ष रूप से आ सकें।

यह कभी नहीं भुलाना चाहिए कि जगत् में कहीं पर भी अपना व्यक्ति कभी जाता है, तो वह एक प्रकार से अपने देश का, राष्ट्र का, धर्म का, संस्कृति का समाज का प्रतिनिधि बनकर जाता है। उसके व्यवहार से ही अपने समाज की प्रतिष्ठा संसार में होती है। यदि हम लोगों का व्यवहार अनिष्ट हो, हम लोगों का व्यवहार यदि अपने तत्त्वज्ञान के विपरीत हो, हम लोगों का व्यवहार केवल परानुकरणी मात्र हो और उसमें किसी भी प्रकार का स्वत्व, स्वाभिमान न दिखाई दें, तो उससे संपूर्ण देश और परंपरा के प्रति लोगों के मन की सद्भावना नष्ट होती है।

इस दृष्टि से यदि हम लोग विचार करें तो समझ सकेंगे कि अपने राष्ट्र के सम्मान को ऊँचा उठाना या नीचे गिराना हमारे व्यवहार पर ही अवलंबित है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि अपने राष्ट्र का और खुद का सम्मान जिस प्रकार से हो, उसी प्रकार का व्यवहार करे। समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक श्रद्धा के केंद्रस्थल से हम लोग स्फुरण प्राप्त करें और एक आदर्श हिन्दूसमाज इस नाते से उस देश में उपस्थित होकर वहाँ के लोगों के अंदर अपने धर्म के प्रति, तत्त्वज्ञान के प्रति श्रद्धा जगाकर, उनमे से भी अनेक सद्भावना संपन्न लोगों को अपना अनुयायी बनाने का हम लोगों को सार्थक और सफल प्रयत्न करना चाहिए। यह पवित्र स्थान सब लोगो के लिए स्फूर्तिकेंद्र बनकर अपने सब लोगो की ओर से अधिकाधिक मात्रा में हिंदू धर्म-संस्कृति के गौरव का कार्य यशस्विता से करा ले, यही भगवत्-चरणो में प्रार्थना करता हूँ।

२६ नागरिक अभिनदन

(शल्यक्रिया-चिकित्सा के बाद दिल्ली पधारने पर पजाब विश्वविद्यालय के पूर्व उपकुलपति दीवान आनदकुमार की अध्यक्षता में गठित समिति की ओर से २३ नवबर १६७० को श्री गुरुजी का अभिनदन किया गया। उस समय उनके द्वारा प्रकट किए गए विचार)

वैसे तो मैं प्रतिवर्ष दिल्ली आता ही हूँ, इसलिए मेरे स्वागत-आयोजन की कोई आवश्यकता नहीं थी, परतु पिछले कुछ माह से मेरे स्वास्थ्य के सबध में कुछ चर्चाएँ चल पडी थीं। उसी पार्श्वभूमि में आज का यह आयोजन है।

अभी जैसा आदरणीय दीवान साहब ने कहा, समाचारपत्रों में ऐसे समाचार लोगों ने पढे कि मेरा शरीर बहुत टूट चुका है, मुझे बडी भयकर बीमारी हो चुकी है। इस बीमारी के बाद कोई बचता नहीं। इसलिए मेरे बचने की कोई आशा नहीं है। इसके आगे लोगों ने अपनी-अपनी कल्पना और सार्वजनिक कामों में सामान्यत होनेवाली अनुभूति के आधार पर यह भी कह डाला कि मेरे अनुयायियों में खींचातानी चल रही है। सरसघचालक का स्थान कौन ग्रहण करेगा, अखाडे में कौन-कौन उतरे हैं, इस सबध में कई नाम भी प्रसारित किए गए। उन नामों में से एक अटलविहारी जी यहाँ उपस्थित हैं। खींचातानी में तो नहीं, परतु खींचातानी का समर्थन करनेवालों में उन्हें जरूर बताया जाता है। वृत्तपत्र में लिखा है कि इनका किसी को समर्थन, तो लाला हसराज जी का किसी तीसरे के लिए समर्थन है। इस प्रकार की कहानियाँ गढकर प्रसारित की गई। अब यह तो साफ है कि ऐसे लोगों को बहुत निराश होना पडा। एक तो इसलिए कि बीमारी मुझे नहीं खा सकी और दूसरा यह कि अपने सघ के कार्य में खींचातानी होती ही नहीं। खींचातानी न होने का कारण भी स्पष्ट है। यहाँ कोई सुख नहीं मिलता, सुख का यह स्थान नहीं है। यह स्थान बडा कष्ट देनेवाला है। इस स्थान पर आने के लिए ऐहिक जीवन के सुखों को छोड देने में ही सुख का अनुभव करना पडता है। तभी यह काम हो सकता है, अन्यथा नहीं। इस दृष्टि से मैं अत्यत सुखी हूँ। पिछले ३० वर्षो से अधिक समय तक यह कार्य करते हुए सारे देश में घूम चुका हूँ। कोई मानसिक या शारीरिक कष्ट

धर्म-सस्कृति की परपरा है, को
रहे हैं। इस प्रकार से हम लोगों
चलाना चाहिए कि जिससे अपनी
सपूर्ण समाज के मानव को किस
के लिए प्रयत्नशील हैं, आदि सब
से सबके ध्यान में प्रत्यक्ष रूप से

यह कभी नहीं भूलना चा
व्यक्ति कभी जाता है, तो वह एक
धर्म का, सस्कृति का, समाज का
व्यवहार से ही अपने समाज की
लोगों का व्यवहार अनिष्ट हो,
तत्त्वज्ञान के विपरीत हो, हम लोगों
हो और उसमें किसी भी प्रकार क
उससे सपूर्ण देश और परपरा के
होती है।

इस दृष्टि से यदि हम लो
अपने राष्ट्र के सम्मान को ऊँचा उ
पर ही अवलबित है। अत प्रत्येक
का और खुद का सम्मान जिस प्र
करे। समाज के धार्मिक और सास्
स्फुरण प्राप्त करें और एक आदर्श
उपस्थित होकर वहाँ के लोगो के
प्रति श्रद्धा जगाकर, उनमे से भी
अपना अनुयायी बनाने का हम
करना चाहिए। यह पवित्र स्थान
अपने सब लोगों की ओर से अधि
गौरव का कार्य यशस्विता से कर
करता हूँ।

आनद से तुम मरने के लिए तैयार हो जाओ। मेरे नागपुर वापस आने पर तुम यहाँ नहीं रहोगे। यह तुम्हारी-हमारी अतिम भेंट है।' वैसा ही हुआ।

मैं भी अपने को वैसा ही कहता हूँ कि हमें डर किस बात का? न जीने का है, न मरने का। मरने का डर तो उसे होगा जिसने स्वार्थ में डूबकर अपना जीवन नष्ट किया हो, अनिष्ट काम किए हों ओर चिता करता हो कि आगे चलकर पता नहीं कि किस प्रकार की सजा भुगतनी होगी। अस्तु! हम किसी बात से डरने के लिए तैयार नहीं। मरने से तो बिलकुल ही नहीं। लोग कहते हैं कि जीने में कष्ट होते हैं। हमारे लिए वे भी नहीं हे। मरना तो अपने लिए आनद की बात है। अपने शास्त्रों में कहा ही है कि जब पुराना कपडा फेंकते हैं और नया पहनते हैं, तब आनद होता है। मृत्यु को भी हम ऐसा ही मानते हैं।

व्यक्तिनिरपेक्ष कार्य

चिता न करने की एक दूसरी बात भी है। अपना यह सघकार्य किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं है। यह ठीक है कि आज इसके प्रमुखस्थान पर मुझे बैठाया गया है। सब लोग काम करते हुए मेरा नाम लेते हैं। सलाह भी करते हैं। यह सब ठीक है, परतु कार्य किसी एक मनुष्य पर निर्भर नहीं है। अपने अनेक कार्यकर्ताओं की जो सम्मिलित शक्ति है, उनकी सामूहिक भावना है, राष्ट्रसेवा के लिए उनके अत करण में जो श्रद्धापूर्ण उमग हे, उसी का फल यह कार्य है, अन्यथा एक मनुष्य क्या करेगा? इतना बडा काम कोई एक मनुष्य, चाहे कितना ही कर्तृत्ववान क्यों न हो, कर नहीं सकता। आसेतु हिमाचल फैला यह विशाल सगठन खडा करना कोई सरल कार्य नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रकार की जातियाँ, भिन्न-भिन्न भाषाएँ, अनेक प्रकार के स्वभाव और रुचियाँ अपने देश में विद्यमान हैं। कई बार इनमें टकराव होता है, जिससे बडी-बडी सस्थाओं के टूटने का सकट आ जाता है। ऐसा सब-कुछ होते हुए भी सब लोगों में स्नेह और आत्मीयता का सूत्र स्थापित करना और राष्ट्र की सेवा के लिए उन्हें सगठित शक्ति के रूप में खडा करना, किसी एक मनुष्य के बस की बात नहीं। ऐसे विशाल कार्य के लिए अगणित कार्यकर्ता अपने जीवन का उत्सर्ग करते हुए लगते हैं, तभी यह कार्य होता हे। आज कोई प्रात अछूता नहीं है। प्रत्येक जिले और बिल्कुल दुर्गम पहाडी प्रदेश में भी शाखाएँ चल रहीं हैं। ऐसी बात बिलकुल नहीं कि इतने विस्तृत कार्य को मैं चलाता हूँ।

मुझे कभी रोक नहीं पाया। इस बार जरूर मुझे मुम्बई में रुकना पडा। इसी कारण चिता हो गई अथवा उत्पन्न कर दी गई। परतु अब चिता का कोई कारण नहीं। मुझे भी नहीं और आपको भी नहीं। कुछ समय पूर्व श्री स्वामी चिन्मयानदजी का पत्र मुझे मिला था। उनके उस आशीर्वादरूप पत्र में मुझे लिखा था कि लाखों लोगों की प्रार्थना है, उसके सामने भगवान को झुकना ही पडेगा। भगवान व्याधि का आक्रमण दूर करेंगे और व्याधिमुक्त होकर अपने ईश्वरीय कार्य को करने के लिए फिर से प्रस्तुत हो सकेंगे।

मुझे ऐसा लगता है कि वास्तविक बात ऐसी ही हुई है। इस रोग के उपचार के लिए शल्यक्रिया की गई, तब से अब तक मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। आपरेशन के समय तो बेहोश किया जाता है, परतु होश आने पर भी मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। मैं ऐसा समझता हूँ कि यह ईश्वर की कृपा ही हुई है, अन्यथा शरीर के अदर यह क्षमता नहीं रहती कि शरीर का आठ-नौ इच का हिस्सा काटे जाने के बाद भी कष्ट न हो। मालूम होता है कि भगवान ने ऐसी कुछ योजना बनाकर रखी है कि मुझे न उस समय कष्ट हुआ और न अब हो रहा है। इस प्रकार अनेक लोगों के आशीर्वाद, असख्य लोगों की सहानुभूति, सदिच्छा तथा इस ईश्वरीय कार्य की, जिसे हम कर रहे हैं, अदृश्य रूप से सूक्ष्म जगत में जो क्रिया होती होगी, इन सबके एकत्रित प्रभाव से मुझे यह शक्ति प्राप्त हुई।

लोगों ने कहा कि यह अब अधिक दिन नहीं जी सकेगा। स्वाभाविक है कि यदि किसी को उसके शीघ्र मरने की बात बताई जाए, तो उसे दु ख होता है। पर मैंने सोचा कि मुझे दु ख का कोई कारण नहीं। इस सदर्भ में पद्रह-बीस वर्ष पुरानी एक बात बताता हूँ। नागपुर के एक कार्यकर्ता बीमार हुए। अस्पताल में भर्ती थे। मैं जब-जब नागपुर जाता था उनसे मिला करता था। एक बार ऐसा हुआ कि नागपुर से बाहर जाने के पहले ही मैं उन्हें देखने के लिए गया। उन्हें देखते ही मुझे लगा कि वे अब ज्यादा दिन नहीं बचेंगे। मैंने उनसे पूछा, 'भाई, अब तुम्हें कैसा लगता है?' उन्होंने कहा कि 'औषधि का कोई परिणाम दिखाई नहीं देता।' मैंने कहा, 'तुम्हारा कहना ठीक है, तुम अब ज्यादा दिन के साथी नहीं हो। पर चिता मत करना। हम लोगों ने भगवान की आज्ञा के अनुसार जीवन में ईश्वरस्वरूप समाज की सेवा की है। किसी प्रकार का अपना स्वार्थ नहीं देखा। किसी की बुराई नहीं की। सबके भले की ही चिता की। इतने सत्कर्म अपने साथ हैं। अत मृत्यु-भय का कोई कारण नहीं। बडी शाति और

आनद से तुम मरने के लिए तैयार हो जाओ। मेरे नागपुर वापस आने पर तुम यहाँ नहीं रहोगे। यह तुम्हारी-हमारी अतिम भेंट है।' वैसा ही हुआ।

मैं भी अपने को वैसा ही कहता हूँ कि हमें डर किस बात का? न जीने का है, न मरने का। मरने का डर तो उसे होगा जिसने स्वार्थ में डूबकर अपना जीवन नष्ट किया हो, अनिष्ट काम किए हों और चिता करता हो कि आगे चलकर पता नहीं कि किस प्रकार की सजा भुगतनी होगी। अस्तु! हम किसी बात से डरने के लिए तैयार नहीं। मरने से तो बिलकुल ही नहीं। लोग कहते हैं कि जीने में कष्ट होते हैं। हमारे लिए वे भी नहीं है। मरना तो अपने लिए आनद की बात है। अपने शास्त्रों में कहा ही है कि जब पुराना कपडा फेंकते हैं और नया पहनते हैं, तब आनद होता है। मृत्यु को भी हम ऐसा ही मानते हैं।

व्यक्तिनिरपेक्ष कार्य

चिता न करने की एक दूसरी बात भी है। अपना यह सघकार्य किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं है। यह ठीक है कि आज इसके प्रमुखस्थान पर मुझे बैठाया गया है। सब लोग काम करते हुए मेरा नाम लेते हैं। सलाह भी करते हैं। यह सब ठीक है, परतु कार्य किसी एक मनुष्य पर निर्भर नहीं है। अपने अनेक कार्यकर्ताओं की जो सम्मिलित शक्ति है, उनकी सामूहिक भावना है, राष्ट्रसेवा के लिए उनके अत करण में जो श्रद्धापूर्ण उमग है, उसी का फल यह कार्य है, अन्यथा एक मनुष्य क्या करेगा? इतना बडा काम कोई एक मनुष्य, चाहे कितना ही कर्तृत्ववान क्यों न हो, कर नहीं सकता। आसेतु हिमाचल फैला यह विशाल सगठन खडा करना कोई सरल कार्य नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रकार की जातियाँ, भिन्न-भिन्न भाषाएँ, अनेक प्रकार के स्वभाव और रुचियाँ अपने देश में विद्यमान हैं। कई बार इनमें टकराव होता है, जिससे बडी-बडी सस्थाओं के टूटने का सकट आ जाता है। ऐसा सब-कुछ होते हुए भी सब लोगों में स्नेह और आत्मीयता का सूत्र स्थापित करना और राष्ट्र की सेवा के लिए उन्हें सगठित शक्ति के रूप में खडा करना, किसी एक मनुष्य के बस की बात नहीं। ऐसे विशाल कार्य के लिए अगणित कार्यकर्ता अपने जीवन का उत्सर्ग करते हुए लगते हैं, तभी यह कार्य होता है। आज कोई प्रात अछूता नहीं है। प्रत्येक जिले और बिल्कुल दुर्गम पहाडी प्रदेश में भी शाखाएँ चल रहीं हैं। ऐसी बात बिलकुल नहीं कि इतने विस्तृत कार्य को मैं चलाता हूँ।

इस कार्य में मेरी स्थिति ठीक-ठीक आकने योग्य एक कथा का मुझे स्मरण हो रहा है। एक ऊँट जा रहा था। सवार ने उसके नाक में बँधी हुई रस्सी को हाथ से छोड दिया था। इसलिए रस्सी पीछे-पीछे घिसटती हुई जा रही थी। इसी समय निकट के एक बिल से एक चूहा निकलकर आया। उसने रस्सी का छोर पकड लिया और वह भी ऊँट के साथ चलने लगा। चलते-चलते वह ऊँट को बोला, 'तू इतना बडा है, फिर भी मेरी शक्ति तो देख, मैं तुझे खींचे ले जा रहा हूँ।' सगठन चल रहा है, मैं उसका एक छोर लेकर अभिमान से कहूँ कि मैं ही इसे चला रहा हूँ, तो यह चूहे की बुद्धि होगी, मेरी कदापि नहीं है। इसलिए इसमें किसी प्रकार का श्रेय लेने की कोई बात ही नहीं है। आवश्यकता इतनी ही है, कि हम सब अपनी शक्ति अधिकाधिक मात्रा में लगाते जाएँ। इतना ही अपना काम है।

जहाँ तक मेरा सबध है, मैं आपको इतना ही विश्वास दिला सकता हूँ कि पिछले दस-पद्रह वर्षों में जैसा मेरा स्वास्थ्य था, इस समय उससे अधिक अच्छा है।

卐 卐 卐

३० आत्मविस्मृत अमृतपुत्र

(५ दिसबर, १९७० को पढरपुर में सपन्न विश्व हिंदू परिषद् महाराष्ट्र के प्रातीय सम्मेलन में दिया गया प्रेरणात्मक उद्बोधन)

अपने देश के हिंदू समाज के साथ मेरा जो भी सबध आता है, वह अपने सघ की दृष्टि से ही आता है। सघ राष्ट्रीय है, वह भारत का है और यह है विश्व हिंदू परिषद्। मेरा कार्यक्षेत्र बहुत छोटा है और आप लोगों का बहुत विस्तृत। बडे क्षेत्र में कार्य करनेवालों के सामने मेरा बोलना कुछ धृष्टता होगी। परतु कोई बडा काम भी हो तो वह अनेक छोटे-छोटे कामों के एकत्र होने से ही होता है। महासागर भी अनेक बिदुओं से मिलकर ही होता है। कितनी भी बडी बात हो, उसके अवि[illegible] -छोटे अश होते ही हैं।

हिंदू समाज की स[illegible] के [illegible] सघकार्य करने का मुझे सौभाग्य [illegible] वह सौ[illegible] से भी

सराहनीय है कि समग्र विश्व के कार्य में भी मेरा योगदान है। दूसरी दृष्टि से विचार करें तो अपना हिंदू-समाज, उसका धर्म, उसकी संस्कृति तथा परंपरा सबकी जड़ भारत ही है। इस मूल को कार्यप्रवण रखा तो उसकी शाखा-उपशाखाओं के रूप में जगत् भर फैला हुआ हिंदू-समाज अपना जीवन सुविधा से चला सकेगा। अपने अंदर अपने जीवन-सिद्धांतों को उतार सकेगा। यदि हम लोगों ने देश में अपने स्वतंत्र जीवन को विस्मृत कर इस मूल को खोखला और अकार्यक्षम कर दिया, तो जगत् भर के अपने हिंदू लोगों को एकत्र करने के उद्घोष का कोई लाभ नहीं होगा।

कलह का परिणाम

अपना देश बड़ा है। इसमें प्रांतवाद है। भाषाओं के कारण एक-दूसरे के साथ स्पर्धा, ईर्ष्या इत्यादि चल रही है। जाति की दृष्टि से भी सब जगह संघर्ष चल रहे हैं। कोई अपने को उच्च जाति का मानता है तो कोई दूसरे को नीच जाति की दृष्टि से देखता है। दिन-प्रतिदिन भेद बढ़ते जा रहे हैं। सब प्रकार की सांप्रदायिकता का विरोध करने की घोषणा करनेवाले राजनीति-धुरंधर नेता अपने स्वार्थ के लिए इन छोटे-छोटे भेदों को समाज में बढ़ा रहे हैं। इसका परिणाम जगत् के भिन्न-भिन्न भागों में रहनेवाले अपने हिंदू समाज पर भी हुआ है। मेरे पास अनेक स्थानों से पत्र आते रहते हैं। वहाँ जाकर आए कुछ मित्र भी मिलते हैं। उनसे समाचार मिलता रहता है। स्पष्ट है कि अपने देश में जिस प्रकार का जीवन हम लोग चलाएँगे, उसका प्रभाव जगत् में रहनेवाले अपने हिंदू बंधुओं पर पड़ेगा।

श्रद्धा का जागरण

हम लोगों ने धर्म पर श्रद्धा लगभग छोड़ दी है। पढ़ा-लिखा कहलानेवाला जो समाज है, वह तो कुछ जानता ही नहीं। मैंने एक बार एक लड़की को अपनी माँ को 'मम्मी' कहकर पुकारते हुआ सुना। मैंने कहा 'मिस्र देश में पुराने राजाओं की बड़ी-बड़ी कब्रें हैं। उनको पिरामिड बोलते हैं। उनमें पुराने राजाओं के शवों को मसाला भरकर सुरक्षित रखा गया है। उन मुर्दों को 'मम्मी' बोलते हैं। तुम्हारी माँ तो जीती-जागती और प्रसन्न दिखाई दे रही है। तुम उसको 'मुर्दा' क्यों कहती हो?' इस प्रकार की कई बातें बिना सोचे-समझे ग्रहणकर, हम लोग अपनेपन को भुला रहे हैं। विश्व के अन्य हिस्सों में रहनेवाले हिंदू चाहते हैं कि वहाँ पूजा-पाठ इत्यादि होता

रहे, अपने पुराने सर्वश्रेष्ठ धर्मग्रथों का वाचन-पाठन हो और लोगों को उनसे शिक्षा प्राप्त हो। परतु जब वह भारत की ओर देखता है तो उसे निराशा होती है। जगत् के हिदुओं को एकत्रित करने के लिए जब हम खडे हुए हैं, तब स्वय 'हिदू' बनकर रहना अतीव आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक को हिदू-पद्धति के अनुसार आचरण करना होगा।

यदि अपने मन में अपने परपरागत आचारों के सबध में उपेक्षा का विचार आ जाए, तो वह विचार जीवन की सभी बातों तक प्रवेश कर सकता है। चीन और पाकिस्तान ने हमारी भूमि हडप ली है। परतु उसमें क्या है? ऐसा कहनेवाले बडी सख्या में मिलते हैं। वह भी इसी विचार-पद्धति का परिणाम है।

अत अपने अनेकविध आचार-विचार हम लोगों को बडी आस्था और श्रद्धा के साथ अपने जीवन में उतारने चाहिए। हमें नित्य स्मरण रहे कि हम एक अति प्राचीन महान हिदू समाज के अग-प्रत्यग हैं और उसी परपरा को आगे बढाने का दायित्व हमारे ऊपर है। इसी परपरा को आगे बढाने के लिए क्षमता प्राप्त करने के लिए हम अपने आचारों-विचारों का पालन करें।

एकात्मता की भावना का विकास

हिदू पर आघात करने का किसी को साहस भी न हो, इतनी शक्ति हममें होनी चाहिए। इस शक्ति का हमें निर्माण करना है। एकात्मता की भावना हृदय में निर्माण करने से यह शक्ति बढेगी। यहाँ पर अभी जो प्रस्ताव पारित हुआ है, उसमें अपने वनवासी, गिरिवासी आदि बधुओं के सबध में उल्लेख हुआ है। अपने समाज में पूव काल से चार वर्णों की व्यवस्था रही है, परतु बाद में चार वर्णों से काट-छाँट कर सभी वर्णों के कुछ-कुछ लोगों को समाज में से बहिष्कृत करके अपने समाज की बहुत बडी सख्या को धार्मिक, सास्कृतिक तथा ऐहिक जीवन के सर्वसामान्य सुख से भी वचित रखने का अति विचित्र कार्य हुआ है। अपने यहाँ कहते हैं कि एक मनुष्य के दोष के लिए उसे दड देना तो ठीक है, परतु वश-परपरा से वह दड उसका सपूर्ण परिवार सैंकडों वर्षो से भोगता रहे, यह क्या उचित बात है? एक बार धर्मबहिष्कृत सस्कारबहिष्कृत हो जाने पर उसकी सतान को उसी प्रकार का बहिष्कृत जीवन चलाना पडता है। उसके बच्चों को क्यों सस्कारशून्य रहने दें? एक बार उसको सजा मिल गई, तब उसके

वच्चों को सजा देना ठीक नहीं। इसलिए उसके पास जाकर उसे सुयोग्य सस्कार देने का प्रयत्न करें। मान लो कि किसी घर का एक व्यक्ति किसी दुर्धर रोग से पीडित हो जाए तो क्या घर के लोग उसका त्याग करते हैं?

हमारे एक स्वयसेवक मित्र को दुर्भाग्य से कुष्ठ रोग हो गया था। उससे मेरा अच्छा सवध था। दवा-पानी करने के पश्चात् साधारण रूप से वे ठीक हो गए, लेकिन हाथ-पैर टेढे रह गए। उगलियाँ भी टेढी रह गई। उसकी एक लडकी थी। रोग होने के पहले पैदा हुई थी, परतु वह कुष्ठ रोगी की कन्या थी, इसलिए उसके साथ विवाह करने के लिए कोई तैयार नहीं था। मेरी पहचान के कारण वह मेरे घर में आती-जाती रहती थी। मेरी माँ भी उससे प्रेम करती थी। परतु लोग डरते थे। एक तरुण, जिसके सामने इस लडकी से विवाह करने का प्रस्ताव रखा गया था, मेरे परिचय का होने के कारण मेरे पास आया। उसने कहा 'ऐसा प्रस्ताव आया है कि मैं उस लडकी से विवाह करूँ, पर उसके पिता को कुष्ठ रोग हुआ था। मैं उस लडकी के साथ विवाह करूँ या न करूँ?' मैंने कहा 'बेशक कर।' उसने कहा– 'वह रोग मेरे घर में तो नहीं आएगा?' मैंने कहा– 'मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि तुझे कुछ नहीं होगा।' वस्तुत मेरे आशीर्वाद में तो दम नहीं है, परतु उससे उसके हृदय में दम उत्पन्न हुआ। मेरे लिए उतना ही पर्याप्त था। तव उसने अपने माता-पिता से कहा और विवाह हो गया। अव वे वडे आनद से रहते हैं। किसी रोग का कहीं पर भी प्रादुर्भाव नहीं है। सव प्रकार से वे उन्नति पर हैं।

अस्पृश्यता का रोग किसी को शारीरिक होता है, किसी को मानसिक और किसी को आचरण का होता है। उसको समाज से बाहर रखते हैं, ताकि समाज के अन्य लोग उससे भ्रष्ट न हों। परतु उसकी सतान को क्यों बहिष्कृत करें? उस सतानों को सव प्रकार से अच्छे सस्कार देने का प्रयत्न करना चाहिए। वह तो हमने किया नहीं और वश-परपरा से बाहर रहने के कारण समाज से दूर हो गए। इस कारण वे समाज, सस्कृति और धर्म, जिनके आधार पर राष्ट्रजीवन वनता है उससे वचित हो गए। उनका एक अलग समूह बन गया और वे राष्ट्र के अदर एक विरोधी, असतुष्ट 'उपराष्ट्र' के रूप में तैयार हुए यानी शरीर के अदर विप भर गया। मानो कैंसर की गाँठ पड गई।

शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था

जिन्हें गिरिजन, वनवासी कहते हैं, हम उनके पास जाते नहीं। यदि अपनी रक्षा करने का प्रसग आ गया तो हम उनके पास जाकर कहते हैं कि तुम बडे बहादुर हो, अपनी सेना में भरती हो जाओ। अब केवल उनका उपयोग इसी के लिए करना, परतु उनके साथ मनुष्यता का व्यवहार नहीं करना क्या उचित है? इसके लिए अपवाद है– महाराणा प्रताप का। महाराणा प्रताप ने उनके साथ बधुत्व का नाता जोडा था। परतु बाद में इसका ध्यान नहीं रखा गया। सब लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए ही उनका उपयोग किया। यह बडी चिता की बात है। उनको धर्म का बोध नहीं है, कर्म का ज्ञान नहीं है, इसमें अपराध किसका है? यह अपराध हमारा है। असम में जो गिरिवासी रहते हैं, वे गो-मास खाते हैं। हिंदू को यदि यह बताया गया कि वे गो-मास खाते हैं, तो शरीर पर रोंगटे खडे हो जाएगे। कोई कहेगा कि वे कितना भयकर पाप करते हैं। मुझे एक बडे साधुपुरुष ने यही कहा कि वे तो गो-मास खाते हैं, उनको 'हिंदू' कैसे कहेंगे? मैंने कहा– 'वे लोग गोमास क्यों खाते हैं? क्या वे शौक से खाते हैं? उनको दूसरा कुछ खाने के लिए मिलता नहीं, उनको खाना मिले इसके लिए हम लोगों ने कुछ किया नहीं, कोई शिक्षा दी नहीं, कोई उद्योग दिए नहीं। आज ही क्यों, पिछली कुछ शताब्दियों से हमने इस कर्तव्य का पालन नहीं किया।'

वे लोग गो-मास खाते हैं, यह उनका पाप नहीं, हमारा पाप है। उस पाप के भागीदार हम हैं। अनुकूलता होते हुए भी हम उनको शिक्षा-दीक्षा देने के लिए गए नहीं। उन्हें समाज के अच्छे घटक बनाने के लिए किसी ने प्रयत्न किया नहीं। क्या किसी ने उसको बताया है कि यह गौ वदनीय है? क्या किसी ने उनको बताया है कि वे हिन्दू हैं? क्या उनके अत करण में यह प्रेरणा जगाई?

उधर स्थिति यह है कि उनके घर में गाय जैसा दिखनेवाला जो छोटा-सा प्राणी है वह दूध नहीं देता। उससे उन्हें केवल गोबर ही प्राप्त होता है। वह इतना छोटा है कि उसे बकरी कहना ही अधिक ठीक है। ऐसी स्थिति में यदि वह उस प्राणी को खाता है, तो उसे दंड नहीं देना चाहिए। इस के भागीदार तो हम हैं। हम इस दोष को स्वीकार करें और निश्चय करें कि अब हम निजी स्वार्थ को मर्यादित रखकर अपने पाप की शुद्धि और

धन इन सब लोगों को सुशिक्षित-सुसंस्कारित करने के लिए खर्च करेंगे, अन्यथा विदेशी ताकतें इन सब पहाड़ी वंशों का गलत उपयोग कर वहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करेंगी। हमसे उन्हें अलग तोडकर इस राष्ट्रजीवन को संकट में डालने का उनका षड्‌यंत्र चल ही रहा है।

बहुसंख्यक हिंदू समाज का विभाजन

मेघालय में बहुसंख्यक हिंदू समाज विभाजित होकर कई अल्पसंख्यक गुटों में बँट गया और ईसाई सबसे बड़े अल्पसंख्यक गुट के नाते वहाँ प्रभावी हो गए हैं। वास्तव में यही चाल संपूर्ण देश मे खेली जा रही है। हिंदू-समाज को भाषा, वर्ग, पंथ, संप्रदाय और जातियों के छोटे-छोटे गुटों में विभाजित करने का प्रयत्न किया जा रहा है, ताकि मुसलमान और ईसाई सबसे बड़े अल्पसंख्यक गुट की स्थिति में आकर अपना आधिपत्य स्थापित कर सकें। ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर, हरिजन-सनातनी आदि कितने ही प्रकार के झगड़े भड़काने का प्रयत्न विदेशी एजेंट करते रहे हैं।

हमें विचार करना चाहिए कि यदि देश में विदेशी प्रभाव के ऐसे उपराष्ट्र बनने लगे, तो इन वनवासियों में निराशा और विफलता का भाव घर कर जाएगा। समाज में हमें न्याय नहीं मिलता है ऐसा एक अत्यंत करुण वेदना का भाव लेकर वे लोग चलेंगे। वे ईसाई नहीं भी बनें, तो भी उनके हृदय में विरोध का भाव रहेगा। इससे अपने राष्ट्र के संपूर्ण सामर्थ्य में कितनी बड़ी न्यूनता आ जाएगी, इसका हम विचार करें। समाज को सबल बनाने और जगत् भर में उसकी शाखा-पल्लवों को सुसज्जित और संतुष्ट करने के लिए हमें चाहिए कि अपने व्यवहार से ऐसे सभी भेदों को उखाड फेंकें।

समाजको अजेय शक्तिसंपन्न बनाना

हम लोगों को तो दृढ निश्चय करना चाहिए कि परकीय लोगों के आक्रमण को किसी भी प्रकार सफल नहीं होने देंगे। ऐसा उनको मारकर नहीं, अपना कर्तव्य पूर्ण करके करना है। जो अपने सामर्थ्य पर विश्वास करता है, वह दूसरों को बुरा-भला नहीं कहता। वह अपना कर्तव्यपालन करते हुए परकीय आक्रमणों को सब प्रकार से नष्ट करता है। हम लोगों को आत्मीयता के आधार पर जो उपेक्षित बंधु हैं, उन्हें विद्या-ज्ञान तथा ऐहिक ज्ञान की संपूर्ण व्यवस्था पूर्ण करने की दृष्टि से अपने साथ लेकर खड़ा करना है। ऐसे समूहों को ऊँचा उठाना है। सबको अपने साथ लेकर आत्मीयता का एक शुद्ध महान वातावरण निर्माण कर, अपने समाज को

फिर से सुसगठित, प्रखर अनुशासन के अत्यत श्रेष्ठ सूत्र में गूँथे जाने के कारण अभेद्य और अजेय शक्तिसपन्न बनाकर खड़ा करना अपना कर्तव्य है। जिस दिन हम इस प्रकार की शक्ति का आविष्कार कर पाएँगे, उसी दिन जगत् भर में हिंदू का मस्तक ऊँचा उठेगा।

ॐ ॐ ॐ

३१ परिपूर्ण मानव

(प. दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, कानपुर में स्थापित हनुमानजी की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा २२ फरवरी १९७२ को हुई थी। उक्त अवसर पर आयोजित समारोह में दिया गया उद्बोधन)

भारतीय जीवन-सिद्धातों के सबध में आज फिर से विचार करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई है। इसका कारण बडा स्पष्ट और सरल है। हमें पता है कि जब तक देश में एक परकीय राज्य था तब तक लोगों में अपना देश, अपना राष्ट्र, अपना स्वत्व– यह विचार प्रबल था। लोग यह भी समझते थे कि अपने राष्ट्र के स्वातत्र्य के पुनर्निर्माण के लिए सद्गुणी, निर्दोष, स्वार्थरहित तथा त्याग-तपस्या से भरा हुआ जीवन आवश्यक है। उन दिनों प्रत्येक दल का कार्यकर्ता अत्यत सादगी और त्याग का जीवन व्यतीत करता था। उस समय कोई यह सोच भी नहीं सकता था कि आगे चलकर इस परपरा में कोई विकृति आएगी। सभी के मन में यही विश्वास था कि जब ऐसे श्रेष्ठ चरित्रवान, गुणवान, त्यागी पुरुष अपने देश की बागडोर सँभाल लेंगे, तब सभी प्रकार का उत्कर्ष होगा ओर अपने राष्ट्र की पुनीत परपरा प्रगट होगी, परतु निरकुश सत्ता जीवन में बहुत दोष उत्पन्न कर देती है। लोग कहते हैं कि भिन्न-भिन्न प्रकार के मदों से भी अधिक सकट उत्पन्न करनेवाला सत्ता का मद होता है। आज यह कहा जा सकता है कि जीवन से सादगी, स्वार्थरहितता और त्याग का भाव समाप्त हो गया है। साथ ही साथ सद्गुण भी नष्ट हो गए हैं। सर्वत्र भ्रष्टाचार फैला है। आज जो भी बडे पुरुष विद्यमान हैं, उनमें से अनेक ऐसे हैं, जिनका सार्वजनिक जीवन स्वीकृत आदर्शों से कोसों दूर है।

कई वर्षों के पहले हमने सुना था कि अपने देश में चारित्र्य का

सकट उत्पन्न हो गया है। इसे 'क्रायसिस ऑफ कैरेक्टर' कहते है। परतु चारित्र्य-निर्माण का कार्य कोई नहीं करता। हमने सर्वसामान्य व्यक्ति से यह आशा की कि वह चारित्र्यवान, गुणवान और स्वार्थशून्य बने। शायद इसीलिए छोटे-मोटे भ्रष्टाचार करने पर उसके लिए दड की व्यवस्था भी की गई। लेकिन बहुत बडे-बडे घपले हो रहे हैं, उस ओर कोई देखता भी नहीं। यह बिलकुल विपरीत बात है।

समाज और परिवार की उत्तम धारणा तथा सामान्य जीवन चलाने के लिए जनसामान्य की प्राथमिक आवश्यकताओं की उत्तम रीति से पूर्ति आवश्यक है। ऐहिक सपन्नता की जो आवश्यकता है, उसकी पूर्ति की व्यवस्था समाज की नींव से होनी चाहिए। किसी को किसी से कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए। परतु चारित्र्य-निर्माण का क्रम इससे उल्टा चलता है। समाज में जो लोग उच्च वर्ग के कहे जाते हैं, उनसे सयम, सादगी और सदाचार का जीवन प्रारभ होकर समाज की नींव तक धीरे-धीरे झरे, ऐसा जीवन बनाने की आवश्यकता है। लेकिन दिखाई यह देता है कि ऐश-आराम व सपन्नता का लाभ उच्च वर्ग के लोग उठा रहे है और चरित्र-सपन्नता की अपेक्षा नींव के पास बैठे सामान्य मनुष्य से की जा रही है। यह बिलकुल उल्टी बात है। इससे समाज का सच्चा विकास होना, समाज की योग्य धारणा होना सभव नहीं।

परकीय राज्य का दुष्परिणाम

जब परकीय राज्य था, तब अपने स्वत्व के अभिमान के कारण, अपनी परपरा के अनुरूप जीवन बनाने का प्रयत्न चलता था। परतु जैसे ही परकीय राज्य यहाँ से चला गया, वैसे ही उस आघात को दबाकर रखनेवाली सपूर्ण प्रेरणा भी चली गई। हमारा जीवन समूल बदल गया। यह बात तो ठीक है कि जगत् में अन्यान्य लोगों से सबध आया और इस सपर्क का अपने अत करण पर थोडा-बहुत प्रभाव होना ही था। जीवन-प्रणाली का आदान-प्रदान होता है होना भी चाहिए, परतु यहाँ आदान-प्रदान बिलकुल नहीं हुआ। हम तो केवल ग्रहण कर रहे हैं। जो ग्रहण करने के योग्य नहीं है, उसे भी ग्रहण कर रहे हैं। यदि हम अग्रेजों की देशभक्ति की भावना, उनके विशिष्ट चरित्र और कर्मण्यता, कर्तव्यबोध के गुण को ग्रहण करते तो इसमें किसी को कोई शिकायत नहीं होती परतु हमने यह ग्रहण नहीं किया। उनके कुछ अवगुण जरूर ग्रहण किए। और उनके कारण

अपने स्वत्व का विरोध करना प्रारम्भ किया। ये सब बातें बड़ी द्रुतगति से अपने संपूर्ण समाज को परिवर्तित कर रही हैं। रहन-सहन, चरित्र-निर्माण और कर्तव्यबोध – सभी दृष्टियों से यह परिवर्तन दोषपूर्ण है। ऐसी स्थिति में हमें अपने स्वत्व का फिर से बोध कराने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है।

परंतु स्वत्व का बोध कराना इतना सरल नहीं है। इसमें अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। एक बड़ी कठिनाई शिक्षा-पद्धति है। शिक्षा का यह स्वरूप बनानेवाले उस धूर्त अंग्रेज पुरुष ने कहा था– 'यहाँ काले रंग के अंग्रेज बनेंगे।' आज वैसे बने भी हैं। ऐसे लोगों को अपना कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। यदि कोई कहे कि हमारे यहाँ जीवन का बहुत बड़ा सिद्धांत है जो समग्र मानव के लिए उपकारक है, तो अपना अच्छा-पढ़ा लिखा, अगुवाई की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति भी मानने को तैयार नहीं होता। यह तो ईश्वर की कृपा है कि कभी-कभी प्रसंग-विशेष के कारण अपने नेतागण यह बोल जाते हैं कि हमारा हजारों वर्षों का जीवन है। हमारी श्रेष्ठ धरोहर है। परंतु यह बोलने तक ही सीमित रहता है। शब्द मात्र रहते हैं, उनके पीछे कोई भाव या उन विचारों के उज्ज्वल स्वरूप को सबके सामने रखने का निश्चय, उन्हें अपने जीवन में प्रकट करने का प्रयास नहीं होता है।

आजकल धर्म की जो भाषा बोली जाती है, उसका भी कोई अर्थ नहीं है। अंग्रेजी फैशन के कारण यह कहने की पद्धति चल पड़ी है कि 'मैं धर्म पर विश्वास नहीं करता, ईश्वर को नहीं मानता।' इस प्रकार अपने जीवन के मूलाधार ही अस्वीकार करने का फैशन चल पड़ा है। लेकिन जिन्होंने हमारे जीवन पर यह आघात किया है, उनका क्या कोई श्रेष्ठ दर्शन है?

साम्यवाद श्रेष्ठ जीवन-दर्शन नहीं

दर्शन के नाते आज एक बहुचर्चित दर्शन 'साम्यवाद' है। पश्चिम के अन्य जो देश हैं उनके पास भी ऐसा कोई दर्शन नहीं है। सामान्य राजनीति की, प्रजातंत्र की, मानव की समानता की जो घोषणाएँ पहले फ्रांस में हुई थीं, उन्हीं के आधार पर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन चलाने की बात करने के अतिरिक्त उनके पास और कोई सिद्धांत नहीं हैं। यदि कोई कहे कि सभी मानवों में समानता है तो यह बात अपने अनुभव के विरुद्ध जाएगी। कोई भी दो व्यक्ति एक समान नहीं होते। एक माता के दो लड़के भी समान नहीं होते। हाँ, शारीरिक आवश्यकताओं में समानता

हो सकती है। परतु बुद्धि, गुणों और सब प्रकार की शक्तियों में समानता की बात करना अनुभव विरुद्ध होगा।

इस विचार-प्रणाली से ही आगे चलकर साम्यवादियों ने भी समानता निर्माण करने का प्रयत्न किया। इन सब बातों में एक विचारणीय प्रश्न यह भी है कि क्या मनुष्य का जीवन इसी लोक से सबधित है? क्या मनुष्य को केवल भोजन, आवास और मन को सुख-सतोष देनेवाले साधन ही चाहिए? इसी का उत्पादन और वितरण ही क्या उसका अभीष्ट है? पश्चिम के लोकतात्रिक कहलानेवाले और साम्यवादी कहलानेवाले देशो में केवल विकल्प का भेद है, और कुछ नहीं।

अर्थ-काम प्रधान जीवन

मन की विषय-वासना को तुष्ट करनेवाले साधनों को जुटाना और रक्षा के लिए सत्ता को अधिकाधिक प्रबल करना ही आज की अर्थ-काम प्रधान व्यवस्था है। हमारे यहाँ कलियुग का वर्णन आता है। उसका अर्थ इतना ही है कि मनुष्य खाना-पीना, सुख-साधन और विषयोपभोग में ही फँसता चला जाएगा। वर्तमान जीवन को सर्वस्व मानेगा-- ऐसा उसका अर्थ है। भिन्न-भिन्न देशों की दशा को देखने से लगता है कि 'कलि' का यह वणन साधक है। पता नहीं, हमारे पूर्वजों ने किस दूरदृष्टि से इस उपभोग-प्रधान और लोभ को ही आगे रखकर चलनेवाले जीवन को देखा और उसका वर्णन किया।

आज यह सभी जानते हैं कि जीवन अर्थ-काम प्रधान है। अर्थ-प्राप्ति के बाद उसकी रक्षा और उसका सवर्धन आवश्यक हो गया है। आवश्यक इसलिए कि आज तक वासना से कोई सतुष्ट नहीं हुआ। इसलिए अपने यहाँ लोगों ने कहा-- 'न जातुकाम कामानाम् उपभोगेन शाम्यति।' जेसे अग्नि में लकडी डालने से या आहुति देने से अग्नि भडक उठती है, उसी प्रकार वासना-विकार भी भडक उठते हैं। यह हमारा नित्य का अनुभव भी है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के भोग करने के लिए शारीरिक दृष्टि से असमर्थ होने पर भी उन उपभोगों की चाह मन से नहीं जाती। उसकी प्यास बनी रहती हे। इसलिए कई लोगों ने कहा है कि 'क्या करे? हम तो जीर्ण हो गए हैं, लेकिन हमारी तृष्णा अभी योवन पर है-- 'तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा । इसी कारण इन वासनाओं की तुष्टि के लिए अधिकाधिक साधन जुटाना अधिकाधिक सग्रह करना, अपनी भूमि से यदि तृप्ति न हो तो

दूसरे की भूमि पर प्रहार करके उसके धन का अपहरण करना, यही स्वाभाविक रूप से होता है। जगत् में चलनेवाला एक प्रकार का साम्राज्यवाद इसी उपभोग की उद्दाम लालसा का ही परिणाम है। इसी के कारण अन्यान्य देशों पर बलात् अधिकार करने की इच्छा का निर्माण हो रहा है। इस नाते जगत् में कभी शांति प्राप्त होने की आशा नहीं है। मन की इस अशांति का प्रत्यक्ष व्यवहार में प्रकट होना अनिवार्य है।

आसुरी वृत्ति

भगवद्‌गीता के १६वें अध्याय मे दो प्रकार के लोगों का वर्णन किया गया है– एक सत् और दूसरे आसुरी गुणवाले। आज लोग संपत्ति के मद में अन्यान्य देशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा में लगे हैं। यही आसुरी वृत्ति है। इसी का वर्णन सोलहवें अध्याय में हुआ है। इसमें ऐसे लोगों को आसुरी वृत्ति का कहा गया है जो कहते हैं कि मैंने इसको मारा है और अब उसको मारूँगा। मैंने इसका धन छीना है और दूसरों का छीनूँगा। मैं ही बड़ा हूँ, मैं ही दाता हूँ, मेरे समान कोई नहीं है। मैं ही ईश्वर हूँ। पश्चिम के अनेक देशों में गीता के १६वें अध्याय का जीता-जागता स्वरूप दिखाई देता है। वहाँ दैवी-शक्ति और दैवी-संपत्ति देखने को नहीं मिलती।

इस प्रकार के जगत् में से हमें अपने मार्ग का आविष्कार करना है। लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के मार्ग ढूँढने के प्रयत्न किए। अपने धार्मिक आदर्शों के आधार पर जीवन चलाना चाहा, पर उस मार्ग से भी लोगों को संतोष नहीं हुआ, क्योंकि उन धर्मों के भीतर कोई सिद्धांत और तत्त्वज्ञान नहीं है। केवल एक भगवान है और उसका एक पैगंबर है। उनकी धारणा है कि पैगंबर पर विश्वास करो और भगवान से सब प्रकार की करुणा के लिए याचना करो, वह सब पापों को क्षमा कर देगा। लेकिन अर्थ-काम के चक्कर में पड़ा जो मनुष्य ईश्वर को मानता ही नहीं, वह क्षमा क्यों माँगेगा? फिर भी उसे विश्वास करने को कहा जाता है। इस नाते बुद्धिमान व्यक्ति साधारणतः अपने भीतर ऐसी सिद्धता नहीं उत्पन्न कर पाता है। वह विश्वास के लिए बुद्धि का आधार लेता है। बुद्धि को संतुष्ट करके उसके विश्वास को जागृत करना पड़ता है और कहना पड़ता है कि हे पुत्र, विश्वास करो। बुद्धि की तुम्हारी जितनी दौड़ है, वह सब समाप्त हो गई, अब इसके आगे बुद्धि की गति नहीं है। अब शेष बातों पर

विश्वास करो, यह सब बाद में कहा जाता है। परंतु यदि प्रारंभ में ही कह दिया कि विश्वास करो तो बुद्धिमान मनुष्य सोचता है कि यह बात तो मन में बैठती नहीं, क्योंकि जीवन को परिवर्तित करने की इसमें क्षमता नहीं है। इस प्रकार विचार करनेवाले लोग आज दिखाई देते हैं।

यह ठीक है कि अपने यहाँ ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए बड़े-बड़े लोग काम कर रहे हैं। किंतु उनके यहाँ गिरजाघर खाली पड़े हैं, बहुत कम लोग वहाँ जाते हैं। लोगों का विश्वास उठ रहा है। वहाँ जाने से उनके भीतर कोई भावना उत्पन्न नहीं होती। इसलिए कोई ऐसा सिद्धांत देना होगा, जिसके द्वारा केवल अर्थ-काम को आधार मानकर चलनेवाले आसुरी जीवन पर नियंत्रण किया जा सके।

धर्ममय जीवन ही उपाय

अब देखना यह है कि क्या अपने देश और समाज की परंपरा से हमारा कोई पथ-प्रदर्शन होता है? निश्चय ही होता है। प्राचीनकाल के महापुरुषों ने सांगोपांग विवेचन करके कहा है कि केवल अर्थ-काम की उपासना करना पशुवत जीवन है, आसुरी जीवन है, राक्षसी जीवन है, त्याज्य जीवन है।

अर्थ-काम से सर्वथा मुक्त होना असंभव है। उनकी चाह प्रत्येक मनुष्य में थोड़ी-बहुत मात्रा में रहेगी ही। पर उसके द्वारा जीवन में असुरता न आए इसकी उपाय-योजना आवश्यक है। इसी नाते अपने यहाँ लोगों को एक बात यह बताई गई कि वासना कभी संतुष्ट नहीं होती और दूसरी बात यह बताई कि जिन वस्तुओं का संग्रह करके मनुष्य उनसे सुख पाने की अभिलाषा करता है, उन वस्तुओं में सुख देने की किसी प्रकार की कोई क्षमता नहीं है। सुख तो अपने पास है। बाहर से कुछ नहीं मिलता। हम तो अपने अज्ञान के कारण यह बोलते हैं कि अमुक चीज में सुख है, जबकि वास्तविकता यह है कि हम उस वस्तु को निमित्त बनाकर अपने ही अंदर के महासागर के सुख को चखते हैं।

'मनुष्यशरीरं सत् चित् सुखम्' याने यह शरीर सत्य है, चिरंतन है, चेतनामय है, अर्थात् सुखमय है। हम अपने भीतर का ही सुख भोगते हैं और बाहर की वस्तु पर उसका आरोपण करते हैं। मनुष्य के जीवन का वास्तविक लक्ष्य अपने भीतर के इसी सुख को पाना है। यही मूल सिद्धांत है जो अपने श्रेष्ठ पुरुषों ने बताया है। सब प्रकार के इहलौकिक बंधन से

मुक्त हो जानेवाला, बाह्य वस्तुओं की कामना से निर्बाध हो जानेवाला ही यह चिरंतन सुख प्राप्त कर पाता है। ऐसा सुख पानेवाले व्यक्ति के सभी बंधन छूट जाते हैं, क्योंकि किसी वस्तु की चाह के कारण उसका मन नहीं दौड़ता। यही बंधनमुक्ति है। यही व्यक्ति का चरम लक्ष्य भी है। किंतु इस लक्ष्य को प्राप्त करने तक उसे इहलोक के सुखों की तृप्ति के लिए कुछ प्रयत्न तो करना ही पड़ेगा। लेकिन यह तृप्ति व्यक्ति को अमर्यादित न कर दे, इसकी उपाय-योजना भी करनी होगी।

इसके लिए हमारे यहाँ एक पुरुषार्थ बताया गया है– धर्म। सुख अनुभव करने के लिए जिस प्रकार व्यक्ति को मानसिक शांति और एकाग्रता चाहिए उसी प्रकार व्यक्ति को अपना जीवन सुरक्षितता से चलाने के लिए एक सुस्थित समाज की आवश्यकता होती है। यदि समाज सुचारु रूप से परस्पर संबद्ध है सब मिलकर एक-दूसरे का कल्याण करने के लिए प्रयत्नशील होने के कारण परस्परानुकूल हैं, तो ऐसे समुदाय में रहकर आश्वस्त जीवन चलाता हुआ व्यक्ति अपने अंदर के चिरंतन सुख की अनुभूति करने के लिए एकाग्र होकर सहज ही प्रयत्नशील हो सकेगा। इसलिए समाज की योग्य व्यवस्था यह धर्म का एक रूप, एक अर्थ है।

हम लोग जानते हैं कि धर्म की जो व्याख्याएँ की गई हैं, उनमें जो सबसे प्रचलित और प्रसिद्ध व्याख्या है उसमें कहा गया है कि जो समाज की धारणा करता है समाज को सुव्यवस्था से रखता है, समाज के सभी प्रकार के लोगों को अपने-अपने कार्यों में लगाता हुआ समग्र समाज के अभ्युदय के लिए, रक्षा के लिए, श्रेष्ठ जीवन के लिए सबके द्वारा परस्पर-पूरकता से कर्म करवाने की जिसके अंदर क्षमता है, वही धर्म है। समाज-धारण की सुस्थिति बनाना धर्म का एक रूप है। दूसरा रूप है मनुष्य को धर्म के अनुसार चलानेवाला। धर्म के बारे में हमारे यहाँ कहा गया है– वेदानुसार चलना या जो कुछ हमारा मूल प्रेरक विचार-संग्रह है, उसके अनुसार चलना और सब प्रकार के सत्य एवं सज्जनता का विचार करना अर्थात् अपने जीवन के गुणों का विकास करना। अपनी आत्मा, अर्थात् चिरंतन सत्य की अनुभूति के लिए, जो श्रेयस्कर लगे, उसके अनुरूप प्रयत्न करते रहना, यह भी धर्म है।

हमें उन गुणों का भी विचार करना है, जिनका आविष्कार करने के लिए प्रयत्नशील होना है। इसके लिए अनेक विवरण दिए गए हैं। हमारे

शास्त्रकारों ने सदाचार के नाम से दस गुण बताए हैं। अपने अदर उन गुणों का विकास हुआ है या नहीं, इसको देखें और यदि कहीं कमी दिखाई दे, तो उसको परिपूर्ण करने का प्रयत्न करें। मन को सयमित कर सुव्यवस्थित जीवन का निर्माण करें। अपने को सब प्रकार के अवगुणों से परावृत्त, पराङ्मुख एव निवृत्त करें। बुद्धि को नियत्रित करें।

अपने भीतर के अनेक गुणावगुणों, विकारों को भली-भाति नियत्रित करके मानसिक सुव्यवस्था का निर्माण करना धर्म का एक महत्त्वपूर्ण अग है। इस धर्म को अपने जीवन का आधार मानकर इसके अनुरूप अर्थ-काम को नियोजित कर और धर्म के सद्गुणसपन्न जीवन का अपने अदर पूरी तरह से आविष्कार करते हुए अतिम लक्ष्य की नित्य उपासना करते हुए चतुर्थ एव अतिम पुरुषार्थ, मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना मनुष्य-जीवन का सपूर्ण स्वरूप है। यही परिपूर्ण मानव की कल्पना है। अर्थ-काम ही जिसके जीवन में है, वह अपूर्ण और विशृखलित मानव है।

चतुर्विध पुरुषार्थ का ज्ञान

आज के अशातिपूर्ण जगत् में मनुष्य-मनुष्य के बीच बधुता के भाव का जो अभाव दिखाई देता है, उसे समाप्त कर जागतिक शाति की जीवन-व्यवस्था निर्माण करने के लिए इन चार पुरुषार्थों को आधार बनाना होगा, अन्यथा ओर कोई विकल्प नहीं। ससार को इन चारों पुरुषार्थों के चिरतन सत्य का बोध कराने की हमारे अदर क्षमता आनी चाहिए। हमारे पूर्वजों, ऋषियों, महर्षियों ओर मनीषियों ने अपनी अनुभूति से इन चार पुरुषार्थों का ज्ञान रखा है। उसके द्वारा मनुष्य को, अपने परिपूर्ण स्वरूप को प्रकट करने का साधन दिया है। हमारे ऊपर यह दायित्व है कि हम जगत् के यच्चयावत् मानव को अपने उदाहरण और आदर्श से इस सत्य का बोध कराएँ। यह बात जगत् के लिए कल्याणकारी भी है।

इस प्रकार मानव-मानव में भेद न करते हुए सबको एक स्वर से आह्वान करने की क्षमता अपने जीवन की परपरा में है। इस क्षमता को हमें जगत् के कल्याण हेतु अपने भीतर लाना, उसको परिपूर्ण करने की गुण-सपदा अपने भीतर आविष्कृत करना, उसके लिए अपने समाज को सुव्यवस्थित, सूत्रबद्ध, एकात्मक बनाना। उसके भीतर सपूर्ण सत्य और स्वाभिमान का जागरण करके उसको चतुर्विध पुरुषार्थों के परमश्रेष्ठ जीवन का अनुगामी बनाना और उसे सब तरह से प्रशिक्षित करके एक आदर्श



और सर्वोत्तम समाज के रूप में खडा करना आवश्यक है।

अपने इसी विचार-दर्शन की दृष्टि से हम प्रयत्न करें और परानुकरण द्वारा उत्पन्न होनेवाली समस्त आसुरी-सपत्ति का त्याग करने के लिए समाज को प्रोत्साहित करें। साथ ही साथ चतुर्विध पुरुषार्थ की देवी-सपत्ति एव सद्‌गुणयुक्त जीवन का अपने भीतर आविष्कार करने की समग्र समाज को प्रेरणा दें। ऐसी व्यवस्था वनने पर ही हम अपने देश, समाज और विश्व-मानव का कल्याण करने में समर्थ हो सकेंगे। ऐसी व्यवस्था जो अपनी शक्ति और वुद्धि के अनुसार करता है, वह अपने राष्ट्र का उपकारक हे, वह मानवता का एक उत्कृष्ट सेवक है।

३२ समानता और समरसता

(सिद्धपुर, गुजरात में आयोजित विश्व हिदू परिषद् के सम्मेलन मे २२ अक्तूबर १९७२ को दिया गया भाषण)

हम सभी जानते हैं कि विश्व हिदू परिषद् समाज को एक सूत्र में गूँथने का कार्य कर रही है। इसीलिए समाज के सामने उपस्थित समस्याओं पर यहाँ विचार किया जाना हे। अभी कुछ भाषणों में दलित-वर्ग, उपेक्षित-वग जेसे शब्दों के माध्यम से अपने समाज के बहुत बडे वर्ग का उल्लेख किया गया है। अव इस सवध में इतना तो स्पष्ट ही है कि अपने समाज की पिछले कुछ वर्षो से जैसी अवस्था रही, उसके परिणामस्वरूप समाज का वहुत वडा बधु-वर्ग व्यावहारिक शिक्षा से वचित रहा है। इसीलिए उसकी अर्थ-उत्पादन की क्षमता कम हो गई ओर उसे दैन्य-दारिद्र्य का सामना करना पड रहा हे। समाज में इस वर्ग के प्रति आदर की भावना भी कम हुई है। पूर्वकाल में इन वधुओं को पूरा सम्मान प्राप्त था। पचायत-व्यवस्था में उनका भी एक प्रतिनिधि रहता था। यह व्यवस्था बहुत प्राचीनकाल से हमारे यहाँ लागू थी। प्रभु रामचद्र जी की राज्यव्यवस्था का भी जो वर्णन है, उसमें चार वर्णो के चार प्रतिनिधि और पॉचवा निषाद, याने अपने इन वनवासी वधुओं का प्रतिनिधि मिलकर पचायत का उल्लेख आता है। इस प्रकार उन्हें सपूर्ण व्यवस्था में अत्यत प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त था। परतु बीच के कालखड में वह व्यवस्था टूट गई।

इन वधुओं का इतिहास में भी बडा तेजस्वी योगदान रहा है। मेवाड की रक्षा के लिए इन वधुओं के पराक्रम का बहुत गौरव-भरा पृष्ठ है। मेवाड में विधर्मियों के आक्रमण के समय धर्मरक्षा के लिए जो गौरवशाली सघर्ष हुआ, उसमें वनों में रहनेवाले ये भील-बधु राजपूतों के साथ खडे हुए। धर्मरक्षक महाप्रतापी सूर्यवशी राणा प्रताप के साथ खडे होकर उन्होंने प्राणों की बाजी लगाई, अनेक कष्ट सहन किए। परतु बाद में उनका यह उज्ज्वल इतिहास हम भूल गए।

इस स्थिति में विश्व हिंदू परिषद् के नाते इन बधुओं के प्रति, जो दलित-उपेक्षित कहलाते हैं, अपना ध्यान आकर्षित होना और वे हमारे समकक्ष आकर खडे हो सकें– ऐसा प्रयत्न करना बिलकुल स्वाभाविक तथा अपेक्षित ही है। परतु यह करते समय एक बात की सावधानी रखनी होगी। कभी-कभी ऐसे प्रयत्नों में जो कृत्रिमता आ जाती है, वह नहीं आनी चाहिए। उनके लिए कुछ विशेष करने का जब प्रयत्न किया जाता है तो उसमें कृत्रिमता झलकने लगती है और इससे उन्हें अपने ही समाज का अग समझने की स्वाभाविकता नष्ट होने लगती है। यह एकता के लिए पोषक नहीं रहती।

सही दृष्टिकोण

महात्मा गाँधी जी ने इनके लिए 'हरिजन' नाम प्रचलित किया। नाम बहुत अच्छा और सरल था। समाज में कुछ लोगों को अलग निकालकर यदि 'हरिजन' नाम दिया तो एकता की बात नहीं रहती। अलग नाम से पृथकता की भावना अधिक बलवती बनती है। मैं उस समय महात्मा जी से मिला था। उनकी सेवा में मैंने निवेदन किया था कि महात्मा जी आपने यह नाम देकर समाज के एक अग को सदा के लिए दूर रखने जैसी व्यवस्था कर दी है। उन्होंने कहा कि भाइ, मेरी इच्छा तो आपको मालूम है। मैं ऐसा कदापि नहीं चाहता। मैंने कहा कि आपका सद्भाव हम लोग जानते हैं। बहुत श्रेष्ठ विचार से आपने ऐसा किया है, यह भी मानते हैं, परतु जो पद्धति आपने अपनाई है, वह कुछ जँचती नहीं। ऐसा लगता है कि इससे भेद अधिक तीव्र होगा और समाज के वास्तविक एकत्रीकरण की क्रिया अवरुद्ध हो जाएगी। उन्होंने कहा कि तुम्हारा कहना भी एक प्रकार से ठीक हो सकता है, परतु प्रयोग कर रहा हूँ। मुझे करने दो। मैंने कहा कि आपको प्रयोग करने से कौन रोक सकता है? हमारे जैसे छोटे

आदमी रोक थोडे ही सकते हैं। आप प्रयोग जरूर कीजिए, परतु हमें इतना आश्वासन दीजिए कि इस प्रयोग से हमारा समाज खड-विखड होकर विनाश के मार्ग पर न जाए।

हम देखते हैं कि महात्मा जी ने बडी प्रामाणिकता और सच्चाई से प्रयोग किया। यहाँ तक कि 'कम्युनल अवार्ड' और 'सेपरेट इलेक्टोरेट', याने पृथक मतदान की बात के विरुद्ध आमरण अनशन भी किया। ईश्वर की कृपा थी कि सब लोग उनका कहना मान गए और उनके प्राण बच गए। इसे मैं ईश्वर की बहुत बडी कृपा मानता हूँ। परतु उनके अत करण की इतनी विशुद्ध भव्य और उदात्त भावना होते हुए भी जो भय उत्पन्न हुआ था कि पृथक नाम से पृथकता बढ जाएगी, दुर्भाग्य से वह सच हुआ। अब तो स्थिति यह है कि पृथकता में ही, पृथकता से सताए जानेवालों को रस निर्माण हो गया है। पृथकता में निहित स्वार्थ निर्माण हो गया है।

अधिकार एव कर्तव्य का तात्पर्य

हरिजनों के एक नेता मुझसे मिले थे। उन्होंने बडे प्रेम से कहा, 'तुम्हारा हिंदू-समाज की एकता का सिद्धात हमको बडा प्रिय है, परतु उसमें हमारा अलग अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अलग अस्तित्व के कारण हमें कुछ सुविधाएँ मिलती हैं। उन्होंने 'राइट्स एड प्रिविलेजेज' शब्द का प्रयोग किया। अपने यहाँ की भाषाओं में 'राइट्स' के लिए पर्यायवाची शब्द नहीं है। क्योंकि हमने कभी राईट्स के लिए लडाइ नहीं की, कर्तव्य के लिए की। हमारे यहाँ का 'अधिकार' शब्द कर्तव्यवाची है। यदि कहा जाए कि ज्ञान देने का ब्राह्मणों को अधिकार है तो इसका अर्थ होता है कि ब्राह्मण को ज्ञान देना ही चाहिए। यदि वह ऐसा न करे तो वह ब्राह्मण के कर्तव्य से पतित हो गया। अत 'राइट्स' के आजकल प्रचलित अर्थ में ही उक्त नेता ने मुझे कहा कि हमारा पृथक अस्तित्व होने के कारण ही हम चुनाव में लोगों पर दबाव डालकर अपने स्वार्थ का रक्षण कर पाते हैं। हिंदू समाज के महासागर में एकरूप होने पर हमारे ये सब 'राइट्स और प्रिविलेजेज' चले जाएँगे। दुर्भाग्य से वे सज्जन आज जीवित नहीं हैं, अन्यथा मैं उनका नाम भी बता देता। मेरा कहना असत्य होता तो वे प्रतिवाद कर पाते, परतु वे आज जीवित नहीं हैं।

इस प्रकार पृथकता बनाए रखने में ही लोगों के स्वार्थ निर्मित हो चुके हैं। ये बातें ऐसे स्तर तक जा पहुँची हैं कि अपनी पृथकता प्रकट करो

के लिए धर्म, सस्कृति और महापुरुषों के जीवन पर सब प्रकार का कीचड उछालने का प्रयत्न किया जाता है।

धर्म का पालन ही मार्ग

इसलिए यह साफ है कि राजनीतिक स्वार्थ की दलदल में फँसे हुए लोग इस खाई को नहीं पाट सकते। वे उसे अधिक गहरा बना सकते हैं। वे समाज में एकात्मता उत्पन्न नहीं कर सकते, समाज को नष्ट करने का उपक्रम जरूर कर सकते हैं। राजनीतिक क्षेत्र के माध्यम से सामाजिक एकता साध्य नहीं हो सकती। यह कार्य तो धार्मिक क्षेत्र द्वारा ही किया जा सकता है। धम, सस्कृति, एक दूसरे के प्रति तादात्म्य, प्रेम और सहकार्य के आधार पर ही हमें यह कार्य करना पडेगा।

'धर्म' कहते ही समाज का एक दूसरा चित्र भी हमारे सामने उपस्थित होता है। अपने देश के धार्मिक क्षेत्र में अनेक पथ और सप्रदाय हैं। दुर्भाग्य यह है कि ऐसी कुछ विचित्र प्रथाएँ प्रचलित हैं कि इनमें आपसी सहयोग तो क्या साधारण मिलन भी बडा कठिन हो गया है। यह बडे सौभाग्य की बात है कि आज हम जहाँ एकत्रित हुए हैं, वहाँ इस सम्मेलन में अच्छे, बडे-बडे श्रेष्ठ पुरुष आए हैं। वे एक साथ एक मच पर बैठे हैं। अपने समाज की हालत देखते हुए कहना चाहिए कि आज यहाँ साथ-साथ बैठना भी एक बहुत बडा पराक्रम हुआ है। मैं एक प्रसग बताता हूँ। अपने यहाँ भिन्न-भिन्न सप्रदाय चलते है। इन सबमें सामजस्य निर्माण करने के उद्देश्य से विश्व हिंदू परिषद् का एक सम्मेलन आयोजित हुआ। उसमें पधारने के लिए निमत्रण देने अपने कार्यकर्ता सप्रदायों के प्रमुखों के पास पहुँचे। एक स्थान पर जब ऐसा निमत्रण दिया तो उन्होंने उसे स्वीकार तो किया, परतु बोले, 'वहाँ बैठने का प्रबध क्या है?' जब कार्यकर्ताओं ने उन्हें बैठने की व्यवस्था की जानकारी दी, तब उन्होंने कहा— 'हम कैसे आ सकेंगे? बाकी सब क्या हमारे साथ बैठेंगे? यह कैसी व्यवस्था कर रहे हो? आखिर हमारी कुछ मर्यादाएँ हैं और उसमें श्रेष्ठ-कनिष्ठत्व है। इसलिए उसके अनुसार प्रबध करो तो हम आएँगे।'

यह बात मेरे ध्यान में लाई गई। मैंने विचार किया कि यह तो बडी विचित्र बात है कि ऐसे व्यक्ति जिन्होंने सर्वसगपरित्याग कर भगवा वस्त्र धारण कर लिया है, वे भी मान-अपमान के क्षुद्र विचार से पीछा नहीं छुडा पाए। इसलिए जब उनसे मिलने का अवसर आया तब मैंने उन्हें प्रणाम

कर कहा, 'महाराज! क्या आपने ऐसा कहा कि कनिष्ठ लोगों के साथ हमें कैसे बैठाते हो?' उन्होंने कहा, 'हॉं! हमने ऐसा कहा।' मैंने उनसे कहा, 'आप यह गेरुआ वस्त्र उतार दें। मैं अपना कुरता देता हूँ, उसे पहन लीजिए। फिर ऐसी बात करें। इस वस्त्र में तो आपकी यह बात सुनने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। मैंने तो कभी चतुर्थाश्रम को स्वीकार नहीं किया। परतु मेरा जीवन तो साधुओं में बीता है। ऐसे महापुरुषों के सान्निध्य में बीता है, जिनके बारे में 'गुरु साक्षात् परब्रह्म' कह सकते हैं। उसके आधार पर मैं कहता हूँ कि आप इस वस्त्र को उतार डालें।'

वे बहुत श्रेष्ठ पुरुष थे। वे नाराज नहीं हुए। एक क्षणभर मेरी ओर देखा और उन्होंने कहा, 'भाई! तेरा कहना ठीक है। हम लोग मठ और महती की मर्यादाएँ सँभालने में ही लगे रहे। हमने अपना सन्यास-धर्म ही छोड दिया, तेरा कहना ठीक है।' बाद में उस सम्मेलन में उन्होंने बडे उत्साह से भाग लिया।

यहॉं सब सप्रदायों के प्रमुखों ने एक मच पर बैठकर प्रेम से वार्तालाप किया। किसी के मन मे किसी सप्रदाय के बारे में अधिक्षेप करने का विचार स्वप्न में भी नहीं आया। इस प्रकार एक राष्ट्रीयत्व का साक्षात्कार हम लोगों ने यहॉं पर किया।

स्वार्थी लोगों द्वारा प्रेरित उत्तेजना

फिर भी यह सच है कि ऐसे कुछ विचित्र प्रसग कभी-कभी उपस्थित हो जाते हैं, जिनसे बडा दु ख होता है। पिछले वर्ष जैन मतावलबी तेरा पथी सप्रदाय के प्रमुख आचार्य श्री तुलसी जी चातुर्मास के लिए मध्यप्रदेश (सप्रति छत्तीसगढ) के रायपुर नामक शहर में पधारे थे। वहॉं लोगों ने उनके स्वागत में बडा उत्साह प्रकट किया। सब लोगों को प्रेरणा देनेवाले उनके अच्छे प्रवचन हुए। प्रवचनों के दौरान राम-कथा का एक प्रसग आया। यह कथा 'उत्तर रामचरित' में भी है। रावण-वध के बाद रामचद्र जी सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ अयोध्या लौट आए। राज्याभिषेक भी हो गया। तब गुप्तचरों में से किसी ने रामचद्र जी को बताया— 'अयोध्या के कुछ नागरिकों के अनुसार सीता जी रावण के कारागार अशोक वाटिका में कई दिन रहीं हैं। यद्यपि आपने अग्नि-परीक्षा कर ली है, परतु लोकापवाद प्रचलित है कि वह अग्निपरीक्षा उनके सामने नहीं हुई, जबकि आपने सीता जी को सिहासन पर रानी के नाते बैठाया है।'

इस कथा का उल्लेख जैन-मतानुसार लिखित रामायण में किया गया है। उसमें चाहे जो लिखा हो, परतु इतनी बात मैं जानता हूँ कि रामचद्र जी का चरित्र 'शतकोटिप्रविस्तरम्' कहा गया है। इसमें से वाल्मीकि रामायण के चौबीस हजार श्लोक हमें विदित हैं। शेष बहुत विशाल राम-कथा अन्यत्र कई जगह गाई गई है। अपने-अपने पहलू से रामचरित्र का गान सबने किया है। उसमें कहीं कोई दुष्टबुद्धि है, ऐसा मानना योग्य नहीं।

जैन मत के अनुसार जो रामायण है, उसमें लिखा है कि रामचद्र जी ने सोचा कि सीता जी की अग्निपरीक्षा करवानी चाहिए। बडी चिता रचाई गई। उसपर सीता जी को बिठाकर उसमें अग्नि दी गई। सीता जी के तेज से अग्नि शात और शीतल हो गई। ऊपर बडा सुदर कमल खिलकर आया। उसपर सीता जी बैठी थीं। सब लोगों ने वह दृश्य देखा।

अब इस प्रसग को लेकर राजनीति में काम करनेवाले लोगों ने हो-हल्ला मचाया। मैंने इस सबध में ऐसा सुना है कि तेरापथी व्यापारियों में से राजनीति में काम करनेवालों को पर्याप्त धन न मिलने के कारण वे क्षुब्ध हो गए थे। उन्होंने सोचा कि इन लोगों को अच्छा पाठ पढाया जाए। उन्होंने कहना प्रारभ किया कि आचार्य तुलसी ने सीता जी की बदनामी की। वैसे उन्होंने अपनी 'अग्नि परीक्षा' नामक काव्य में गुप्तचरों द्वारा भगवान राम को सूचित किए गए उपयुक्त लोकापवाद-प्रसग का उल्लेख किया है। आचार्य तुलसी को बाध्य होकर चातुर्मास का समय पूर्ण होने के पूर्व ही रायपुर छोडना पडा।

इस वर्ष भी जब राजस्थान के चुरू शहर मे आचार्य तुलसी के चातुर्मास का कार्यक्रम होना तय हुआ, तब यहाँ भी उनके विरुद्ध उत्तेजना फैलाई गई। दीवारों पर ऐसे भद्दे-भद्दे शब्द लिखे गए, जिन्हें देखकर कोई कह नहीं सकता कि यह सज्जनों का देश है, सब-सग्राहक हिदू सस्कृति के पालनकर्ताओं का देश है।

समाज की एकात्मता का विचार करने के स्थान पर पथाभिनिवेश जगाने में ही लोग सलग्न हैं। अपना शास्त्र कितना प्राचीन है, यह बताने में ही होड-सी लगी हुई है। एक मन्वतर में ७०-७१ चतुर्युग, एक चतुर्युग के ४३,२०,००० वर्ष— इस हिसाब से छह मन्वतर पूर्ण हो गए हैं। सातवें मन्वतर के २७ चतुर्युग पूरे हो चुके हैं। अब इस प्रकार गणित करते हुए हमारा शास्त्र पुराना है एक नीचा और एक ऊँचा है, ऐसे झगडे करते

बैठना बुद्धिमत्ता का लक्षण नहीं है। सोचना चाहिए कि हमें समाज के अंदर उदात्तता बढ़ानी है। तब उपर्युक्त बातें तो उसका पोषण करनेवाली नहीं हैं।

एक जैन मुनि, जिनकी मुझ पर बड़ी कृपा और स्नेह है, ने सबके सामने सब सप्रदायों के सामजस्य की बात कही। अपने सब शिष्यों के सामने उन्होंने अपने देश के सभी सप्रदायों में व्याप्त एकरसता का प्रतिपादन किया। परतु जब हमने उनकी वही शिक्षाप्रद बातें लोगों को बतलाई, तो एक व्यापारी जो चूस-चूसकर धन कमाता था, ने कहा 'उनको मुनि कौन कहेगा? हम उनको नहीं मानते।' मैंने कहा, 'आज जो लुटेरे हैं उन्हीं को मानो। लोगों का रुपया चूस-चूसकर जो पेट भरने का प्रयत्न करते हैं, उनके लिए तुम्हारी मान्यता है, परतु तपस्वी पुरुष को मान्यता नहीं।' अपना स्वार्थ पूरा होते हुए न देखकर इस प्रकार लोग श्रेष्ठ तपस्वी पुरुषों का अपमान करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। ऐसा विच्छेद भरा वातावरण अपने यहाँ दिखाई देता है।

हमारे समाज में अनेक पथ-उपपथ हैं ही और जैसा कि अभी भाषणों में वक्ताओं ने हमें बताया है, नए-नए पथ भी तैयार हो रहे हैं। आपने अभी-अभी यह भी सुना है कि एक ही समय अपने आपको भगवान कहनेवाले सात-सात लोग हैं। सोचना चाहिए कि एक भगवान रहने से सपूर्ण सृष्टि सुखमय हो जाती है, परतु सात भगवान होने पर भी अकाल पड गया। पर ऐसे लोग होते हैं और उनके पीछे जय-जयकार करनेवाले लोग भी रहते हैं।

हमें इन बातों पर गभीरता से विचार करना चाहिए क्योंकि हमें समाज को विच्छिन्न होने से बचाना है और उसे एकरस बनाना है। अत अत करण में अपने धर्म, सस्कृति, परपरा का अभिमान जागृत करके ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी है कि किसी भी प्रकार का स्वार्थ हमारे अत करण को स्पर्श न कर सके और हमारी सब विद्या, प्रतिष्ठा, शक्ति समाज की एकात्मता के लिए ही लगे। पृथकता में ही जो निहित स्वार्थ पैदा हो गए हैं, वे नष्ट हो जाएँ और एक ही परपरा के होने का भाव सब में जगे।

दु खदैन्य-समाप्ति का प्रयत्न

आज समाज का चित्र ऐसा दिखाई देता है से भर
आता है। चारों ओर बड़ा दु ख है। रोगी
बीमार गली-गली में सडक के । कहें
कि इन सबका भार मैं वहन सम्भव

मिलकर कहेंगे कि हम इस दु ख-दैन्य को हटाने के लिए अपने बधुओं की सहायता के लिए प्रयत्न करेंगे, तो हो सकता है। चारों ओर आज दुर्भिक्ष की छाया है। इस कारण कठिन समय दिखाई दे रहा है। इस स्थिति में हम सब ऐसा प्रयत्न करें कि किसी मनुष्य को भूखा नहीं रहने देंगे। प्रत्येक को ऐसा समझना है कि किसी एक पीडित बधु का भार उसके ऊपर ही है। अभी, यहाँ उपस्थित लोगों ने कहा कि बधुओं की रक्षा-निमित्त और उन्हें अपने पैरों पर खडा करने की शक्ति प्रदान करने के लिए हम गॉव का गॉव दत्तक लेंगे। ऐसे महापुरुष यहाँ हैं। इसी रास्ते से यह समस्या हल हो सकती है। इसके लिए अपनी निजी आवश्यकताओं और चैनबाजियों पर बधन डालने होंगे। मेरे एक मित्र हैं, वे कहते थे कि जब वे छोटे थे, तब उन्हें साल-भर में दो धोती, दो कुरते पर्याप्त होते थे। घर दरिद्री नहीं था। चाहते तो चार धोती-जोडा भी ले सकते थे। परतु विचार था कि ऐसा उच्छृखल जीवन ठीक नहीं। परतु आज तो अलमारियाँ कपडों से भरी पडी रहती हैं। तब भी लगता है कि कम ही हैं। उधर अपने समाज के लोग, असम आदि प्रदेशों में एक लगोटी के लिए भी मोहताज हैं। इन सब बातों का विचार करना होगा। समाज की ओर दुर्लक्ष्य करने से नहीं चलेगा। ऐसा करना अपना धर्म नहीं। कई बार लोग धार्मिक बनने का अर्थ विचित्र-सा लगा लेते हैं। वे त्रिपुड लगाते हैं, चदन लगाते हैं, घटी बजा-बजाकर लबी-चौडी पूजा करते हैं, परतु समाज का ध्यान नहीं लगाते। यह सब धर्म नहीं, यह तो धार्मिक बनने का आभास उत्पन्न करना मात्र हुआ। हमारा सच्चा धर्म तो यही है कि यह समाज अपना है, अत हम इसका चितन करें और हर एक आदमी स्वयभू पोषण कर सके– ऐसा स्वाभिमान उसमें निर्माण करें। जितने दीन-दुखी मिलें, वे सब भगवान के स्वरूप हैं और इस प्रकार भगवान ने अपनी सेवा का अवसर हमें प्रदान किया है, ऐसा समझें और इस भाव से उनकी प्रत्यक्ष सेवा करने के लिए उद्यत हों।

अब अत में वदेमातरम् गान होते समय हम सब मातृभूमि की भक्ति करेंगे। फोटो खींचनेवाले जो बधु हैं, वे भी ध्यान रखेंगे कि फोटो खींचने का मतलब यह नहीं कि मातृभूमि की भक्ति न करें। उन्हें भी भक्तिपूर्वक खडे रहना चाहिए।

३३ लक्ष्यनिष्ठ शिक्षा प्रणाली

(कुरुक्षेत्र, हरियाणा में श्रीमद्भगवद्गीता विद्यालय का शिलान्यास और हिंदू शिक्षा समिति की रजत जयती की वेला पर २१ जनवरी १९७३ को दिया गया उद्बोधन)

विद्यालय प्रारंभ करते समय उद्देश्य सामने रखा गया था कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में धम, नीति, राष्ट्रभक्ति, मातृभूमि के प्रति अनन्य श्रद्धा आदि के सस्कार देने की कोई प्रभावी व्यवस्था नहीं है, इस कमी को पूरा करने का प्रयास इस विद्यालय में करेंगे। आज यह देखकर बडा आनद हुआ कि उस समय धारण किया हुआ विश्वास पूरा हो रहा है।

अग्रेजो के षड्यत्र का परिणाम

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अग्रेजों ने इस देश में योजनापूर्वक लबे समय तक इस बात का प्रयास किया कि इस देश का राष्ट्रीय समाज अपने इतिहास, सस्कृति तथा सभ्यता को पूरी तरह भुला दे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने शिक्षा की एक योजना बनाई थी। इस योजना के अग्रेज मूलपुरुष ने कहा था कि भारत में काले अग्रेजों का निर्माण करना है। वही स्वत्वशून्य शिक्षा की रचना हमारे देश में चलती रही। अग्रेजों की इस कूटनीति को उस समय हमारे देश के जानकार लोगों ने पहचान लिया था। इसीलिए देश की स्वतत्रता की लडाई के दौरान अग्रेजी शिक्षा का विरोध भी होता रहा। इसलिए पराधीनता के उस काल में स्वत्व और स्वाभिमान का आवेश था। राष्ट्रीय शिक्षा के नाम से कुछ प्रयत्न भी प्रारभ हुए थे। उसी परपरा के आधार पर शिक्षा-दीक्षा के लिए समाज प्रयत्नशील रहा था। परतु परकीय शासन समाप्त होते ही स्वत्व की वह प्रेरणा लुप्त हो गई। हमारा जीवन परानुकरण के दुश्चक्र में फँस गया। अपने 'स्व' का विस्मरण ही नहीं हुआ, अपितु हम उसका निषेध तक करने लगे। रहन-सहन, चारित्र्य, कर्तव्यबोध, वैचारिक भूमिका आदि सभी दिशाओं में विवेकशून्य अधानुकरण चल रहा है।

अपनेपन का विस्मरण और विदेशियों की अधी नकल के फेरे में पडकर हम अपने जीवन के मूलगामी सिद्धातों को भी भुलाते जा रहे हैं। इसीलिए शिक्षा का वास्तविक अर्थ समझने में भी हम असमर्थ हो रहे हैं।

बड़े-बड़े लोगों के मुँह से सुनने को मिलता है कि शिक्षा रोजगार-उन्मुख होनी चाहिए। ऐसा कहा जाता है कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है। पैसा कमाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षा मनुष्य को पैसा कमाने योग्य बनाती है। शिक्षा का यह अर्थ अत्यत निकृष्ट है।

शिक्षा का उद्देश्य

वास्तव में शिक्षा से मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ जीवन के सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त करता है। यह कुरुक्षेत्र की भूमि है। कौरव-पाडवों का युद्ध इसी भूमि पर हुआ बताया जाता है। युद्ध प्रारभ होने के दिन श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता द्वारा धर्मवृत्ति का उपदेश करते हुए अर्जुन को प्रेरित किया था।

शिक्षा का अर्थ है मनुष्य को जीवन के इस अतिम लक्ष्य की ओर उन्मुख करना, तैयार करना। इस अतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि मनुष्य में अनेक प्रकार के सद्गुण हों। ये सद्गुण सहसा नहीं आएँगे। इनके लिए प्रयत्न करना होगा। इसलिए इन गुणों के सस्कार बचपन से ही अपने जीवन में करते रहने की आवश्यकता रहती है।

इन सद्गुणों का उल्लेख कई बार हमारे समाज-जीवन में होता रहता है। सच्चाई से रहना किसी के बारे में अपने अत करण में द्वेष की, घृणा की भावना न रखना, काया-वाचा-मनसा पवित्र रहना, काम-काचन के सब प्रकार के व्यामोह से दूर रहना, अपने-आप को पूरी तरह काबू में रखना, अत करण को इस प्रकार विशाल बनाना कि पूरा विश्व ही मेरा परिवार है, इस विशाल मानव-समाज की सेवा में स्वय को पूरी तरह समर्पित कर देना, इस समर्पण में भी कोई स्वार्थ मन में आने न देना आदि सस्कार बहुत आवश्यक हैं।

भारतीय जीवन-दृष्टि

सपूर्ण विश्व को अपना परिवार मानने की विशाल भावना में यह तथ्य भारतीय जीवन-दृष्टि की विशेषता है कि विश्व के प्रत्येक भू-भाग में रहनेवाला समाज अपने वैशिष्ट्य से जीवनयापन करे। अपनी परपरागत जीवन-प्रणाली को अपने देश में चलाने से, वह समाज उस देश के साथ सबद्ध रहता है। देश और समाज की इस सम्बद्ध भावना के फलस्वरूप

राष्ट्र के रूप में वे जगत् के सामने उपस्थित होते हैं। इसलिए हमारी यह मान्यता है कि प्रत्येक राष्ट्र का अपना वैशिष्ट्य है और वह वैशिष्ट्य बना रहना विश्व की प्रगति में नितांत आवश्यक है। विश्व के विभिन्न मानव-समुदायों की इन जीवन-विशेषताओं को समाप्त करने का अर्थ होगा मनुष्य के हाथ, पैर, कान नाक आदि सभी अवयवों को तोड़-मरोड़कर केवल मांस के एक गोले के रूप में देखना। क्या मनुष्य का ऐसा रूप हमें ग्राह्य होगा? यह बात अखिल जगत् के मानव के लिए कल्याणकारी कदापि नहीं हो सकती। इसलिए ऐसी स्थिति उत्पन्न करना ही विशालता की ओर जाना है। विश्व के सभी मानव-समुदाय अपनी-अपनी विशेषताओं से अखिल मानवता का पोषण करें और जगत् को बहुविध विशेषताओं से पूर्ण देखकर आनंद का अनुभव करें। सभी राष्ट्रों को अपने वैशिष्ट्य का आविष्कार करते हुए तथा उन विशेषताओं का सब प्रकार से संवर्धन करते हुए आपस में मित्रता, प्रेम एवं बंधुता से रहना चाहिए।

संपूर्ण जगत् का हित साधनेवाली दृष्टि यदि नहीं रही, क्षुद्र स्वार्थवश आपस में मित्र-भाव का लोप हो गया, तो जगत् के राष्ट्र नित्य संघर्ष करते रहते हैं। आज विश्व में ऐसी ही स्थिति विद्यमान है। विभिन्न मानव-समुदायों की इन विविध विशेषताओं को नष्ट करने का प्रयत्न करनेवाली विचारधाराएँ आज विश्व पर हावी हैं। वे अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए विश्व में अन्य किसी को स्वतंत्र रहने देना नहीं चाहतीं। फलस्वरूप संघर्ष होते हैं।

ऐसे संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होने पर किसी भी भू-भाग में रहनेवाले एक वैशिष्ट्यपूर्ण मानव-समुदाय जो राष्ट्र के रूप में संगठित रहता है, उसे अपना वैशिष्ट्य सुरक्षित रखना जरूरी है। अपनी राष्ट्रीय विशेषता को सुरक्षित रखते हुए उसे जगत् के अन्य राष्ट्रों को अपनी इन विशेषताओं का अनुभव कराते रहना चाहिए। ताकि विश्व के मानव-समुदायों की विविधताओं की विशेषताओं को नष्ट करनेवाली विचारधाराएँ जगत् का विनाश करने से बाज आएं।

विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित यह दायित्व निभाना प्रत्येक जागरूक राष्ट्र का कर्तव्य है। हमें भी इसी उत्तरदायित्व की पार्श्वभूमि और विश्व की वर्तमान संघर्षपूर्ण स्थिति में अपने राष्ट्र-जीवन को सुरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिए।

कार्य कठिन है

यह कार्य सरल नहीं है। इसे वही कर सकते हैं जो राष्ट्र की परपरा को जानते हैं। अपने राष्ट्रीय पूर्वजों का समुचित आदर करना जानते हैं, राष्ट्र और मातृभूमि से नितात प्रेम करते हैं, अपने अत करण में इस विशुद्ध भाव को धारण करते हैं कि राष्ट्रहित के सामने व्यक्तिगत हित नाम की कोई चीज नहीं है, जो सोचते हैं कि राष्ट्ररूपी भगवान की पूजा करने के लिए जीवन का कोई भी पक्ष दुर्वल नहीं रहने देना चाहिए। इसलिए जीवन को पूर्ण पवित्र बनाने का जो-जो प्रयत्न करते हैं, ऐसे व्यक्तियों की सगठित शक्ति द्वारा ही राष्ट्र के वैशिष्ट्य का रक्षण एव सवर्धन होता है और तभी इस सघर्षपूर्ण विश्व में राष्ट्र को अवाधित वैभवशाली बनाए रखना सम्भव होता है।

इस उद्देश्य और कार्य की पूर्ति के लिए राष्ट्र में राष्ट्रभक्त और चरित्रवान लोग तैयार करना नितात आवश्यक है। इसी कारण छात्रों-युवकों को कहा जाता है कि उन्हें राष्ट्र की जिम्मेवारी सँभालनी है। नित्य प्रति सभी लोग छात्रों को आह्वान करते हैं– 'तुम्हारे ऊपर ही राष्ट्र का महल खडा होनेवाला है। तुम्हारे कधों पर ही प्रगति का मदिर वनेगा। तुम राष्ट्र के आधारस्तभ हो आदि।' जब मे ऐसी घोषणाएँ सुनता हूँ तो मेरे मन में विचार आता है कि आधारस्तभ मजबूत होने चाहिए, इनमें किसी प्रकार का कीडा लगा हुआ नहीं होना चाहिए। यदि कोइ कमजोरी रहेगी तो सपूर्ण राष्ट्र-मदिर ढह जाएगा। इसलिए ये छात्र अतीव उत्तम होने चाहिए। तभी वे अपने कधों पर मदिर को सुरक्षित रख सकेंगे।

चरित्र-निर्माण

परतु इस सवध में आज की स्थिति सतोपजनक नहीं है। दिखाई देता है कि चारों ओर विपरीत भाव व्याप्त हैं। सभी लोग चारित्र्यहीनता के सकट की वात करते हैं। चरित्र्य का प्रारभ तो ऊपर से होता है। समाज के श्रेष्ठ पुरुषों से प्रारभ होकर नीचे की ओर जाता है। परतु आज दिखाई यह देता है कि साधनसपन्न श्रेष्ठ वर्ग अपने इस उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन हैं। वडे कहलानेवाले चारित्रिक दृढता का विचार तक करने के लिए तैयार नहीं हैं। तव क्या समाज की धारणा हो सकेगी? राष्ट्र प्रगति कर सकेगा? सुस्थिति वनेगी? देश में शातिपूर्ण, सुख-समृद्धिपूर्ण जीवन की उपलब्धि हो सकेगी?

यही कारण है कि समाज में चरित्रगत ढीलापन चारों ओर फल रहा है। इस स्थिति में तो छात्रों को चरित्रवान बनाने का कार्य और भी अधिक महत्त्व प्राप्त करता है। परतु इस ओर किसी का ध्यान नहीं है। हम विचार करें तो आज की शिक्षा-व्यवस्था में दिखाई देगा कि छात्र-वर्ग में अपने राष्ट्र-जीवन का कोई अभिमान नहीं है। हम उन्हें इस सबध में पर्याप्त जानकारी देने की व्यवस्था नहीं करते। उन्हें विविध पहलुओं से ज्ञानवान और स्वाभिमानी नहीं बनाते।

आज के विद्यार्थियों में इसी कारण स्वत के जीवन के बारे में कोई अभिमान नहीं है। उन्हें राष्ट्र-जीवन की कोई जानकारी नहीं है। राष्ट्र-पुरुषों की जीवनियाँ उन्हें ज्ञात नहीं। धर्म के श्रेष्ठ उद्‌गाताओं का, उनके द्वारा निर्मित प्रेरणाओं का उन्हें परिचय नहीं है। किसी विद्यार्थी से यदि कहा कि अपने यहाँ हल्दीघाटी का एक बडा युद्ध हुआ है। उस बारे में कुछ जानते हो? पता चलेगा कि उसे हल्दीघाटी का श्रेष्ठ प्रसग ही मालूम नहीं है। पिछले अनेक वर्षों से मैं अपने विद्यार्थी बधुओं की प्रगति और रुचि का निरीक्षण करता रहा हूँ। उनसे बातचीत करते समय मुझे यही विदित होता है कि अनेक छात्रों को हल्दीघाटी और उन जैसे अन्य राष्ट्रीय पराक्रम के प्रसगों और पौरुष की जानकारी ही नहीं है।

एक बार मैंने कुछ विद्यार्थियों से कहा की छत्रपति शिवाजी महाराज के इतिहास के कालखड में पावन-खिड नामक एक स्थान का उल्लेख आता है, जहाँ अनोखे पराक्रम, देशभक्ति और समर्पण-भाव का बडा प्रेरक प्रसग घटित हुआ है। किन्तु मुझे दिखाई दिया कि जिन्हें मैं यह बता रहा था, उन्हें इसकी जानकारी ही नहीं है। उनमें से एक ने पूछा कि यह स्थान किस बात के लिए प्रसिद्ध है? जब मैंने बताया, तब उसने कहा, 'वाह, क्या ऐसे प्रसग अपने इतिहास में भी हैं? ये तो पुराने ग्रीक इतिहास में थर्मोपायली नामक प्रसिद्ध युद्ध हुआ था, वहाँ का प्रसग है। कहने का मतलब यह कि उन्हें थर्मोपायली मालूम था, पर पावन-खिड अथवा हल्दीघाटी मालूम नहीं थी। मैं सोचता हूँ कि अपने स्वत्व का स्वाभिमान का जिनपर कोई सस्कार ही नहीं, वे राष्ट्र के आधार-स्तभ कैसे बनेंगे?

शक्तिशाली शरीर

यदि राष्ट्र का आधार मजबूत बनाना है तो इन छात्रों को शक्तिशाली बनाना होगा। इन सुदृढ शक्तिशाली आधार-स्तभों पर ही राष्ट्र

का भव्य भवन निर्मित हो सकेगा। इसलिए प्रत्येक नवयुवक के निर्माण के विषय में सोचना चाहिए कि वह शक्तिशाली हो। उसका शरीर इतना बलवान हो कि वह सभी प्रकार के उत्तरदायित्वों को वहन कर सके। उसी प्रकार मन और बुद्धि अत्यत मजबूत होनी चाहिए। इन सब शक्तियों को एकाग्रता और नियमपूर्वक वृद्धिगत करना चाहिए। कुशाग्र बुद्धि, सर्वांगीण ज्ञान, परिपुष्ट शरीर, सस्कारयुक्त अत करण और राष्ट्र-सबधी विविध जानकारियों से भरा हुआ स्वाभिमानपूर्ण स्वावलबी मस्तिष्क का निर्माण युवकों में होना आवश्यक है।

मैं अनेक युवकों से पूछता हूँ, 'भाई, शरीर को बलवान बनाने के लिए कुछ प्रयत्न करते हो?' क्वचित ही उत्तर मिल पाता है कि जिससे लगे कि यह शरीर को बलवान बनाने के लिए व्यायाम करता है। अभी हमने छात्रों द्वारा किए गए विविध कार्यक्रम देखे। सामने जो मलखभ लगा है उसपर भी कुछ व्यायाम छात्रों ने करके दिखाए। इसे देखकर मुझे अपने बचपन की याद आ गई। मुझे लगा कि मैं भी यहाँ से कूद कर इस मलखभ पर कुछ खेल करूँ, परतु अब भगवान ने मेरे शरीर में ऐसा कुछ करने का सामर्थ्य शेष नहीं रखा। इसलिए कुछ कर पाऊँगा, ऐसा नहीं लगता। फिर भी मलखभ और उसका व्यायाम देख कर मन में बडा प्रेम होता है। इसका अर्थ यही है कि मैंने बचपन में अपने शिक्षकों की प्रेरणा से ऐसे व्यायाम किए हैं, जिनका लाभ मुझे मिलता रहा। पिछले लगभग ४० वर्षो से मैं लगातार घूमता-फिरता रहा हूँ। खाना-पीना भी भगवान की कृपा से तदनुरूप ही चलता है। निद्रा का तो कई बार कोई ठिकाना ही नहीं रहता। इस शरीर को व्यायाम इत्यादि करके मजबूत बनाया था, उसी कारण यह शरीर कुछ कर सका। मैं सोचता हूँ कि यदि हम लोग अपने शरीर को सुदृढ और बलवान नहीं बनाएँगे तो राष्ट्र के लिए परिश्रम किस प्रकार कर सकेंगे? शरीर खडा न हो सके, दो कदम चलने की शक्ति न रहे, तो ऐसा शरीर काम करने से इकार कर देगा। उस स्थिति में हम राष्ट्र-कार्य भला किस प्रकार कर सकेंगे?

शारीरिक शक्ति के साथ ही चरित्र की शक्ति भी आवश्यक है। हमारे जीवन में सादगी, नि स्वार्थता, त्याग, सरलता, लगन, परिश्रमशीलता, तपस्या आदि सद्गुण निर्माण होने चाहिए। चरित्र की यह शक्ति, मनुष्य के अदर उसके द्वारा किए जानेवाले सतत चितन से प्राप्त होती है। चितन का आधार राष्ट्र की प्रखर भक्ति ही है। भक्तिवान अत करण ही चरित्रवान

होगा। मातृभूमि की भक्ति हृदय में जागृत होगी तो सद्गुणों को अर्जित करने की चेष्टाएँ प्रारंभ होने में विलंब नहीं लगेगा। इसलिए राष्ट्र के प्रति भक्ति और उस भक्ति को सार्थकता प्रदान करनेवाला चरित्र इन दोनों बातों का चिंतन नित्य करते रहना चाहिए। विभिन्न कार्यक्रमों और अध्ययन के माध्यम से अपनी मातृभूमि का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए। ऐसा करते समय स्वाभाविक ही उन महापुरुषों के जीवन-प्रसंगों में हमें अनेक सद्गुण दिखाई देंगे। इस प्रकार हमें न केवल सद्गुण प्राप्त करने की प्रेरणा मिलेगी, वरन् उन्हें पा सकने के लिए प्रयत्नों की दिशा भी समझ सकेंगे।

मैं समझता हूँ कि अपने इस विद्यालय में इस प्रकार के चारित्रिक विकास की ओर ध्यान दिया जाता है, अन्यथा इस विद्यालय का कोई वैशिष्ट्य नहीं रहेगा। तब इसे चलाने की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। यदि हम चाहते है कि बच्चों का चारित्र्य अच्छा हो, तो उनके सामने श्रेष्ठ पुरुषों के उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक है। इस बात की ओर ध्यान देना ही चाहिए।

भ्रष्टाचार बढ़ा है

आज यदि हम अपने चारों ओर देखें तो हमें पता चलेगा कि भ्रष्टाचार का बड़ा बोलबाला है। बड़े-बड़े लोग सार्वजनिक जीवन के आदर्शों से कोसों दूर हैं। आम चर्चा है कि देश में चरित्रहीनता का संकट है। यह सब इतना व्यापक है कि इसके संबंध में बोलने में भी मुझे संकोच होता है। अभी कल-परसों की बात है। 'धर्मयुग साप्ताहिक का एक अंक पढ़ रहा था। उसमें एक लेखक द्वारा इस बात का वर्णन किया गया था कि व्यापार बढ़ाने के लिए लोग किस प्रकार स्त्री का उपयोग करते हैं। लाइसेन्स-परमिट देने का कार्य करनेवाले बड़े अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए स्त्री का प्रयोग करने की बातें उस लेख में लिखी गई हैं। राजनीतिक क्षेत्र के भी कुछ उदाहरण दिए हैं। उसने लिखा है कि विरोधी पक्ष के भेद निकाल कर उन्हें परास्त करने के लिए भी ऐसी बातों का उपयोग किया जाता है। व्यापार में भी स्त्रियों के चित्रों का खूब उपयोग होता दिखाई देता है। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि सेफ्टी रेजर व ब्लेड के विज्ञापन के लिए भी एक स्त्री का चित्र छापा गया। वास्तव में दाढ़ी बनाने के ब्लेड से स्त्री का क्या वास्ता? परंतु मनुष्य की विषय-वासना को

उभाडकर उसे कर्तव्यभ्रष्ट और सन्मार्गभ्रष्ट करने का प्रयत्न दिन-पर-दिन बढता हुआ दिखाई देता है।

इस प्रकार मनुष्य को कर्तव्यभ्रष्ट करने के लिए अपनाए गए अनेक उदाहरण उस लेखक ने दिए हैं, जिनका अधिक उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं। आज ऐसे अनेक कार्य हो रहे हैं, जिनसे चारों ओर भ्रष्टाचार फैलता जा रहा है। मनुष्य पर यह भीषण आक्रमण है। कई बार हम तलवार, बदूक आदि शस्त्रास्त्रों के वार से रक्षा की बात सोचते हैं, परतु भ्रष्टाचार के क्षेत्र में प्रलोभन, पद, सम्मान आदि अनेक प्रकार से भ्रष्टाचार के जो प्रयत्न होते हैं, उनसे रक्षा करना बहुत कठिन होता है। अब इनका क्षेत्र काफी बढा हुआ है। इसलिए इन विविध प्रकार के प्रलोभनों के प्रहारों को पहचान कर उनके साथ टकराने और उनपर विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य हममें होना चाहिए। आज की परिस्थिति में चरित्र के सबध में विचार करते समय हमें निश्चयपूर्वक ऐसी शक्ति अर्जित करनी चाहिए जिससे इन प्रलोभनों का हम पर कोई असर न हो।

पद और प्रतिष्ठा के प्रलोभनों के सहारे ऐसे प्रहार कितनी कुशलता से किए जाते हैं, इसका एक उदाहरण बताता हूँ। पिछले दिनों मैंने एक पत्रिका पढी, जिसमें फ्रास की एक सस्था द्वारा हमारी प्रधानमत्री की बडी चतुराई से प्रशसा की गई है। पत्रिका में उस सस्था द्वारा चडीगढ नगर की बहुत प्रशसा की गई है। वास्तव में चडीगढ में पाडवों के काल का चडी का मदिर है, इसलिए उसका नाम चडीगढ है। परतु पुराना चडीगढ अब नहीं है। वहाँ सब कुछ नया बना है। इस नए चडीगढ का वास्तुशास्त्री फ्रासीसी था। इसलिए फ्रासीसी सस्था ने यदि उसकी तारीफ की तो कोई विशेष बात नहीं। परतु मैं जब सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि चडीगढ में प्रशसा करने लायक कुछ भी नहीं। मुझे चडीगढ की रचना कभी अच्छी नहीं लगी। उत्तरप्रदेश के मुख्यमत्री और बाद में राजस्थान के राज्यपाल डा सम्पूर्णानद जैसे विद्वान ने अपने मुख्यमत्रित्व काल में नगर-रचना करनेवाले प्रातीय अधिकारियों से बात करते हुए कहा था कि आप लोग अपने प्रात के नगर अच्छे बनाना, परतु उत्तरप्रदेश में चडीगढ मत बनाना। उन्होंने कहा था कि मैं चडीगढ देखने गया। मुझे वह बहुत फैला-फैला हुआ मुर्दे के समान दिखाई दिया। इस कारण मुझे पसन्द नहीं आया। सम्पूर्णानद विविध शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता रहे हैं। उनकी उक्ति में सच्चाई है।

व्यक्त की थी कि सपूर्ण विश्व को कर्मयोग-बुद्धियोग का पवित्र ज्ञान देनेवाले भगवान श्रीकृष्ण की स्मृति में चलाया जा रहा यह विद्यालय, उनके द्वारा वर्णित सद्गुणों को स्थापित करने में प्रयत्नशील हो। आज २५ वर्ष के पश्चात् जब एक नए आवासीय विद्यालय के शिलान्यास का अवसर आया है, तब अनेक महानुभावों ने उदारता प्रकट की है। मैंने तो केवल पत्थर या ईट रख देने का काम किया है। समाज का एक प्रतिनिधि होने के नाते समाजरूपी भगवान से मैं कामना करता हूँ कि राष्ट्रभक्ति धर्म, सस्कृति आदि के श्रेष्ठ सस्कार सपूर्ण समाज में जागृत करने के लिए यह विद्यालय सब प्रकार से उत्कर्षशील हो।

ॐ ॐ ॐ

विदेशी इतिहासकार तथा उस समय के यात्रियो के तुलनात्मक अध्ययन हमे बताते है कि इस देश का जनसाधारण अन्य देशो के सामान्यजन से अतुल्य श्रेष्ठ था। इसका स्पष्ट कारण था कि हमारे समाज के नेताओ ने समाज के प्रत्येक स्तर मे हमारे सास्कृतिक सस्कारो को निर्दिष्ट करने के लिए अथक प्रयत्न किए थे। इसीलिए हमारे समाज के प्रत्येक वर्ग मे से विद्वान और ज्ञानियो से लेकर कृषक कोरी मोची डोम तथा इसी प्रकार के अन्य लोगो तक से हमे सत–महात्मा तथा शूरवीर मिलते है जिनके विचारो एव कृतियो गीतो एव कथनो ने सपूर्ण ऊपरी व्यवधानो को पार करते हुए हमारे लोगो को प्रेरणा दी है।

— श्री गुरुजी

अब इस फ्रांसीसी पत्रिका में मेरे चंडीगढ की प्रशंसा होना केवल इसलिए समझा जा सकता था कि उसका वास्तुशास्त्री फ्रांसीसी था। परंतु उसने प्रशंसा करते समय उस समय के हमारे प्रधानमंत्री पं नेहरू जी का भी प्रशंसात्मक उल्लेख किया है। साथ ही यह निष्कर्ष भी निकाला है कि ऐसे सुरुचिपूर्ण व्यक्तित्ववाले नेहरू जी की सुकन्या आज भारत की प्रधानमंत्री हैं। इस प्रकार इंदिरा गाँधी जी का भी बड़ा गौरव-गान किया है। जब मैंने यह पढ़ा तो मुझे लगा कि ये लोग राजनीति में बड़े मँजे हुए हैं। कोई भी बहाना बनाकर व्यक्ति से संबंध जोड़ने और अपना काम निकालने का यह तरीका है। मराठी में एक कहावत है– 'मधाचे बोट लावणे' यानी शहद में उंगली डुबोकर दूसरे के मुँह पर लगा देना। ऐसा करने से सहज ही जीभ लपलपाकर बाहर आएगी ही। मनुष्य की दुर्बलता का उपयोग करने की दृष्टि से चतुराई का यह प्रयोग है। मैं आशा करता हूँ कि अपने देश के उच्चपदस्थ बड़े-बड़े लोग और अपनी प्रधानमंत्री इस प्रकार के प्रलोभन से भरी उनकी चुतराई को ठीक-ठीक समझ सकेंगी। कभी फिसलेंगे नहीं और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम रखेंगे।

इस प्रकार के प्रलोभन देने के प्रयोग विश्व भर में चल रहे हैं। बार-बार जब प्रशंसा के पुल बाँधे जाते हैं, तब मनुष्य को वास्तविकता समझ पाना कठिन हो जाता है और वह जाल में फँसता है। इन प्रलोभनों को पहचानने की और उनसे टकराने की शक्ति तथा उनपर विजय प्राप्त करने का दृढ निश्चय, बचपन से ही प्रत्येक व्यक्ति को सिखाने की आवश्यकता है। प्रलोभनों से पथभ्रष्टता और स्वार्थो से भ्रष्टाचार– इन दोनों ही प्रकार की आपत्ति टाल सकने योग्य चारित्र्य का विकास होना जरूरी है।

राष्ट्रसेवा का संकल्प

प्रत्येक छात्र के मस्तिष्क में यह बात अच्छी तरह बैठा देनी होगी कि मैं अपने राष्ट्र की सेवा करूँगा। राष्ट्र में ज्ञान-विज्ञान की विविध धाराओं को पुष्ट करूँगा। आधुनिक जगत् में प्रगति के जो-जो मार्ग दिखाई दे रहे हैं, उन सबका गहरा अध्ययन करके आगे बढ़ूँगा। अपने स्वार्थ का लेशमात्र विचार नहीं करूँगा– प्रत्येक छात्र में ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि का निर्माण करने के लिए ही इस विद्यालय की आवश्यकता है।

जब इस विद्यालय का शिलान्यास हुआ था, तब मैंने यही इच्छा

व्यक्त की थी कि सपूर्ण विश्व को कर्मयोग–बुद्धियोग का पवित्र ज्ञान देनेवाले भगवान श्रीकृष्ण की स्मृति में चलाया जा रहा यह विद्यालय, उनके द्वारा वर्णित सद्गुणों को स्थापित करने में प्रयत्नशील हो। आज २५ वर्ष के पश्चात् जब एक नए आवासीय विद्यालय के शिलान्यास का अवसर आया है तब अनेक महानुभावों ने उदारता प्रकट की है। मैंने तो केवल पत्थर या इट रख देने का काम किया है। समाज का एक प्रतिनिधि होने के नाते समाजरूपी भगवान से मैं कामना करता हूँ कि राष्ट्रभक्ति, धर्म सस्कृति आदि के श्रेष्ठ सस्कार सपूर्ण समाज में जागृत करने के लिए यह विद्यालय सब प्रकार से उत्कर्षशील हो।

ཀཀཀ

विदेशी इतिहासकार तथा उस समय के यात्रियो के तुलनात्मक अध्ययन हमे बताते है कि इस देश का जनसाधारण अन्य देशो के सामान्यजन से अतुल्य श्रेष्ठ था। इसका स्पष्ट कारण था कि हमारे समाज के नेताओ ने समाज के प्रत्येक स्तर मे हमारे सास्कृतिक सस्कारो को निर्दिष्ट करने के लिए अथक प्रयत्न किए थे। इसीलिए हमारे समाज के प्रत्येक वर्ग मे से विद्वान और ज्ञानियो से लेकर कृषक, कोरी मोची डोम तथा इसी प्रकार के अन्य लोगो तक से हमे सत–महात्मा तथा शूरवीर मिलते है जिनके विचारो एव कृतियो गीतो एव कथनो ने सपूर्ण ऊपरी व्यवधानो को पार करते हुए हमारे लोगो को प्रेरणा दी है।

— श्री गुरुजी

हिंदुस्थान के प्राचीन व गौरवशाली इतिहास पर सघ अभिमान करता है व देश के उज्ज्वल भविष्य को लेकर हम पूरी तरह आश्वस्त हैं।

अपने प्रवास में हिंदुओं की भावनात्मक एकता का प्रत्यक्ष अनुभव मैंने किया है। हमारे बाह्य मतभेद कितने भी तीव्र हुए तो भी हिन्दू की आतरिक एकता अभेद है।

इसलिए समर्थ हिंदू सगठन के द्वारा ही हिंदुस्थान का उद्धार हो सकेगा ऐसी हमारी दृढ निष्ठा होने के कारण, हम अन्य किसी झझट मे पडे विना और किसी राजनीतिक दल में शामिल हुए विना, अपने ध्येय-प्राप्ति के लिए निश्चित की गई दिशा व उद्देश्य के अनुसार तय कार्यक्रम करने का हमने निश्चय किया हुआ है।

सघ को एक प्रकार का सैन्य सगठन कहा जा सकता है। आज की परिभाषा के अनुसार नहीं, वल्कि हमारी प्राचीन मान्यता के अनुसार यह सैन्य सगठन है, क्योंकि जव तक कोई भी क्षत्रिय अपने व्यक्तिगत जीवन को समाज में विलीन कर ध्येय के साथ एकरस नहीं होता, तव तक वह ठीक प्रकार से समाज ऋण अदा नहीं कर सकता।

हमको हमारी सस्कृति व समाजसेवा के अनुष्ठान को पूरा करना है, इसलिए हम केवल सैन्य या शारीरिक शिक्षण पर अधिक जोर न देते हुए राष्ट्रीय मनोवृत्ति के निर्माण को अधिक महत्त्व देते है। एकता की इस दृढ भावना के कारण अखिल हिंदूसमाज को सगठित करना, यही सघ का काम और कार्यक्रम है। सगठित हिंदूसमाज के पराक्रम व जीवन-शक्ति पर हमारा पूर्ण विश्वास है। हिंदुस्थान के सारे हिंदुओं मे हिंदू की सास्कृतिक एकता स्थापित करने मे सघ सफल हो जाता है, तो इस राष्ट्र को परम वैभव के शिखर पर ले जाने के अपने लक्ष्य को हम अविलव प्राप्त कर सकेंगे।

ॐ ॐ ॐ

शस्त्रपूजन, १९४०

सघ की स्थापना के १५ वर्ष बाद भी लोग ऐसा प्रश्न पूछते हैं कि 'सघ क्या है?' वहीं कुछ वुद्धिमान माने जानेवाले लोगो ने तो इसके वारे में अपने मन में एक विपर्यास ही कर रखा है। सघ को समझे विना इसके वारे में पूर्वाग्रह कर लेना खेदजनक है। वास्तव में तो राष्ट्रीय स्वयसेवक

विजयादशमी

विजयादशमी उत्सव के अवसर पर पूजनीय सरसंघचालकजी स्वयं नागपुर के कार्यक्रम में उपस्थित रहकर स्वयंसेवकों का मार्गदर्शन करते हैं। प्रारंभ से शुरू यह परंपरा आज भी चालू है। विजयादशमी का उत्सव नागपुर में दो दिनों में संपन्न होता है। नवमी को शस्त्रपूजन, शारीरिक कार्यक्रमों का प्रदर्शन व सार्वजनिक समारोह और विजयादशमी के दिन पथ-संचलन होता है। दोनों अवसरों पर पूजनीय सरसंघचालक जी का मार्गदर्शन होता है। सन् १९३९ में सरकार्यवाह तथा सन् १९४० से सन् १९७२ तक सरसंघचालक के नाते विजयादशमी व शस्त्रपूजन के अवसर पर हुए श्री गुरुजी के उपलब्ध बौद्धिकों का सारांश यहाँ दिया जा रहा है।

शस्त्रपूजन, १९३९

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के काम को १४ वर्ष पूरे हो गए हैं। इस प्रकार बाल्यावस्था पूरी कर वह तारुण्य में प्रवेश कर रहा है। देश में इस समय अनेक प्रकार के संगठन व संस्थाएँ काम कर रही हैं। उनमें से कुछ बहुत अच्छी हैं। अन्य गतिविधियाँ व काम उन संगठनों व संस्थाओं के लिए छोड़कर हिंदुओं का अभेद्य व प्रभावी संगठन करने का काम संघ ने अपनी ओर रखा है।

हिंदुस्थान के प्राचीन व गौरवशाली इतिहास पर संघ अभिमान करता है व देश के उज्ज्वल भविष्य को लेकर हम पूरी तरह आश्वस्त हैं।

अपने प्रवास में हिंदुओं की भावनात्मक एकता का प्रत्यक्ष अनुभव मैंने किया है। हमारे बाह्य मतभेद कितने भी तीव्र हुए तो भी हिन्दू की आंतरिक एकता अभेद है।

इसलिए समर्थ हिंदू संगठन के द्वारा ही हिंदुस्थान का उद्धार हो सकेगा ऐसी हमारी दृढ निष्ठा होने के कारण, हम अन्य किसी झंझट में पडे बिना और किसी राजनीतिक दल में शामिल हुए बिना, अपने ध्येय-प्राप्ति के लिए निश्चित की गई दिशा व उद्देश्य के अनुसार तय कार्यक्रम करने का हमने निश्चय किया हुआ है।

संघ को एक प्रकार का सैन्य संगठन कहा जा सकता है। आज की परिभाषा के अनुसार नहीं बल्कि हमारी प्राचीन मान्यता के अनुसार यह सैन्य संगठन है, क्योंकि जब तक कोई भी क्षत्रिय अपने व्यक्तिगत जीवन को समाज में विलीन कर ध्येय के साथ एकरस नहीं होता, तब तक वह ठीक प्रकार से समाज ऋण अदा नहीं कर सकता।

हमको हमारी संस्कृति व समाजसेवा के अनुष्ठान को पूरा करना है, इसलिए हम केवल सैन्य या शारीरिक शिक्षण पर अधिक जोर न देते हुए राष्ट्रीय मनोवृत्ति के निर्माण को अधिक महत्त्व देते हैं। एकता की इस दृढ भावना के कारण अखिल हिंदूसमाज को संगठित करना, यही संघ का काम और कार्यक्रम है। संगठित हिंदूसमाज के पराक्रम व जीवन-शक्ति पर हमारा पूर्ण विश्वास है। हिंदुस्थान के सारे हिंदुओ में हिंदू की सांस्कृतिक एकता स्थापित करने मे संघ सफल हो जाता है, तो इस राष्ट्र को परम वैभव के शिखर पर ले जाने के अपने लक्ष्य को हम अविलंब प्राप्त कर सकेंगे।

शस्त्रपूजन, १९४०

संघ की स्थापना के १५ वर्ष बाद भी लोग ऐसा प्रश्न पूछते हैं कि 'संघ क्या है?' वहीं कुछ बुद्धिमान माने जानेवाले लोगों ने तो इसके बारे में अपने मन में एक विपर्यास ही कर रखा है। संघ को समझे बिना इसके बारे में पूर्वाग्रह कर लेना खेदजनक है। वास्तव में तो 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक

है
ह
द
ड
द
मा
तह
के
हुए
दिय

राष्ट्रीय
प्रकार बाल्यावस्
समय अनेक प्रव
बहुत अच्छी हैं।
छोड़कर हिंदुओं का
ओर रखा है।
(१५०)

की स्थिति में है व हिंदू होने के कारण अपराध-बोध से ग्रस्त है। उसकी इस दुरवस्था के लिए भाषाभेद, निरक्षरता, जातिभेद प्रांतभेद जैसे कई कारण गिनाए जाते हैं और उनको दूर करने के लिए अनेक उपाय भी सुझाए जाते हैं, किंतु इनमें से एक भी कारण वास्तविक नहीं है। हमारी अवनति का मूल कारण इतिहास के हर पन्ने पर देखने को मिल जाएगा और वही हमारी मूल समस्या है। वह कारण है हममें समष्टि जीवन का अभाव। इसे स्पष्ट करने के लिए इतिहास के दो ही उदाहरण पर्याप्त हैं।

पहला प्रसंग उस समय का है, जब हर प्रकार का सुख-वैभव हमारे पास था। तब पहला विदेशी आक्रमण विश्वविजयी कहलानेवाले सिकंदर का हुआ था। उसे हिंदुस्थान से हर प्रकार से पराजित होकर जाना पड़ा था और उसके प्रबल प्रतापी सेनापति सेल्यूकस को तो चंद्रगुप्त की शरणागति ही स्वीकारनी पड़ी। क्योंकि उस समय हमारा समष्टि जीवन सर्वांग परिपूर्ण था। इसलिए बाह्य जगत् को हम नतमस्तक करा सके।

दूसरा प्रसंग जयचंद द्वारा पृथ्वीराज के पराभव के लिए मोहम्मद गौरी को निमंत्रण देने का है। कितना लज्जास्पद व खेदजनक प्रसंग था, जब अपने व्यक्तिगत स्वार्थ तथा अहंकार के वशीभूत होकर अपने ही सम्राट व स्वयं के दामाद के विरुद्ध मुसलमानों से मैत्री कर उन्हें भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाया।

इसके पश्चात् देश के अधःपतन का जो सिलसिला शुरू हुआ, उसके अनेक उदाहरण हमको इतिहास में देखने को मिलेंगे। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि मात्र १८ घुड़सवारों को लेकर बख्तियार खिलजी ने बंगाल को अपने कब्जे में ले लिया।

इस अधःपतन के पीछे राष्ट्रप्रेम ओर समष्टि जीवन का अभाव ही हमें दिखाई देता है। हिंदू की इस मानसिकता के कारण ही परकीयों को संधि मिल सकी।

कोई-कोई कहते हैं कि शस्त्र और सैन्य की आवश्यकता है। मेरा उनसे पूछना है कि क्यों? उनकी क्या आवश्यकता है? हमारे समाज में जब तक एकता की भावना न हो, तब तक कितने भी शस्त्र हों, उनका जरा भी उपयोग नहीं हो पाता, वरन् वे स्वयं के विनाश का ही कारण बनते हैं। आज देश में शस्त्रों की कमी नहीं है, पर उनका उपयोग अपने समाज के विरुद्ध ही तो होता है। सामाजिक एकता और वीरत्व की भावना नहीं हुई

सघ' इन तीन शब्दों में ही सघ की सपूर्ण विचारधारा व ध्येय की सकल्पना समाहित है।

सघ स्थापना के समय अनेक नामों के सुझाव आए थे, सघ सस्थापक ने उसमें से इस नाम को विचारपूर्वक चुना है। 'हिंदूसमाज का उद्धार व सगठन करने के लिए कटिबद्ध सघ को हम 'जातीय' न कहकर राष्ट्रीय क्यों कहते हैं', ऐसा प्रश्न हमसे पूछा जाता है। आज केवल जातीयता का ही विचार किया जाता है, इसलिए इसका ही सर्वत्र बोलबाला है। मैं पूछता हूँ कि हिंदुस्थान के २८ करोड हिंदुओं को केवल एक जाति माना तो फिर यहाँ राष्ट्रीय किसे कहेंगे? हिंदुस्थान में इतनी बडी सख्या में रहनेवाला हिंदू यदि जातीय हैं तो मुसलमान, ईसाई आदि छोटी-छोटी जातियाँ राष्ट्रीय होंगी क्या? या फिर ये सब जातियाँ मिलकर राष्ट्र बनेगा, ऐसा समझना चाहिए। हिंदुस्थान धर्मशाला है अथवा रेल का डिब्बा?

वास्तव में तो छोटे-छोटे सामाजिक समूह ही जाति होते हैं। राष्ट्रीयता का मापदड यदि मातृभूमि के प्रति नितात प्रेम, अभिमान व आदर की भावना हो तो हिंदुस्थान में हिंदू ही सच्चा राष्ट्रीय हो सकता है, क्योंकि मातृभूमि की कल्पना हमने पश्चिमी जगत् से उधार नहीं ली है। यह हमारी सनातन कल्पना है और सैंकडों वर्षो से हमारे रग-रग में समाई हुई है। रावण-वध के पश्चात् सोने की लका में ही अपना वास्तव्य रखना चाहिए, ऐसी लक्ष्मण की इच्छा देखकर स्वय भगवान श्रीराम ने 'अपि स्वर्णमयी लका न मे लक्ष्मण रोचते, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का उच्चार करते हुए अपने स्वदेश-प्रेम को प्रकट किया था। इसलिए स्वदेश-प्रेम कोई आधुनिक कल्पना नहीं है। रोज प्रात काल उठकर 'समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमडले, विष्णुपत्नि नमस्तुभ्य पादस्पर्श क्षमस्व मे' ऐसा हमारे धर्म का आदेश होने के कारण वह हिंदू को पवित्र व वदनीय है। मातृभूमि के प्रति ऐसी पवित्र भावना हिंदुस्थान में केवल हिंदू ही रखता है। इसलिए हिंदू ही यहाँ का राष्ट्रीय है। इस देश में हिंदू-हित का पोषण करनेवाले राष्ट्रीय और इसके विघातक अराष्ट्रीय हैं, ऐसा हमारा दृढ मत है।

मगर आज हिंदू अपने ही घर में इस देश के स्वामी होने का अनुभव नहीं करता। उसकी स्थिति गुलाम की तरह है। अपने ही देश में उसकी स्थिति दूसरे दर्जे के नागरिक की तरह है। उसकी भावनाओं की कोई कीमत नहीं, उसकी कोई सुननेवाला नहीं। इस कारण हिंदू असमजसता

की स्थिति में है व हिंदू होने के कारण अपराध-बोध से ग्रस्त है। उसकी इस दुरवस्था के लिए भाषाभेद, निरक्षरता, जातिभेद, प्रांतभेद जैसे कई कारण गिनाए जाते हैं और उनको दूर करने के लिए अनेक उपाय भी सुझाए जाते हैं, किंतु इनमें से एक भी कारण वास्तविक नहीं है। हमारी अवनति का मूल कारण इतिहास के हर पन्ने पर देखने को मिल जाएगा और वही हमारी मूल समस्या है। वह कारण है हममें समष्टि जीवन का अभाव। इसे स्पष्ट करने के लिए इतिहास के दो ही उदाहरण पर्याप्त हैं।

पहला प्रसंग उस समय का है, जब हर प्रकार का सुख-वैभव हमारे पास था। तब पहला विदेशी आक्रमण विश्वविजयी कहलानेवाले सिकंदर का हुआ था। उसे हिंदुस्थान से हर प्रकार से पराजित होकर जाना पड़ा था और उसके प्रबल प्रतापी सेनापति सेल्यूकस को तो चंद्रगुप्त की शरणागति ही स्वीकारनी पड़ी। क्योंकि उस समय हमारा समष्टि जीवन सर्वांग परिपूर्ण था। इसलिए बाह्य जगत् को हम नतमस्तक करा सके।

दूसरा प्रसंग जयचंद द्वारा पृथ्वीराज के पराभव के लिए मोहम्मद गौरी को निमंत्रण देने का है। कितना लज्जास्पद व खेदजनक प्रसंग था, जब अपने व्यक्तिगत स्वार्थ तथा अहंकार के वशीभूत होकर अपने ही सम्राट व स्वयं के दामाद के विरुद्ध मुसलमानों से मैत्री कर उन्हें भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाया।

इसके पश्चात् देश के अधःपतन का जो सिलसिला शुरू हुआ, उसके अनेक उदाहरण हमको इतिहास में देखने को मिलेंगे। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि मात्र १८ घुड़सवारों को लेकर बख्तियार खिलजी ने बंगाल को अपने कब्जे में ले लिया।

इस अधःपतन के पीछे राष्ट्रप्रेम और समष्टि जीवन का अभाव ही हमें दिखाई देता है। हिंदू की इस मानसिकता के कारण ही परकीयों को संधि मिल सकी।

कोई-कोई कहते हैं कि शस्त्र और सैन्य की आवश्यकता है। मेरा उनसे पूछना है कि क्यों? उनकी क्या आवश्यकता है? हमारे समाज में जब तक एकता की भावना न हो तब तक कितने भी शस्त्र हों, उनका जरा भी उपयोग नहीं हो पाता, वरन् वे स्वयं के विनाश का ही कारण बनते हैं। आज देश में शस्त्रों की कमी नहीं है, पर उनका उपयोग अपने समाज के विरुद्ध ही तो होता है। सामाजिक एकता और वीरत्व की भावना नहीं हुई

तो सघ के शत्रु भी नाकाम हो जाते हैं।

आज कितने ही लोग पद व प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं, पर उसका पूरा लाभ समाज को नहीं मिल पाता। क्योंकि वे पहले अपना हित देखते हैं, फिर अपनी जाति का हित करते हैं। देश का हित करना, उनकी प्राथमिकता में ही नहीं होता। सघ की मान्यता है कि समाज की अवहेलना कर कोई भी व्यक्ति गौरव प्राप्त नहीं कर सकेगा।

हिंदूसमाज के सगठन के लिए व्यक्ति को समष्टि जीवन जीने का अभ्यास होने की आवश्यकता है, यही बताने के लिए सघ का जन्म हुआ है। इसके लिए ही सघ आज तक काम करता आया है और आगे भी करेगा। हमें हिंदू-समाज को इतना सामर्थ्यशाली बनाना है कि कोई उसकी ओर गलत दृष्टि से देखने की हिम्मत न कर सके।

- हमारी दृष्टि से साध्य और साधन एक ही है।
- हमारा सगठन केवल सगठन के लिए ही है।
- सगठन यही हमारा साधन और यही हमारा साध्य है।

क्योंकि सगठित रहना सुसस्कृत व प्रभावी समाज की स्वाभाविक अवस्था है। सगठन की आवश्यकता परिस्थिति निरपेक्ष और त्रिकालाबाधित है। सगठित समाज अपने सामने उपस्थित सारे प्रश्नों का हल करने में सफल रहता है, यह ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

सघ केवल सगठन का काम करने वाला है। उसे न तो नाममात्र के अनुयायियों की फौज खडी करनी है और न ही किसी प्रकार की राजनीति करनी है। सघ तो सामाजिक जीवनयुक्त उत्कृष्ट नागरिक तैयार करना चाहता है और इसके लिए वह आवश्यक अनुशासन उन्हें सिखाता है। अब यह सीधा-साधा काम किसी की समझ में न आता हो, तो वह दोष सघ का नहीं।

जिस प्रकार शक्कर की मिठास उसे खाए बिना ओर समुद्र के गर्भ में समाए रत्नों का पता उसमें डुबकी लगाए बिना नहीं लग सकता, उसी प्रकार सघ-गगा में प्रत्यक्ष अवगाहन किए बिना सघ समझ में नहीं आ सकता। जब हिंदू-समाज इसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करेगा, तभी समाजोद्धार हो सकेगा। लोग अच्छा कहें या बुरा, इतने मात्र से सघ अपना मार्ग बदलनेवाला नहीं है। हिंदू-समाज में समष्टि जीवन निमाण करने का अपना काम वह अव्याहत् रूप से करता ही रहेगा।

ॐ ॐ ॐ

विजयादशमी, १९४०

कुछ दिनों पूर्व मैंने समाचार-पत्रों में विज्ञप्ति पढी थी। उसका उद्देश्य राजनीतिक आकाक्षा रखनेवाली जो सस्थाएँ शिक्षा देने का कार्य कर रही हैं, उनसे वर्तमान नाजुक परिस्थिति में खतरा उत्पन्न होने की सभावना को देखते हुए, उनकी गतिविधियों पर रोक लगाना था। उस समय मेरे मन यह विचार भी नहीं आया था कि केवल धर्म-सवर्धन और विघटित समाज को सगठित करने के पवित्र उद्देश्य से स्थापित सघ पर उस विज्ञप्ति का कोई प्रभाव पडेगा। उसके ही कारण इस वर्ष, प्रतिवर्षानुसार होनेवाला सीमोल्लघन का कार्यक्रम हम नहीं कर सके, यह बात आपने देखी होगी। लोगों में प्रेम और भातृभाव निर्माण करने के हेतु से काम करनेवाले सघ पर यह आघात क्यों हुआ? आप इसका विचार अवश्य करें।

लेकिन सघ के काम में बाधा डालनेवाली शक्ति कोई भी हो, वे ध्यान में रखें कि सघकार्य रोकने का सामर्थ्य दुनिया की किसी भी ताकत में नहीं है। यह आघात करने का मुझे तो एक ही कारण दिखाई देता है। वह यह है कि हिंदू-समाज स्वय पर हुए अन्यायपूर्ण आक्रमण सह लेता है, उसपर हो रहे लगातार आघातों के बाद भी उसकी आँखें नहीं खुलतीं। ऐसा होने के कारण ही आघात करने वाले हिचकिचाते नहीं।

जो अकारण ही सत्प्रवृत्तिवाले सज्जनों पर आघात करता है, वह स्वय के लिए ही गड्ढा खोद रहा होता है। मनुष्य को देखते ही फुत्कार करना सर्प के पराक्रम का नहीं भय का द्योतक है। लेकिन हमारी दृष्टि तो 'ना भय देत काहू को, ना भय मानत आप' की है। किसी ने अपने घर में ताला लगाया, इसलिए उसके पडोसियों ने उससे नाराज होने का क्या कारण है? इसी मानसिकता के कारण सघकार्य की प्रगति को देखकर कुछ लोग दु खी होते हैं और इस प्रकार के आघात करते हैं। इससे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं।

जब-जब अपना समाज इस दशा को पहुँचा है, तब-तब समाज में अभिनव स्फूर्ति और शक्ति का सचार होकर, उसका पुनरुत्थान होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है।

इसी प्रकार की अपमानास्पद अवस्था आज से तीन सौ वर्ष पूर्व भी हुई थी। समाज की इतनी अवनति हुई थी कि समर्थ रामदास के मन में भी निराशा आ गई थी। परतु अपनी आँखों के सामने ही उन्होंने देश की

परिस्थिति में परिवर्तन देखा और धन्योद्‌गार प्रकट करते हुए कहा–

'उदउ जाल्ले पाणी, स्नान सध्या करावया।।
(अर्थात् अव पूजा–अर्चा शातिपूर्वक कर सकते हैं)'।

राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ समाज में प्रेम और एकता उत्पन्न कर उसे परमेश्वर का साक्षात्कार कराना चाहता है। किसी से द्वेष न रखनेवाले इस ईश्वरीय कार्य का किसी ने विरोध किया, तो उसे सफलता नहीं मिलेगी। सघ एक अमर और चिरतन तत्त्व का साकार रूप है। इसलिए इसे कोई मार नहीं सकता। सघ ने कभी सकटों की परवाह नहीं की, आगे भी नहीं करेगा। हम निरतर बढते ही जानेवाले हैं और वह दिन भी निश्चित आएगा, जब दुनिया हमारे सात्विक सामर्थ्य का चमत्कार देखेगी।

जो हिंदू सघ के बाहर हैं, उन्हें भी सघ पर होनेवाले आघातों का विरोध करना चाहिए। उन्हें दुनिया को दिखा देना होगा कि सघ में केवल एक लाख हिंदू ही नहीं हैं, २८ करोड हिंदू हैं। केवल सदिच्छा से कोई कार्य नहीं होगा। उसके लिए मानवीय प्रयासों की आवश्यकता होती है। आप सबको सघ में प्रत्यक्ष रूप से प्रवेश कर हिंदू-समाज की शक्ति को बढाना चाहिए।

ॐ ॐ ॐ

शस्त्रपूजन, १९४१

हमारा हिंदू-समाज जिस रूप में जीवन जीता रहा है, उसी प्रकार का जीवन आज की वर्तमान भीषण परिस्थिति में भी व्यतीत करता रहा, तो हिंदू-समाज किसे कहते थे, उसका क्या स्वरूप था, यह आगे आनेवाली पीढी को पता भी नहीं चलेगा। हमारा हिंदू-समाज व्यक्तिगत जीवन में इतना सलग्न है कि सामाजिक हित की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता।

हिंदू-समाज नाम का अस्तित्व तो है मगर वह असगठित अवस्था में है। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अग-प्रत्यगों की गठरी बाध देने से उसे 'शरीर' नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार बाजार में एकत्र होनेवाले लोगों के जनसमुदाय को 'समाज' नहीं कहा जा सकता। एक विचार, एक आचार से स्फुरित तथा एक सस्कृति एव एक धर्म से प्रेरित, किसी देश में एकत्र रहनेवाले लोगों के समूह को ही 'समाज' कहते हैं।

केवल वही समाज प्रभुत्व से जीवित रह सकता है, जिसके प्रत्येक घटक के अंतःकरण में समष्टि जीवन की भावना कूट-कूट कर भरी हो। परंतु हम एक विशाल हिंदू राष्ट्र के घटक हैं इस प्रकार के समष्टि जीवन की भावना का हिंदू-समाज में अभाव होने के कारण, प्रचंड जनसंख्यावाला होकर भी इस हिंदू-समाज को आज कोई पूछता तक नहीं। इसी कारण हमारे समाज का अंग-भंग हो गया है।

हिंदू-समाज के प्रति कुदृष्टि रखनेवाले समाज, मतांतरण कर अपनी शक्ति बढाने के काम में लगे हैं। यह देखकर भी हिंदू-समाज इससे बेखबर है कि मतांतरण के कारण अपनी समाज-शक्ति कम होती है। इतना ही नहीं तो इसे हमारे ही लोग जायज ठहराते हैं। यह हिंदू-समाज पुनः अपने वैभव में फूले-फले और सारा संसार इस समाज को 'हिंदू' नाम से पहचानने लगे, केवल इसी पवित्र भावना से प्रेरित होकर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कार्य कर रहा है। इसकी शाखाएँ समस्त भारतवर्ष के कोने-कोने में फैली हुई हैं। हिंदुओं को संगठित करने का यह कार्य सतत बढ रहा है, दृढ हो रहा है।

इस संसार में सामर्थ्यवान जीवित रहता है, निर्बल का मरना अपरिहार्य है। अतः शक्ति की उपासना करना हर एक समाज का आद्यकर्तव्य है। आज का कार्यक्रम इसी प्रकार की शक्ति-उपासना का एक प्रतीक है।

❦❦❦

विजयादशमी, १९४१

इसी विजयादशमी के शुभ प्रसंग पर स्वर्गीय डाक्टर हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना कर विशृंखलित हिंदू-समाज को संगठित करने का कार्य प्रारंभ किया था। संपूर्ण हिंदू-समाज को संगठित करने के इस कार्य को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इस भगवा ध्वज के नीचे सतत कर रहा है। आज चारों ओर भीषण परिस्थिति उपस्थित है। ऐसी अवस्था में संगठन के बिना बचना संभव नहीं है। हजारों वर्ष की अवनति चुटकी बजाते दूर नहीं हो सकती, संघ यह जानता है। पर इससे हम निराश नहीं हैं। हमारा पूर्ण विश्वास है कि हिंदू-समाज संगठित होकर अपने पूर्व गौरव को अवश्य प्राप्त करेगा।

विजयादशमी, १९४४

'हिंदू' कहने पर उसे विश्व में कोई मान्यता नहीं। 'हिंदू' कहने पर उसे केवल बदनामी ही सुननी पडती है। हिंदू अवनति अथवा ह्रास का पर्यायवाची शब्द हो गया है। इसलिए सर्व सामान्य हिंदू अपनी कुल-परपरा बताने में सकोच करता है। विचार करने पर ध्यान में आएगा कि राष्ट्र पर आई अनेक आपत्तियों के कारण अपना समाज गौरवपूर्ण अवस्था से अध पतित हुआ। उसकी हिम्मत और विश्वास टूट चुकने के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अवनति दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि उसके जीवन-चैतन्य का स्रोत ही नष्ट गया हो।

लोग इस दु स्थिति के अनेक कारण बताते हैं, जिनमें से कुछ पर तो विश्वास करना ही कठिन है। उनमें से एक कारण यह बताया जाता है कि हमारा तत्त्वज्ञान ही इस अवनति के लिए जिम्मेदार है। परतु जिस तत्त्वज्ञान के कारण असामान्य पराक्रम कर सामान्य जन में धैर्य व पराक्रमशीलता की प्रेरणा देनेवाले अपने श्रेष्ठ पुरुष निर्माण हुए वह तत्त्वज्ञान हमारी अवनति का कारण होना सभव नहीं। बाल-विवाह जैसी अनुचित रूढियाँ अपने पतन का कारण बनी कहना भी उचित नहीं जान पडता, क्योंकि इनके होते हुए भी ३०० वर्ष पूर्व तक अपने यहाँ पराक्रमी पुरुष हुए हैं। कुछ लोग अपनी समाज व्यवस्था, अर्थात् जातिप्रथा को दोषी बताते हैं। अपने पूर्वजों ने समाजहित के लिए जो कुछ किया उसके लिए उन्हें दूषण लगाने की मेरी इच्छा नहीं है, परतु लोग कहते हैं कि इस व्यवस्था के कारण एकसूत्रता विश्रृंखलित होकर परस्पर का सघर्ष हुआ। उसके परिणामस्वरूप समाज दुर्बल बना, किंतु इतिहास इस बात की गवाही नहीं देता। पृथ्वीराज चौहान को अपना राज्य व प्राण जाति-विद्वेष के कारण नहीं गँवाने पडे। इसका कारण उसका ससुर ही था। शिवाजी-पुत्र सभाजी को उसके मामा ने ही मुगल सम्राट औरगजेब को सौंपा। नारायणराव पेशवा का वध उसके चाचा-चाची के षड्यत्र का परिणाम था। जाति के कारण हुए सघर्ष के उदाहरण प्राचीन इतिहास में देखने को नहीं मिलते।

लोकहित और व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा अहकार के सघर्ष में जब व्यक्ति को महत्त्व दिया जाता है तब विवेक नष्ट होकर इस प्रकार की आत्मविनाशीवृत्ति उत्पन्न होती है। व्यक्तिगत हित के लिए लोकहित को छोडने के असख्य उदाहरण अपने सामने हैं। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति

को जब इस बात का विस्मरण हो जाता है कि वह समाज का एक अविभाज्य घटक है और इस कारण उस पर समाज का जो स्वाभाविक ऋण है, उसे उससे उऋण होना है, तब इस प्रकार के सकट आते हैं। यह कहा जा सकता है कि सारे सकट हिंदुओं ने स्वय होकर ओढ़े हुए थे। अत दोष अपना ही है।

इसलिए हिंदू के नाते दु ख भोगने का प्रसग आता है, उसके लिए अन्य किसी को दोष देना सर्वथा अनुचित है। मुझे विद्यार्थी जीवन की एक घटना याद आती है। एक दिन पास के ही कक्ष में रहनेवाले मित्र से मिलने जाते समय मैंने अपने कक्ष को ताला लगाया। यह देख दूसरा मित्र बोला, 'बगल के कक्ष में ही तो जा रहे हो, ताला लगाने की क्या आवश्यकता है?' मैंने कहा, 'किसी सज्जन की नीयत खराब हो— ऐसी दो-चार चीजें मेरे पास हैं। उनके मोह में कोई चोर बने और उसका पातक मेरे पर आए, यह इच्छा नहीं। इसलिए ताला लगाता हूँ।' इसी प्रकार अपने समाज पर आइ आपत्तियों के लिए हम ही दोषी हैं, अन्य कोई नहीं।

मूल दोष व्यक्तिनिष्ठ जीवन होना है, परतु पिछले सौ वर्षों से इस मूल दोष को दूर करने के स्थान पर उस मूल से उत्पन्न उपदोषों की चिकित्सा करने के ही प्रयास किए जा रहे हैं। इनके स्थान पर यदि मूल कारण को ही नष्ट कर दिया जाए, तब बाकी बातें अपने-आप ठीक हो जाएँगी। लेकिन समाजरूपी शरीर को कार्यक्षम बनाने के लिए अनेक लोगों को अपना सर्वस्व अर्पण करना होगा। एक भी अवयव ने शरीर से अलग रहने का विचार किया तो वह अवयव तो नष्ट होगा ही, साथ ही सपूर्ण शरीर को भी, कुछ मात्रा में क्यों न हो, दुर्बल कर देगा। मगर गत १२०० वर्षों से अपने समाज में ऐसा ही हो रहा है। इसलिए अपना समाज उत्तरोत्तर दुर्बल होता गया। इस दृष्टि से व्यक्ति ने केवल स्वय तथा अपने परिवार की चिता करना अयोग्य है। अपने व्यक्तिगत हित को एक ओर रखकर समाज-जीवन को प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति उत्पन्न होनी चाहिए। अपने को प्रत्येक की मन स्थिति इस प्रकार की बनानी है। यही सारी समस्याओं का निदान भी है।

मगर दिखने में उदात्त व बड़े-बड़े विचारों का बोलबाला है, पर इस अतिमहत्त्व के कार्य की ओर दुर्लक्ष्य है। यह खेदजनक वस्तुस्थिति है। बड़ी-बड़ी बातें भी किसी प्रकार की सत्ता अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त करने के उद्देश्य से ही की जाती हैं। इस कारण उनका व्यवहार नीतिमत्तापूर्ण नहीं

रहता। कुछ लोग जरूर वर्तमान स्थिति के प्रति चिंतित हैं, परंतु अपने समाज की समस्या यह है कि कोई दो लोग एकत्र होकर समान विचार करते नहीं, मिलकर काम करने की बात तो दूर रही। यदि किसी ने एक जैसे विचार प्रकट भी किए तो उसे मानसिक दासता का लक्षण माना जाता है। इसलिए संघ पर होनेवाले आरोपों में से एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि सारे स्वयंसेवक एक ही बात बोलते हैं। जबकि अपने यहाँ खुले मन से विचार प्रकट करने व काम करने की पूरी स्वतंत्रता है। मगर आरोप लगानेवाले इस बात की ओर ध्यान नहीं देते कि वे स्वयं कोई स्वतंत्र विचार प्रकट नहीं करते। कहीं न कहीं बाहर से उधार लिए किसी विचार को बिना सोचे-समझे, उपयुक्तता की चिंता किए बिना, तोते की भाँति बोलते हैं। किंतु बौद्धिक दासता का आरोप दूर करने के लिए हम घोडे को गधा तो नहीं कह सकते।

अन्य अनेक संस्थाएँ भी प्रामाणिकता से काम कर रही हैं, किंतु उन्हें व्यक्तिगत अहंकार की समस्या का प्रकर्ष से सामना करना पड रहा है। बिना किसी बात अथवा बिना किसी कारण के बडे-बडे पदाधिकारी अच्छी-भली संस्थाओं को तोड देते हैं। इन आपसी मत-भिन्नताओं अथवा संघर्षों के समाचार वृत्त-पत्रों में प्रमुख रूप से प्रकाशित कराए जाते हैं। इस कारण सामाजिक क्षेत्र का वातावरण दूषित होता जा रहा है और ईमानदारी से समाज-सेवा करनेवालों को काम करना कठिन होता जा रहा है। वे अयशस्वी हो रहे हैं। वास्तविक संघर्ष विचारों का न होकर अहंकारों का है। उनको जामा जरूर सिद्धांतों का पहनाया जाता है। संघ में यह समस्या नहीं है, पर सावधान रहने की आवश्यकता जरूर है। अपनी प्रामाणिकता ही समाज कार्य के प्रति लोगों में विश्वास निर्माण करेगी।

संघकार्य का निरंतर प्रगति के पथ पर बढ रहा है, फिर भी कार्य के विकास की गति काफी धीमी है। इसे अधिक तीव्रता से करना अपनी जिम्मेदारी है। अधिक देरी समाज के लिए आत्मघातक होगी। जागतिक परिस्थिति में बहुत तेजी से परिवर्तन होता दिखाई दे रहा है। ऐसे में प्रत्येक को यह संकल्प लेकर कार्य के लिए आगे आना चाहिए कि 'मैं अपने इस प्राचीन हिंदू-समाज को नष्ट नहीं होने दूँगा।' संघकार्य को अधिक से अधिक लोगों का सहकार मिलेगा, अपना समाज एक बार फिर चैतन्य से परिपूर्ण होकर दृढता के साथ सम्मान को प्राप्त करेगा ऐसा विश्वास है।

फ फ फ

शस्त्रपूजन, १९४५

केवल बातें बनाने या इच्छा प्रकट करने से कोइ काम हो नहीं सकता। समाजोन्नति जैसा महान कार्य तो कदापि नहीं हो सकता। स्थिति चिंताजनक है, सामने अडचनों के पहाड खडे हैं। इसलिए रोने-धोने, हडबडी मचाने या निराश होकर चुप बैठने से कुछ नहीं होगा। कई लोग प्रश्न करते हैं कि जब किसी तरह की साधन-सामग्री हमारे पास नहीं है, तब देश की उन्नति हम कैसे कर सकेंगे? समाज को नष्ट-भ्रष्ट करनेवालों के पास इतने अधिक और भयानक साधन हैं कि उनका स्मरण करके ही हृदय कॉप उठता है। घनघोर ऑधी, तूफान, मेघ-गर्जन और बिजली की चौंध से जिस तरह मनुष्य भयभीत होता है, उसी तरह की चौंध और निराशा ने आज लोगों को घेर रखा है। कहीं आशा दिखाई न देने और उन्नति की साधन-सामग्री न होने से सर्वत्र अधकार और निराशा छा गई है। जहाँ-तहाँ हताशा की मनोवृत्ति फैली हुई है। पर हताशा की मनोवृत्ति तो मनुष्यता के लिए लाछन है। मनुष्य-निर्मित सकटों से डरना मनुष्य को शोभा नहीं देता।

हम विश्वास करते हैं कि अपने अत करण की दृढता और मन की शक्ति के भरोसे सफलता पा लेंगे। सकट तो जैसे आते हैं, वैसे जाते भी हैं, हमेशा के लिए रह नहीं सकते। हमें विश्वास होना चाहिए कि सकटों को परास्त करके हम चिरजीवन प्राप्त करके ही रहेंगे। हताश हिंदू-जाति में आशा का जीवन फूँक देने की आज आवश्यकता है। हिंदुओं की वर्तमान दयनीय अवस्था और लाछित जीवन देख कर प्रत्येक सहृदय मनुष्य को दु ख होगा। प्रतिदिन के जीवन में दिखाई देनेवाली हर प्रकार के अपमान की घटनाओं से दिल दहल उठता है। ऐसा मालूम होता है, मानो भगवान ने इस जाति से मुँह मोड लिया हो।

फिर भी हमें निराशा, चिंता अथवा दु ख का अनुभव करने का कोई कारण नहीं है। सकटों से हमें डरना नहीं चाहिए। सकट में ही तो मनुष्य की मनुष्यता व पौरुष परखा जाता है। हमें धीर-गभीर रहना चाहिए। अमर परपरा पर श्रद्धा रखनेवालों को यह सोचकर अपनी हिम्मत बनाए रखनी चाहिए कि हमारी धर्म-परपरा की रक्षा करनेवालों पर अतीत में कितने ही आघात हुए कितने ही आक्रमण हुए पर उन सबपर विजय पाकर हमारी जाति आज भी केवल जीवित ही नहीं, अपितु चैतन्यमयी है।

दूसरी जातियाँ ससार से मिट गई, परतु हम ज्यों के त्यों बने हुए हैं। इसी आशावाद को लेकर हम चलें। हमें अपने को पौरुष की कसौटी पर कसकर चिरजीवन प्राप्त करना है। बुद्धि को स्थिर रखें, हिम्मत से काम लें, तभी सफलता मिलेगी।

इतिहास का सिद्धात है कि अदम्य आशावाद के साथ अपने सिद्धातों पर अचल श्रद्धा रखते हुए गभीरतापूर्वक शक्ति-सपादन करनेवाला समाज ही उन्नति और गौरव को प्राप्त कर सकता है। सघ ने बहुत कुछ सोच-विचारकर एक निश्चित मार्ग सम्मुख रखा है, जिस पर अग्रसर होने से एक तेजस्वी और बलशाली समाज निर्मित होगा और हमारा मस्तक ऊँचा हो सकेगा। लोग कहते हैं कि हिंदू मरणासन्न जाति है, पर उनकी यह सरासर भूल है। यद्यपि आज समाज को ग्लानि सी आ गई है, पर वह मृत्यु की अतिम अवस्था नहीं है।

लोग भूल जाते है कि हिंदू जाति को न कभी बुढापा आ सकता है और न कभी वह मर ही सकती है। यह तो चिरतन तरुण रहनेवाली तेजस्वी और अमर जाति है। आज तक इस जाति पर सकटों के अनेकों पहाड टूटे, पर उन्हें दूर कर यह महान जाति जीवित रही और आगे भी जीवित रहेगी।

रावण पर भगवान रामचद्रजी ने विजय पाई थी। उसके उपलक्ष्य में विजयादशमी का महोत्सव मनाया जाता है। रावण एक महापराक्रमी, महाबलशाली राक्षस था। ससार को पीडा देनेवाले नवग्रह, बडे-बडे राजा-महाराजा, वीर पुरुष और देवता भी रावण से डरते थे। सारी भौतिक सहारक शक्ति उसके पास थी, पर उसे हराया ऐसे वानरों ने, जिन्हें जगली कहते हैं, जिनके पास सिवाय पेड व पत्थरों के कुछ भी अस्त्र-शस्त्र नहीं थे। उन्हें सगठित कर उन्हीं के हाथों प्रभु रामचद्र जी ने रावण को हराया। रावण की भौतिक शक्ति इस सगठित शक्ति का मुकाबला नहीं कर सकी। नाश रावण का हुआ, भारतीय समाज, धर्म और सभ्यता का नहीं। श्रद्धा, आशा और उत्साह भरा सगठित बल यदि देश में निर्माण कर सकें, तो सारे सकटों को हँसते-खेलते ठुकरा सकेंगे। यही विजयादशमी का सदेश है।

इसी सदेश की पूर्ति हेतु सघ-शाखाओं का विस्तार आसेतु हिमाचल फैला हुआ है। हमें व्यक्तिगत जीवन की वासनाओं और मोहों को परे रखकर, स्वत के प्रति निष्ठुर होकर कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होना है। रास्ते

में रुकावटे क्यों न खडी हों, वैचारिक सघर्ष क्यों न दिखाई देते हों, उनसे विचलित न होते हुए, सघ की तर्क-शुद्ध कार्यप्रणाली ठीक-ठीक समझकर, स्थिर भाव से यदि हम आगे कदम बढाएँ, तो एक विशेष प्रकार का तेजस्वी वातावरण पैदा होगा, जिसके फलस्वरूप हमारे प्राचीन हिंदूराष्ट्र की विजयपताका पुन फहराती नजर आएगी। हिदूराष्ट्र की विजय-ध्वनि से आकाश गूँज उठेगा। ससार की सभी सभ्यताओं की जननी यह भारतीय सभ्यता और सबसे प्राचीन हिदू जाति पुन गौरवमयी होगी।

भारतवर्ष का प्रतीक हिमालय है, उसकी तरह हमें आँधी, तूफानों और अधेरे में डटकर खडे रहना चाहिए। मुझे विश्वास है कि यदि हम इस आशा और श्रद्धा से आगे बढे कि हम अपनी हिदू जाति, सभ्यता तथा पूर्वजों की परपरा को ऊँचा ही रखेंगे। तब वह स्वर्ण दिन दूर नहीं होगा, जब हम अपने आदर्श की सफलता स्वय अपनी आँखों से देखेंगे। इसी तरह उसको दिनोदिन विराट स्वरूप प्राप्त होता चला गया तो हम अपने उद्देश्य को आसानी से प्राप्त कर लेंगे। 11943

विजयादशमी, १९४५

२० वर्ष पूर्व जब सघ का जन्म हुआ, तब यह बात तो नहीं थी कि भारतवर्ष में कोई दूसरी सस्था थी ही नहीं। कितनी ही सस्थाएँ देश में अपने-अपने पथ पर चलकर, अपने-अपने ढग से काम कर रही थीं, परतु 'हिंदुस्थान हिदुओं की स्वाभाविक जन्मभूमि, कर्मभूमि तथा पुण्यभूमि है' — इसका ध्यान किसी को भी नहीं था। इस बात का विस्मरण ही हो गया था। अपनी प्राचीन सस्कृति, सभ्यता, इतिहास आदि को भुलाकर नए सिरे से लोग काम करने निकले, मानो यहाँ पहले कभी कुछ था ही नहीं। विद्वान् लोग कहते थे— हमारा राष्ट्र अभी बनने जा रहा है। प्राचीनकाल से भारतवर्ष में एक सभ्य समाज है और यह स्वय एक महान राष्ट्र है, इसका ज्ञान लुप्त-सा ही हो गया था। अपने अतीत को हम भूल गए थे, उससे हमें घृणा होने लगी थी। हमें हिदू' नाम से भी घृणा हो गई थी, परतु जो मनुष्य अपने अतीत से घृणा करता है वह अपना भविष्य कदापि नहीं बना सकता।

हिदुओं की यह प्रवृत्ति एक अतीव भव्य सस्कृति का विनाश करने

की प्रवृत्ति है। हमारी सस्कृति विशाल है। जो केवल मनुष्य को ही नहीं, अपितु अखिल चराचर सृष्टि को आत्मवत मानती है। हमारे सस्कृति स्थापक ऋषि-मुनियों ने और महापुरुषों ने दूसरों को अवश्य अपनाया है, पर अपने आत्मीयजनों को ठुकरा कर नहीं। 'स्वय जीवित रहो और दूसरों को भी रहने दो' की नीति पर भारतीय चलते थे।

अपना सब कुछ दूसरों को दे देना हमेशा ही मूर्खता नहीं हो सकती। मात्र असामयिक उदारता मूर्खता होती है। उसमें लाभ नहीं, आत्मघात है।

हम समझने लगे हैं कि केवल गत सौ वर्ष से ही हमें नया ज्ञान होने लगा है, उसके पहले देश में अधकार था। लोग कहते हैं कि अब देश में जागृति आ रही है, परतु जागृति है कहाँ? भविष्य का जीवन अतीत से भी गौरवमय बनाने की आकाक्षा से जग उठना और उस ढाँचे में अपना जीवन ढालने के लिए तडपना जागृति का वास्तविक निकष है। आज दिखाई देनेवाले जिस कोलाहल, गडबड, दौडधूप को हम जागृति समझते हैं, वह तो स्वप्नमात्र है। स्वप्न की बातें जाग्रत होने पर उपयोगी नहीं होतीं।

नि स्वार्थ ध्येयप्रवणता बहुत कम दिखाई देती है। नि स्वार्थ भाव से देशकार्य के लिए अपना जीवन लगा देने का निश्चय कितने अत करणों में है? कुछ जीव तो अवश्य अच्छे होंगे, परतु बहुतेरों की केवल शाब्दिक पटुता ही होती है। उनके शब्द और जीवन में मानो कुछ सबध है ही नहीं। स्थिर बुद्धि से विचार कर अपने जीवन को कार्य से ओतप्रोत करने के लिए अपने में आवश्यक परिवर्तन करते हुए अपना जीवन विशाल व समाजव्यापी बनाने का प्रयत्न होता नहीं। हम देखते हैं कि कार्य के लिए इकट्ठा होनेवाले लोग आपस में लड-भिडकर अलग हो जाते हैं। व्यक्तिगत अहकार और स्वार्थ सर्वत्र दिखाई देता है। व्यक्तिनिरपेक्ष कार्य दिखता नहीं। यह जागृति नहीं, अधकार है। मेरा समाज मेरा देव है, मेरा ध्येय है— यह भाव दिखाई नहीं देता। यद्यपि कोलाहल और गडबडाहट बढ रही है, किंतु हम अपनी प्राचीन परपरा से क्रमश एक-एक कदम पीछे हट रहे हैं।

ऐसी अवस्था में बीस वर्ष पूर्व सघ इसलिए पैदा हुआ कि हर एक हिदू हिदूपन, अपने हिदूगौरव हिंदूजीवन [illegible] इतिहास का अभिमान करे, अपने को हिदू [illegible]। [illegible] गाली तो है नहीं कि हम उस शब्द से [illegible]।

५

हमारे समाज में एक राष्ट्र विघातक दुर्गुण है, वह है प्रांतीयता का। हमारी बडी-बडी सस्थाओं पर भी प्रातीयता का भूत सवार है। हमारे बडे-बडे नेता भी उसके शिकार हो गए हैं। प्रातीयता का विष हमारे दिलों में काफी गहराई तक जा पहुँचा है।

सघ-जीवन में विष नहीं, अमृत है। उस अमृत को हृदय में लिए सघ शाति के साथ चुपचाप अपने कार्य में व्यस्त है। सघ का कार्य आज अक्षरश आसेतु हिमाचल फैला हुआ है। उसकी शाखाएँ कोलकाता से कराची तक हर प्रात मे कार्य कर रही है। सघ में प्रातीयता का नाम तक नहीं है। व्यक्ति के मन की विशालता बढाने का सघ एक बडा भारी कारखाना है। यहाँ कोई हडबडाहट नहीं, कोई कोलाहल नहीं। शातचित्त से सच्ची जागृति यहाँ निर्माण हो रही है। सोच-समझकर क्रमबद्ध रूप से यहाँ काम होता है।

आत्मविस्तृति का जीवन घृणास्पद है, अत इस विपरीत मनोवृत्ति को उचित मार्ग पर ले जाना सच्चा कार्य है।

हमारे पवित्रतम ध्वज की शान ससार में बढाने के कार्य में हजारों लोग ही क्या, पीढियाँ भी बलिदान हुई तो भी कोई आपत्ति नहीं। भविष्य में ऐसा समय अवश्य आएगा, जब हिंदू मात्र को इस महान राष्ट्रीय ध्वज के नीचे खडा होना ही पडेगा। हम अपने देश में अपने समाज का गौरव चाहते हैं। उस भारत का चित्र हम देखते हैं, जिसमें हिंदू जाति गौरवमयी हो। जिस भारत में हिंदू-समाज की प्रतिष्ठा, सम्मान, वैभव न रहे वह भारतवर्ष ही क्या? भारतवर्ष को सच्चा भारतवर्ष बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दूसमाज इस भारतवर्ष में वैभवशाली बना रहे, यह महान ध्वज आसिंधु-हिमालय गौरव से फहरे।

मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे जो हिंदू भाई आज हमसे दूर दिखाई देते हैं, वे भी अत में इस दिव्य ज्योति की ओर ही आकर्षित होंगे। सभी भूले-भटके हिंदुओं को आखिर सघ को ही अपनाना होगा, सघ के ही कदम पर चलना होगा। वे भाई जितने शीघ्र इधर आकर्षित होंगे, हमारा भाग्यसूर्य उतना जल्दी उदित होगा। इर्द-गिर्द उठनेवाली धूल और कोलाहल से बचकर हिंदूसमाज आत्मगौरव की भावना को लेकर जब सगठित रूप से खडा हो जाएगा, तब हमारा विराट स्वरूप देखकर, हमें निगल जाने की कल्पना तक हमारे शत्रुओं को छू न सकेगी। बीस वर्ष से चलनेवाले इस

की प्रवृत्ति है। हमारी सस्कृति विशाल है। जो केवल मनुष्य को ही अपितु अखिल चराचर सृष्टि को आत्मवत मानती है। हमारे र स्थापक ऋषि-मुनियों ने और महापुरुषों ने दूसरों को अवश्य अप पर अपने आत्मीयजनों को ठुकरा कर नहीं। 'स्वय जीवित रहो औ को भी रहने दो' की नीति पर भारतीय चलते थे।

अपना सब कुछ दूसरों को दे देना हमेशा ही मूर्खत सकती। मात्र असामयिक उदारता मूर्खता होती है। उसमें आत्मघात है।

हम समझने लगे हैं कि केवल गत सौ वर्ष से ही इ होने लगा है, उसके पहले देश में अधकार था। लोग कहते हैं में जागृति आ रही है, परतु जागृति है कहॉ? भविष्य का ज भी गौरवमय बनाने की आकाक्षा से जग उठना और उस जीवन ढालने के लिए तडपना जागृति का वास्तविक ि दिखाई देनेवाले जिस कोलाहल, गडबड, दौडधूप को हम ज वह तो स्वप्नमात्र है। स्वप्न की बातें जाग्रत होने पर उ

नि स्वार्थ ध्येयप्रवणता बहुत कम दिखाई देती है देशकार्य के लिए अपना जीवन लगा देने का निश्चय ि है? कुछ जीव तो अवश्य अच्छे होंगे, परतु बहुतेरों की ही होती है। उनके शब्द और जीवन में मानो कुछ र बुद्धि से विचार कर अपने जीवन को कार्य से ओतप्र में आवश्यक परिवर्तन करते हुए, अपना जीवन बनाने का प्रयत्न होता नहीं। हम देखते हैं कि का लोग आपस में लड-भिडकर अलग हो जाते हैं स्वार्थ सर्वत्र दिखाई देता है। व्यक्तिनिरपेक्ष कार्य नहीं, अधकार है। मेरा समाज मेरा देव है, मेर नहीं देता। यद्यपि कोलाहल और गडबडाहट र प्राचीन परपरा से क्रमश एक-एक कदम पी

ऐसी अवस्था में बीस वर्ष पूर्व सघ हिंदू हिंदूपन, अपने हिंदूगौरव, हिंदूजीवन, अभिमान करे, अपने को हिंदू समझे। नहीं कि हम उस शब्द से हम घृणा करने

विजयादशमी, १९४९

गत हजार वर्ष के इतिहास में कितने ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जब धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य का द्वद्व हमारे मन में चलता रहा और किस अवसर पर क्या करना उचित होगा, इसका निश्चय करने में हमारे समाज के नेता असमर्थ रहे। उनके मन में सदैव सदेह उठता रहा।

जब महमूद गजनवी सोमनाथ का मदिर तोडने के लिए सेना लेकर आगे बढा, तब रास्ते में उसको कई हिंदू राजा-महाराजा अवश्य ही मिले होंगे, पर उसको रोके या न रोके, इस दुविधा में ही वे रहे, क्योंकि ऊपर से वह मित्रता की मीठी बातें करता था। अत महमूद से लडें या न लडें, इस बारे में वे सदेह में पड गए। हमारे लोगों की मनोवृत्ति अभी भी डाँवाडोल हो जाती है। उनके मन में भ्रम पैदा हो जाता है।

रामायण में एक बडी सारगर्भित कथा है। लका के युद्ध में रावणपुत्र मेघनाद को मारकर लक्ष्मण ने मेघनाद का सिर अपने शिविर में लाकर रखा। मेघनाद की स्त्री सुलोचना पति के साथ सती हो जाना चाहती थी, पर मेघनाद का सिर न मिलने से वह बडी दु खी थी। जब उसे मालूम हुआ कि मेघनाद का सिर रामचद्र जी के शिविर में है, तब रामचद्र जी से कहलाकर पति का सिर वापस लाने की आशा से सुलोचना स्वय रामचद्र जी की सेना में आई। किसी सुदर स्त्री को दूर से आती हुई देख सैनिकों की धारणा बनी कि जिन सीता देवी को रावण की कैद से छुडाने के लिए हम लड रहे हैं, वे सीता माई स्वय अपने पैरों आ रही हैं। सेना में बडा हर्ष फैल गया। सभी ने समझा कि सीता जी आ गई। अब लडने का काम नहीं रहा, पर श्रीरामचद्र जी जरा भी उत्तेजित नहीं हुए न ही उन्होंने अपना स्थान छोडा। शात भाव से सेना के इस भ्रम को दूर करते हुए कहा– 'सीता जी रावण की बदीशाला में ही हैं। रावण अभी अपने दस मुखों और बीसों हाथों सहित जीवित है। हमें उसे मारकर, उसकी छाती पर पैर रखकर ही लका में जाना होगा और सीताजी को छुडाना होगा। हम किसी भ्रम में न रहें।' इस रामायणीय कथा का सार लोग अपनी बुद्धि के अनुसार समझ लें।

दूसरा उदाहरण महाभारत का है। कुरुक्षेत्र में कौरव-पाडवों की सेनाओं के बीच अर्जुन का रथ पहुँचते ही अर्जुन सहसा सम्मोह में पड गया। सामने गुरु, बधु, पिता, पुत्र खडे थे। अर्जुन वीर था, कायर नहीं।

कार्य को काया-वाचा-मनसा श्रद्धा के साथ अपनाकर हमारे सव स्वयसेवक, फिर वे व्यक्तिगत जीवन के किसी भी कार्य में लगे हों, वह दिन शीघ्र लाएँगे, जव हम उन्नत-मस्तक किए ससार के सम्मुख गौरव से खडे हो सकेगे।

ि ि ि

शस्त्रपूजन, १९४६

आज सब लोग मानने लगे हैं कि समाज को सगठित और बलशाली होना चाहिए। पर यह बात सघ के निर्माता ने वर्षो पूर्व घोषित की और इसी नगर में इस कार्य की नींव रखी। इस अच्छे कार्य पर टीका-टिप्पणी करनेवाले लोग समाज में हैं। सत तुकाराम और ईसा मसीह जैसे महापुरुषों ने वडे ही शुद्ध, पवित्र ओर सात्विक विचार ससार के सामने रखे, परतु उनकी वुराई करनेवाले लोग भी थे। फिर बेचारे सघ को कोई दोप लगाए, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। परतु इसमें उनका भी कोई दोप नहीं है। दर्पण में देखनेवाले को अपनी ही प्रतिमा भद्दी दिखाई देती है, इसमें दर्पण का कोई दोप नहीं होता। दोप होता है देखनेवाले का। यदि कोई शुद्ध भाव से सघ की ओर देखेगा, तव उसे दिखाई देगा कि सघ हिदुओं के उत्थान का प्रयत्न करनेवाली एक प्रेमरूप सात्विक शक्ति है।

सघ अपनी आलोचना से क्षुब्ध हुए विना अविचलित भाव से काम करता रहता है। वह अपना काम करते हुए अपने उद्देश्य की ओर बढना ही जानता है, किसी के रोके से वह रुकनेवाला नहीं है। हर प्रात में सघ का काम वढ रहा है। प्रसिद्धिपराङ्मुख होने के कारण लोगों को सघ के कार्यविस्तार का ठीक-ठीक पता नहीं होता।

यदि कोई ऐसा प्रश्न करे कि देश में सगठित शक्ति निर्माण करने की आवश्यकता है क्या? तो मैं तो कहूँगा कि उसे उत्तर देने कि आवश्यकता नहीं है। समाज-धारणा के लिए शक्ति की आवश्यकता स्वयसिद्ध है और हर कोई इस स्पष्ट सत्य को खूव अच्छी तरह जानता है। सघ के स्वयसेवक के साथ ही हर दल, हर प्रात, हर जाति और हर भाषा के सहृदय हिंदू सज्जन शक्ति निर्माण के इस कार्य में सहयोग देते हैं।

ि ि ि

विजयादशमी, १६४६

गत हजार वर्ष के इतिहास में कितने ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जब धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य का द्वद्व हमारे मन में चलता रहा और किस अवसर पर क्या करना उचित होगा, इसका निश्चय करने में हमारे समाज के नेता असमर्थ रहे। उनके मन में सदैव सदेह उठता रहा।

जब महमूद गजनवी सोमनाथ का मदिर तोडने के लिए सेना लेकर आगे बढा, तब रास्ते में उसको कई हिंदू राजा-महाराजा अवश्य ही मिले होंगे, पर उसको रोके या न रोके, इस दुविधा में ही वे रहे, क्योंकि ऊपर से वह मित्रता की मीठी बातें करता था। अत महमूद से लडें या न लडें, इस बारे में वे सदेह में पड गए। हमारे लोगों की मनोवृत्ति अभी भी डॉवाडोल हो जाती है। उनके मन में भ्रम पैदा हो जाता है।

रामायण में एक बडी सारगर्भित कथा है। लका के युद्ध में रावणपुत्र मेघनाद को मारकर लक्ष्मण ने मेघनाद का सिर अपने शिविर में लाकर रखा। मेघनाद की स्त्री सुलोचना पति के साथ सती हो जाना चाहती थी, पर मेघनाद का सिर न मिलने से वह बडी दु खी थी। जब उसे मालूम हुआ कि मेघनाद का सिर रामचद्र जी के शिविर में है, तब रामचद्र जी से कहलाकर पति का सिर वापस लाने की आशा से सुलोचना स्वय रामचद्र जी की सेना में आई। किसी सुदर स्त्री को दूर से आती हुई देख सैनिकों की धारणा बनी कि जिन सीता देवी को रावण की कैद से छुडाने के लिए हम लड रहे हैं, वे सीता माई स्वय अपने पैरों आ रही हैं। सेना में बडा हर्ष फैल गया। सभी ने समझा कि सीता जी आ गई। अब लडने का काम नहीं रहा, पर श्रीरामचद्र जी जरा भी उत्तेजित नहीं हुए, न ही उन्होंने अपना स्थान छोडा। शात भाव से सेना के इस भ्रम को दूर करते हुए कहा- 'सीता जी रावण की बदीशाला में ही हैं। रावण अभी अपने दस मुखों और बीसों हाथों सहित जीवित है। हमें उसे मारकर, उसकी छाती पर पैर रखकर ही लका में जाना होगा और सीताजी को छुडाना होगा। हम किसी भ्रम में न रहें।' इस रामायणीय कथा का सार लोग अपनी बुद्धि के अनुसार समझ लें।

दूसरा उदाहरण महाभारत का है। कुरुक्षेत्र में कौरव-पाडवों की सेनाओं के बीच अर्जुन का रथ पहुँचते ही अर्जुन सहसा सम्मोह में पड गया। सामने गुरु, बधु, पिता, पुत्र खडे थे। अर्जुन वीर था, कायर नहीं।

लडाई के मैदान से भागना नहीं चाहता था, पर निवृत्ति भाव से शस्त्र रख वहीं प्राण छोडना चाहता था।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्र शस्त्रपाणय ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतर भवेत्।।
(गीता १-४६)

आज भी देश में वही परिस्थिति है। अर्जुन की तरह भारतीय हिंदू-समाज कर्म-अकर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य के सम्मोह में पड गया है। देश में सर्वत्र किंकर्तव्यविमूढता का वातावरण फैला हुआ है। क्या करें, किसको भाई कहें, किसके गले मिले, क्या अरब सागर में कूद पडें और वहीं चिरशाति का अनुभव करते सोते रहें। आखिर करें क्या? इस प्रकार के झमेले में लोग पड गए हैं। क्या अप्रतिकार से काम बनेगा?

शस्त्र न उठाने की अप्रतिकार की भाषा का सर्वत्र प्रयोग हो रहा है। अर्जुन तो वीर था, पर मैं कदापि मान नहीं सकता कि प्रतिकारहीनता की वर्तमान भाषा वीरताजन्य है। इसमें केवल कायरता और आत्मवचना मात्र है। क्या वर्तमान सघर्षमय जीवन में अप्रतिकार के भाव से देश का कल्याण होगा?

सघर्ष अनिवार्य है। एक हाथ से ताली भले ही न बजती हो, चुटकी तो बज सकती है। आप भले ही प्रतिकार न करें, जो लोग आक्रमण करने पर उतारू हैं, वे अपना दुष्ट कार्य बद थोडे ही करनेवाले हैं।

काली के मदिर में बलि चढाई जानेवाली भेड-बकरी अप्रतिकार की साकार मूर्ति है, जो बिना किसी प्रकार के प्रतिकार के हत्यारे की छुरी के नीचे गर्दन झुकाती है। हत्यारा यह कभी नहीं सोचता कि इस बेचारे निष्पाप, निर्दोष जीव की हत्या न करूँ।

बकरी के बदले शेर को मारकर देवी को भोग चढाने की कल्पना तक उस हत्यारे के मन को छूती नहीं। निर्बल अजापुत्र ही देवता को बलि चढाया जाता है। मनुष्य भी बकरी का ही मास बडे चाव से खाते हैं। यह है फल अप्रतिकारी मनोवृत्ति का। मैं मानता हूँ कि हम स्वत होकर दूसरों को कभी पीडा न दें, पर साथ ही दूसरों से स्वत को पीडा भी न होने दें। स्वत को पीडा देना भी तो अधर्म है।

इन सब बातों को देखकर तथा सोच-विचारकर सघ ने हिंदुओं के

सास्कृतिक पुनर्जीवन का कार्य हाथ में लिया है। निर्वलता, कायरता, अकर्मण्यता और व्यामोह से समाज को मुक्त कर सगठन और वलोपासना के पथ पर ले जाने का व्यवस्थित प्रयत्न सघ कर रहा है। वलोपासना की उपनिपद्-प्रणीत घोपणा ही सघ ने की है। ऊपरी भेदभावों को भूलाकर हिदू-समाज जव तक अपनी आतरिक एकात्मता को नहीं पहचानता, तव तक न तो वह आत्मविश्वास प्राप्त कर सकता है और न अपना प्राचीन गौरव।

पहले हम स्वत वलवान बनें और फिर दूसरे वलवानों की मित्रता प्राप्त करने की आशा करें। हम तो सारे ससार को आलिगन देने को तैयार हैं। समस्त विश्व से मित्रता करने का आदेश हमारी हिदू सस्कृति हमें देती है, पर उसके लिए पहले हमें स्वत वलवान बनना होगा।

आज तो यह हो रहा है कि हम अपनी दुर्वलता का भार दूसरों के कधे पर लाद देना चाहते हैं। पर हम ऐसा क्यों करें? बलहीनों की मित्रता कौन चाहेगा? हमारी वर्तमान हीन, दीन, अपमानित परिस्थिति के लिए हमारी दुर्वलता ही जिम्मेदार है। अत हम अपनी दुर्वलता दूर करके अपने कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म को समझते हुए सभ्रमरहित और निर्भय होकर चलें।

हमको भ्रम में डालने के लिए दूसरे लोग हमारे सामने धर्म-अधर्म, नीति-अनीति आदि का बवडर खडा कर देते हैं। अधर्म तथा अनीति से चलनेवालों को हमें धर्म और नीति का पाठ सिखलाने का कोई अधिकार नहीं। कर्णार्जुन युद्ध के समय भगवान कृष्ण ने कर्ण को यही कहा था— 'अधर्म का आचरण करते समय तुम्हें धर्म की याद क्यों नहीं आइ?'

दूसरों के वहकावे में न आकर हमें अपनी शुद्ध बुद्धि से हर एक प्रश्न का स्वत निर्णय करना चाहिए और धर्म-अधर्म क्या है, यह समझ लेना चाहिए। इसके लिए हम आत्मविश्वास के साथ वलोपासना करें, जिससे हमारे सारे प्रश्न हल हो सकेंगे। आत्मविश्वास और वलोपासना से ही हमारा सामाजिक, राष्ट्रीय जीवन पुष्ट होगा।

हमारा विश्वास है कि आत्मरक्षा का प्रकृतिसिद्ध अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को तथा व्यक्ति-समुच्चय से बनने वाले समाज को भी है। पिछले दिनों मैंने समाचार-पत्रों में एक अद्‌भुत वक्तव्य पढा था, जिसमें यह कहा गया था कि 'व्यक्ति या समाज की रक्षा का अधिकार किसी व्यक्ति या

समाज का न होकर सरकार का है। किसी से आक्रमण होने पर भी कोई व्यक्ति कानून अपने हाथ में न ले।' व्यक्ति तथा व्यक्ति-समूह का आत्मरक्षा का अधिकार कानून ने माना हुआ है। अगर कोई हमपर आक्रमण कर दे, तब क्या हम पुलिस के आने की राह देखते हुए चुपचाप बैठें? आत्मरक्षा की कोई चेष्टा न करें? यह कहाँ तक सही होगा? आत्मरक्षा का प्रकृतिसिद्ध अधिकार प्रत्येक व्यक्ति और समाज का है।

भारतीय सभ्यता ने हमें आत्मरक्षा के लिए दूसरों का मुँह ताकना कभी नहीं सिखाया। 'क्लैब्य मा स्म गम पार्थ'– यह गीता का संदेश है। परावलंबिता और भीरुता हमारा सत्यानाश कर देगी। हमारी शक्ति, आत्मविश्वास और श्रद्धा इतनी प्रभावशाली हो कि जितनी अधिक कठिनाइयाँ हमारे रास्ते में आएँगी, उतना ही हमारा उत्साह बढेगा। वृक्ष को काटने पर वह और भी तेजी से बढता है। हमारी श्रद्धा और विश्वास भी ठीक इसी प्रकार सकट के समय द्विगुणित हो। हमारे सघ-सस्थापक ने हमारे अदर जो श्रद्धा, विश्वास और सस्कार निर्माण किए हैं, वे अमिट हैं। हमारी दृढ श्रद्धा है कि भगवान हमारे साथी हैं। उनके हमारे साथ होने का अनुभव भी हम प्रतिदिन करते हैं।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि सगठन को ही समाज का प्राकृतिक जीवन समझकर तथा स्वय उस सगठन का एक हिस्सा बनकर उसके कल्याणकारी उद्देश्यों की पूर्ति में अपनी सारी शक्ति लगाए। सघ का तो पहले से ही सबको निमत्रण है। समाज सेवा के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति का स्वागत सघ सहर्ष करेगा। हम सब एक व्यवस्थित सगठन-सूत्र में बद्ध होकर अपने ध्येय की प्राप्ति करें।

ॐ ॐ ॐ

विजयादशमी, १९४७

कई लोग सघ पर निष्क्रियता का आरोप लगाते हैं और साथ ही 'राष्ट्रद्रोही' भी कहते हैं। सघ यदि निष्क्रिय है, तो वह किसी का द्रोह कैसे कर सकेगा? एक अग्रेजी समाचार-पत्र ने पजाब प्रात की पीडित हिंदू जनता के दु ख-निवारण का श्रेय सघ को मिला देख, उस पर 'दुर्भाग्यशाली, परतु सत्य'– ऐसा अभिमत दिया है। इसी प्रकार अन्य पक्षोपपक्षों को सघ का विरोध करने की इच्छा रहती है। सघ की जनप्रियता को देखकर उन्हें लगता है कि यदि यह चुनाव के अखाडे में उतरा तो हमारा क्या होगा।

अच्छे-बुरे साधनों से अपनी इज्जत बनाए रखने की दौड-धूप करनेवाले इन पक्षोपपक्षों को मैं आश्वासन देता हूँ कि उनका डर व्यर्थ है।

पजाब में ज्वालामुखी के उद्रेक के समान एक से एक भीषण घटनाएँ हुईं। लेकिन अन्यों के समान उन घटनाओं का अतिरजित वर्णन सघ ने कभी नहीं किया। उस भयानक परिस्थिति में जनता को स्वयसेवकों ने पूर्णरूपेण अपना आधार दिया। इसके लिए सघ ने अपने स्वयसेवकों की प्रशसा भी कभी नहीं की, क्योंकि सघ के स्वयसेवकों ने केवल अपना स्वाभाविक कर्तव्य ही किया है। जैसे कि भाई के बीमार होने पर उसके सिरहाने रात-रातभर जागकर, उसकी आवश्यक सेवा करनेवाला दूसरा भाई अपने द्वारा की गई सेवा का वर्णन समाचार-पत्रों में नहीं छपवाता, उसी प्रकार स्वयसेवकों ने अपने समाज बधुओं की सहायता और सेवा की। अत उसका गुणगान करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

पिछले पचास वर्षों में स्वार्थ-पिशाच का जागरण देश में हुआ है और राष्ट्र का विनाश करने के लिए उद्युक्त लोग उसका साथ देने के लिए तैयार बैठे हैं। इस कारण स्वार्थी दृष्टि से सघ की ओर देखनेवालों की आँखों में सघ खटकता है। लेकिन सारी आलोचनाओं की ओर दुर्लक्ष्य कर सघ सब व्यक्तिगत सुख और स्वार्थी भावनाओं का होम कर, राष्ट्र की सेवा करनेवाले विशालहृदयी समाज-घटकों की विशुद्ध शक्ति निर्माण करने में लगा हुआ है।

सघ के रूप में देश में सर्वत्र निर्माण हुई एकता, भारतीय परपरा और नि स्वार्थ देशसेवा की भावना यदि इस देश से नष्ट हो गई, तो भारत का भवितव्य पूर्णत अधकारमय हो जाएगा। निर्भयता से भारतीयत्व का पुरस्कार करते हुए, पराक्रम से भारत का मस्तक गौरव से ऊँचा रखने का साहस सपूर्ण देश में अन्यत्र कहीं भी दिखाई नहीं देता। बाकी सब लोग शारीरिक व मानसिक गुलामी स्वीकारते हुए भारत को विदेशियों के आचार-विचार का दास बना रहे हैं। लेकिन सघ पुरुषार्थ और आत्मविश्वास से भारत का पावित्र्य अभग रखने के लिए दिन-रात लगा हुआ है। जिनके हृदय में भारतीयत्व के लिए ममता होगी, उन्हें आज नहीं तो कल सघविषयक अपनी विरोधी भावना छोडनी ही होगी।

विरोध का चाहे जैसा तूफान उठे या प्रत्यक्ष आकाश ही गिर पडे, सघ अब आगे ही बढेगा। सघ का मार्ग कोई रोक नहीं सकेगा। विरोधकों

को विरोध करने के लिए पूरी छूट है, लेकिन विरोध से सघ अनत गुना वढेगा। अपप्रचार से वे सघ की गति रोक नहीं सकेंगे, यह मैं आत्मविश्वास से कहता हूँ। सघ ही भारत के भविष्य का एकमेव त्राता है। भारतीयत्व की रक्षा का अपना व्रत सघ अवश्य ही पूर्ण करेगा।

उदारता और एकता की गप्पें आज हम खुलकर लगा सकते हैं। कारण, परिस्थिति के भीषण आघातों से हम लोग अभी दूर और सुरक्षित हैं। जहाँ आपत्तियों के पहाड गिरे और आसुरी आक्रमणों से जीवन मिट्टी में मिल गया, वहाँ भारतीयत्व के स्वाभिमान से ओतप्रोत और श्रेष्ठ ऐसे सघ द्वारा प्रकट होनेवाले सामर्थ्य का ही आसरा सकटग्रस्त समाज को लेना पडा है और आगे भी लेना पडेगा। स्थिति ऐसी निर्माण हो रही है कि इच्छा हो या न हो, सघ के ही मार्ग से विचार करना पडेगा।

इतनी भीषण परिस्थिति में भी सघ शात भाव से कैसे कार्य कर सकता है, इसका लोगों को आश्चर्य होता है। लेकिन सघ का यह शात, स्थिर भाव सामर्थ्य के आत्मविश्वास में से निर्माण हुआ है। पूर्वकाल में प्रलय आने पर मनु ने सृष्टिबीज की रक्षा कर पुन सृष्टि का निमाण किया था। हम सब मनु के वशज हैं। हिंदू-समाज के इस आपत्तिकाल में सघ भारतीयत्व के बीज सुरक्षित रखकर फिर से विश्वगुरु के स्थान पर शोभायमान करते हुए, भारतीय परपरा अक्षुण्ण रखनेवाला राष्ट्र निर्माण करेगा। रूस, अमरीका, इग्लैंड आदि राष्ट्रों का बुद्धिहीन अनुकरण सघ नहीं चाहता।

मैं आपको यह विश्वास से कहता हूँ कि सारी दुनिया के विरोध करने पर भी इस सगठन के द्वारा प्रत्येक भारतीय फिर से प्रखर स्वाभिमान से खडा रहेगा।

विजयादशमी पर शक्तिपूजन के साथ ही शमी-पूजन भी किया जाता है। रघुराज के समान श्रेष्ठदाता तथा कौत्स के समान निर्लोभी याचक की स्मृति भारतीय समाज के आदर्श का चित्र प्रस्तुत करती है।

'कुबेर द्वारा की गई सुवर्ण वृष्टि आप ही के लिए है तथा इस अपार सुवर्ण के स्वामी आप ही हैं' —यह विनती करने वाले रघुराज तथा गुरुदक्षिणा के लिए आवश्यक उतना ही सोना लेकर शेष समाज को अर्पण करने वाले कौत्स के समान आदर्श उत्पन्न करने वाली समाज-रचना भारत के सिवाय अन्यत्र कहाँ निर्माण हुई है?

शमी-पूजन तथा समाज-बाधवों को स्नेहवर्धक शमी-पत्र देने की प्रथा इस सामाजिक नीति का स्मरण दिलाती है कि किसी के धन का अपहरण न कर जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसमें से भी केवल आवश्यक मात्रा में अपने पास रखकर शेष समाज को अर्पण कर दिया जाए। बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास समाप्त करने के पश्चात इसी दिन पाडवों ने शस्त्रों को पुन धारण किया था। ये शस्त्र शमी वृक्ष में ही छिपाकर रखे गए थे।

निकटतम भूतकाल में भारत में हिदू-पद-पादशाही निर्माण करने की आकाक्षा से प्रचड उद्योग करने वाले मराठों ने विजयादशमी के मुहूर्त पर सीमोल्लघन की प्रथा डाली थी। शत्रु के अधिकार से नए-नए देशों को मुक्त कर स्वराज्य में सम्मिलित करने के लिए इसी दिन मराठों की सेना निकलती थी तथा अपने पराक्रम द्वारा हिदू साम्राज्य को नया वैभव प्राप्त कराती थी। सीमोल्लघन की प्रथा अब विजयादशमी उत्सव का ही एक अग मानी जाने लगी है।

राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के लिए विजयादशमी का महत्त्व अनन्य एव असामान्य है, क्योंकि इसी दिन आद्य सरसघचालक स्व डा हेडगेवार जी ने सघ की स्थापना की। पतित, पराभूत, आत्मविस्मृत तथा आत्मविश्वासशून्य हिदू-राष्ट्र में चैतन्य, आत्मविश्वास व विजय की आकाक्षा निर्माण कर उसकी सिद्धि के लिए, बलोपासना करने के लिए उसे प्रवृत्त करने के निमित्त यह उत्सव एक परपरा-प्राप्त साधन ही है।

रावण पर भगवान राम की विजय के उपलक्ष्य में विजयादशमी का महोत्सव मनाया जाता है। रावण एक महापराक्रमी, महाबलशाली राक्षस था। ससार को पीडा देनेवाले नवग्रह, बडे-बडे राजा-महाराजा, वीर-पुरुष, यहाँ तक कि देवता भी रावण से डरते थे। सारी भौतिक और सहारक शक्तियाँ उसके पास थीं। पर उसको किसने हराया? लोग जिन्हें जगली कहते थे, जिनके पास कुछ भी अस्त्र-शस्त्र नहीं थे, ऐसे वानरों को सगठित कर, उन्हीं के द्वारा प्रभु रामचद्र जी ने रावण को हराया। रावण की भौतिक शक्ति इस सगठित शक्ति का सामना न कर सकी। नाश रावण का हुआ, भारतीय समाज धर्म और सभ्यता का नहीं। श्रद्धा, आशा और उत्साह से पूर्ण ऐसा ही सगठित बल यदि हम देश में निर्माण करेंगे तो सारे सकटों को हँसते-हँसते ठुकरा सकेंगे। यही है विजयादशमी का सन्देश।

शस्त्रपूजन, १९४९

कहा गया है कि 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य' सामर्थ्य के न रहते किसी प्रकार का भौतिक या आध्यात्मिक तेज प्राप्त होना सभव नहीं है। भारतवर्ष के जीवन का सपन्न-प्रवाह प्राचीन काल से हिंदू- समाज में उत्पन्न हुए श्रेष्ठ व्यक्तियों ने ही निर्माण किया है और आज भी भारतमाता की आपादमस्तक अखड मूर्ति की नि स्वार्थ विशुद्ध, उपासना करने की परपरा पर अधिष्ठित सगठना किए बिना छिन्न- विच्छिन्न हिंदू-समाज में शक्ति का सचार नहीं होगा। शक्ति के सामने ही सब नम्र होते हैं। शक्ति की इस महापूजा का मार्ग, याने राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का सगठन है।

यह मानना कि आज जगत् में हमारे राष्ट्र को प्रतिष्ठा प्राप्त है, यह भ्रम है। यदि कोई हमारी प्रशसा करता होगा तो वह निस्सशय स्वार्थमूलक है। मार्जार चूहे से खेलता है, उसी प्रकार विश्व के सपन्न राष्ट्र हमसे खेल रहे हैं। वे अपना आर्थिक, राजकीय, अथवा सास्कृतिक वर्चस्व निर्माण करने के लिए ही हमारी झूठी प्रशसा करते हैं। भारत समान प्राचीन राष्ट्र के गौरव के लिए यह स्थिति शोभादायक कदापि नहीं है।

आकर्षक नारे और प्रचार से भ्रमित न होकर हमें यह वस्तुस्थिति जानकर भारतीय जीवन के आधारभूत हिंदू-समाज में एकात्म भाव की निर्मिति कर उसको एक सूत्र में सगठित करना चाहिए। उसी में से सामर्थ्य-निर्माण होगा, आत्मविश्वास जगेगा ओर तब हम जागतिक सघर्ष में टिक सकेंगे।

शक्ति की उपासना का यह चिरतन सत्य स्पष्टता से सबके सामने रखकर उस उपासना का सघरूपी प्रभावी मार्ग दिखानेवाला महापुरुष इसी नागपुर में उत्पन्न हुआ। इसी स्थान पर उनका पार्थिव देह अनत में विलीन हुआ। चौबीस वर्ष पूर्व उनके द्वारा दिखाए हुए मार्ग का अनुसरण न करने के कारण ही राष्ट्रीय अपमान सहन करने के दुर्भाग्य के हम धनी बने हैं। अनेक समस्याएँ अपने सामने मुँह खोले खडी हैं पर इससे हताश होकर हाथ पर हाथ रखकर बैठने का कोई कारण नहीं है। उस द्रष्टा महापुरुष द्वारा दिखाए शक्ति-उपासना के मार्ग का अवलब कर आत्मविश्वासपूर्ण राष्ट्रजीवन खडा करें।

विजयादशमी, १९४९

आज सघ का २५वें वर्ष में प्रवेश हो रहा है। इस अवधि में अनेक सकटों का सामना करते हुए सघ ने अपने कार्य का विस्तार सारे भारत में फैलाया है। लेकिन अभी बहुत कार्य करना शेष है। क्योंकि समाज विच्छिन्न और भेदों के कारण खोखला रहा तो आक्रामकों का रास्ता साफ होता है। यह ऐतिहासिक सत्य मन पर अकित कर इस देश में एकात्म, सुसूत्र व सगठित जीवन निर्माण करने के कार्य के लिए सघ ने स्वत को पूर्णत समर्पित किया है। यह सोचना ठीक नहीं है कि एकात्म जीवन निमाण होने पर व्यक्तिगत विशेषता नष्ट हो जाती है। बल्कि इसका अर्थ तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति ने अपने-अपने गुण समुच्चय के साथ समाज में रहते हुए समाज की परपरा के सस्कार ग्रहण कर भारतव्यापी एकता की अनुभूति प्राप्त करना ही एकात्म जीवन में अभिप्रेत है।

सास्कृतिक जीवनधारा का सूत्र

एकता निर्माण करनेवाला यह सूत्र है भारत के सभी भागों में निर्माण हुए, प्राचीन परपरा के अधिष्ठान पर अवस्थित, विशुद्ध और पवित्र आध्यात्मिक कल्पनाओं पर आधारित समान सस्कार जो व्यक्ति-व्यक्ति के अत करण पर हुए हैं, के कारण निर्मित एक सास्कृतिक जीवनधारा। उन सस्कारों के जागरण से ही भारतीय एकरस जीवन का निर्माण हो सकता है। कुछ लोग इन सस्कारों को न मानते हुए उनका धिक्कार करने में पुरुषार्थ मानते होंगे, परतु विशेष समय प्राप्त होने पर यही सस्कार प्रबल होकर हमारे हाथ से योग्य कृति कराते हैं। यही अनुभव बार-बार आया है और अभी भी आता है। यह सास्कृतिक ऐक्य हृदयगम कर उसका अनुभव लेना, विभिन्नता में एकात्मता के साक्षात्कार की अनुभूति लेना व उनके आधार पर एकसूत्रबद्ध ऐसा महातेजस्वी महाप्रबल राष्ट्र-पुरुष खडा करना ही राष्ट्र के पुनरुत्थान का मार्ग है।

प्रभु रामचद्र ने राष्ट्रातर्गत दैवी प्रवृत्तियों को नष्ट करने पर तुली आसुरी शक्ति का दमन किया। रामचद्र जी के लका से लौटने पर सभी ओर खुशहाली आई। धन-धान्य आदि की विपुलता से जनता सुखी हुई। उस सुख की याद आज भी 'रामराज्य' शब्द से आती है। रामचद्र को ईश्वरी अवतार मान, उनके आदर्श के अनुसार आचरण करने की आवश्यकता है, उसे टालना इष्ट नहीं। अकेले रामचद्र के कारण 'रामराज्य' नहीं आया,

तो रामचंद्र जी ने जिस त्यागमय आदर्श जीवन का उदाहरण सबके सामने
उसका अनुकरण करके जाता चारित्र्यसंपन्न हुई, इसी कारण 'राम
अवतरित हुआ। राष्ट्रीय चारित्र्य पर संकट देखकर अति कोमल भावनाअ
दबाकर रामचंद्र जी ने सीता देवी का त्याग किया। उस चारित्र्य के मा
चलने के कारण समाज वैभवसंपन्न हुआ। चारित्र्यवान होने पर ही छिन्न-विच्छि
दुःखी, दैन्यपूर्ण राष्ट्रजीवन की समस्याएँ सुलझ सकेंगी।

अज्ञान का आवरण दूर हो

आज अपने देश को अज्ञानता के तम के कारण से
किंकर्तव्यविमूढ़ता प्राप्त हुई है। भारतीय स्वत्व का विस्मरण हुआ है।
तम का विच्छेद कर एक पराक्रमी, साहसी, निस्वार्थी व कर्तव्यपरायण ज
अपने राष्ट्र में निर्माण करना जरूरी है। इसलिए भारत की सांस्कृ
एकता का साक्षात्कार कर संपूर्ण भारत के अंतःकरण को अनन्य प्रेम-परिप्
करना होगा। इसी एकमेव भावना द्वारा 'संपूर्ण भारत का कण-कण
है' इस जीवंत वृत्ति से भाषा-भेद, पंथ-भेद, प्रांत-भेद आदि सब भेदों
ऊपर उठकर संघकार्य चल रहा है।

विराट राष्ट्रपुरुष की सेवा करने की भावना अपने अंतःकरण में
तो ऊँच-नीच, छोटे-बड़े आदि का भेद अपने-आप समाप्त हो जाता
तभी इस भावना का साक्षात्कार होता है कि देश की सारी संपदा उ
राष्ट्रपुरुष की है, अपने पास जो कुछ है, उसका स्वामी मैं नहीं हूँ। मैं
उसका केवल मुनीम या विश्वस्त हूँ। इसी नाते अपना आचार-विचार रख
सच्ची भारतीय वृत्ति है। इस भावना को वृद्धिगत कर अपना सब कु
समाज को समर्पित करना चाहिए।

तब महान राष्ट्रीय जीवन की उत्क्रांति में बाधा निर्माण कर स
ऐसा कोई स्वार्थ अपने क्षणभंगुर जीवन में शेष नहीं रहेगा। ऐसे संपू
निःस्वार्थ सेवावृत्ति-संपन्न लोग भारतव्यापी संगठन-सूत्र में बद्ध करने प
भारत के गौरव का चित्र इसी जीवन में हम देख सकेंगे।

जग छोटा होने के परिणाम

लोग कहते हैं कि आवागमन के साधन बढ़े हैं, इस कारण ज
छोटा हुआ है। तब केवल अपनी संस्कृति के बारे में सोचना संकुचितता है
परंतु अंतःकरण विशाल करने का मतलब वह खाली कर वहाँ अठार

धान्यों की मिलावट करना नहीं है। दूसरी बात, जग छोटा होने से स्वार्थी, साम्राज्यपिपासु, गिद्धदृष्टि रखनेवाले राष्ट्रों का आक्रमण और शीघ्रता से हो सकता है। आज यह धोखा बढा है और उस कारण चिता भी बढी है। इसलिए जागृत, पराक्रमी व कर्तव्यपरायण राष्ट्रजीवन की, नि स्वार्थ राष्ट्रसेवा की आवश्यकता और भी बढी है।

यह कार्य किसी एक दल अथवा सस्था का नहीं है। यह कार्य तो स्पर्धाशून्य होकर सब भारतीयों को एकत्र कर समन्वय से करने का है। इस कार्य का इतना विकास हो कि सघ और समाज एकरूप होने से अलग नाम से कार्य करने की आवश्यकता न रहे। इस कार्य में सबका सहकार्य प्राप्त हुआ तो सब प्रकार का अभ्युदय व उत्क्राति का क्षण दूर नहीं।

ट ट ट

शस्त्रपूजन, १९५०

मैं आपका आह्वान करता हूँ कि आप सघ के सिद्धातों के प्रति प्रामाणिक रहें क्योंकि सघ में ही भारत के पूर्व के गौरव और प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना की शक्ति विद्यमान है।

आज हमें आदत पड गई है कि दूसरों के जीवन-मूल्यों के मापदड से हम अपनी तुलना करते हैं, जबकि हमने अपने प्राचीन गौरव, परपराओं और मानवीय-मूल्यों के आदर्शों से जगत् का नेतृत्व किया है। सपूर्ण जगत् ने धर्म और सभ्यता भारत से ही सीखी है। एक समय था, जब विश्व हमसे मार्गदर्शन की अपेक्षा करता था। इसीलिए भारत 'जगद्गुरु' कहलाता था। किंतु आज हमें स्वय का ही विस्मरण हो गया है। यहाँ तक कि हमें अपने आप को 'हिंदू' कहने में भी लज्जा का अनुभव होने लगा। स्वार्थी तथा अवसरवादी तत्त्वों के बहकावे और भय से इस महान हिंदू-राष्ट्र के अभिन्न अग होने को न्यूनता मानकर हम सकोच का अनुभव करते हैं। उनके कुत्सित प्रयासों का हम आहार बनते हैं, आज ऐसी दयनीय स्थिति उत्पन्न हो गई है।

सपूर्ण हिंदु-समाज एकात्म भाव और एक परिवार के भाव से ओतप्रोत था, जो अपने ही सविधान की व्यवस्था के कारण टुकडो में बँट गया है और यह विच्छिन्नता निरतर बढती ही जा रही है। इसके कारण सयुक्त हिंदू परिवार का स्वरूप व्यापारिक सस्थान की तरह का हो गया है।

परिवार का मुखिया जो उसका आधार होता था, अब प्रबंध-संचालक मात्र रह गया है। सत्तापिपासा और अधिकारों की लड़ाई हिंदुओं की परिवार-संकल्पना को नष्ट कर रही है।

स्वयं के विस्मरण को दूर करना और समाज को आत्मसाक्षात्कार कराना ही संघ का ध्येय है। जब तक समाज फिर से इस भाव से खड़ा नहीं होता कि हमारा समाज एक विराट पुरुष है, एकात्म है, हम ही उस विराट पुरुष की आत्मा हैं, उसका जीवन हैं, उसकी अंतर्भूत चेतना हैं, तब तक हमारे प्रश्नों व समस्याओं का समाधान होना संभव नहीं। तब तक शांति या प्रगति के लिए किए गए सारे प्रयत्न निरर्थक ही साबित होंगे। उससे भौतिक सुख-सुविधा के साधन भले ही उपलब्ध हो जाएँ, अंतत अध पतन और निराशा ही हाथ आएगी। इसलिए प्रगति की प्राथमिकताएँ पहले निर्धारित होनी चाहिए। स्वयं की स्वार्थसाधना में लगे लोगों द्वारा राष्ट्र का सुदृढ़ीकरण संभव नहीं है।

हिंदू शक्ति के प्रति पूर्ण विश्वास और उसका पूरा आकलन होने के कारण ही डाक्टर साहब ने अन्य कार्यों को छोड़कर हिंदू- समाज के संगठन को प्राथमिकता दी, ताकि हिंदू-समाज की आत्मविनाशकारी प्रवृत्तियों को दूर किया जा सके। गत २५ वर्षों से संघ केवल हिंदू समाज के जागरण का ही कार्य कर रहा है और इस दिशा में तब तक कार्य करता रहेगा, जब तक पूर्ण समाज एक सूत्र में गुँथकर एक अभेद्य सशक्त राष्ट्र के रूप में खड़ा नहीं हो जाता।

कुछ तत्त्व संघ को प्रतिक्रियावादी कहते हैं। उनके आरोपों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। संघ से भले ही कोई द्वेष करे, परंतु हमें किसी से द्वेष नहीं। किसी भी प्रकार की द्वेषवृत्ति या किसी का भी द्वेष संघ नहीं करता, वह हमारे लिए त्याज्य है। 'योगी' अपने बंधु-प्रेम से ही कर्म करता है, प्रतिक्रिया उसके लिए पराई है। भारत के प्रतिक्रियावादी तत्त्वों को यह समझ लेना चाहिए कि विदेशों से प्रेरित उनके 'वाद'(Ism) राजनैतिक आदर्श इस देश के काम के नहीं हैं। भविष्य में भी वही देश प्रभावी रहेगा, जो अपना मौलिक विचार और रचनात्मक प्रेरणा विश्व को दे सकेगा। सामाजिक उन्नयन का वर्तमान प्रयत्न तो मृत शरीर को सजाने जैसा है, जबकि आज की मरणासन्न अवस्था में संजीवनी औषधि की आवश्यकता है, जो देश को पुन चैतन्यान्वित करे।

सघ के लिए कोई अस्पृश्य नहीं है। वह किसी भी विचार, जाति या वर्ग का हो। वह काग्रेसी हो या समाजवादी हमारे लिए जात के बाहर नहीं है, वह भी समाज का अभिन्न अग हैं, हमारा बधु है ऐसी भावना रखकर काम करें।

विजयादशमी, १९५१

सघ का विरोध करनेवालों के पास कहने के लिए नया कुछ है नहीं। केवल पुरानी बातें दोहराकर ही वे अपने दिल की तसल्ली कर लेते हैं कि यह एक साप्रदायिक सस्था है। साप्रदायिक क्या होता है? इसका मतलब ही मुझे समझता नहीं। मैंने कई बार कहा कि साप्रदायिकता किसे कहते हैं, पहले इसकी व्याख्या तो करो। लेकिन कोई इसकी व्याख्या करने को तैयार नहीं है। वे तो केवल आरोप लगाते हैं।

वस्तुस्थिति यह है कि अग्रेज बाहर से यहाँ आए और उन्होंने हमें पढाया कि हिंदुस्थान नाम का कोई राष्ट्र तो है नहीं। यहाँ तो अलग-अलग सप्रदायों के, जातियों के लोग रहते हैं। धार्मिक और साप्रदायिक जीवन ही यहाँ है। बस उनसे प्राप्त ज्ञान और स्फूर्ति के आधार पर हमारे यहाँ के बुद्धिजीवी माने जानेवाले लोग भी साप्रदायिकता का राग अलापने लगे। मजा यह है कि हिंदू तो हो गया साप्रदायिक और बाकी इधर-उधर के लोग हो गए राष्ट्रीय और कुछ-कुछ तो अतरराष्ट्रीय भी हो गए हैं। बडे-बडे नेता भी प्रत्येक हिंदू काय को साप्रदायिक कहते हैं। लेकिन मुसलमान या ईसाइ व उनकी सस्थाओं में जाना, उनके साथ बैठकर खाने-पीने को राष्ट्रीयता की निशानी माना जाता है। किंतु यह शोभा नहीं देता, यह तो साप्रदायिकता की पराकाष्ठा है। इस प्रकार की साप्रदायिकता जिनमें ठूँस-ठूँस कर भरी हुई है, उन लोगों को कोई अधिकार नहीं है कि वे सघ को साप्रदायिकता की गाली दें।

आजकल चुनाव का माहौल है। नेताओं ने अपने-अपने दलों को कहा है कि अगले चुनाव में ऐसे उम्मीदवारों को खडा किया जाए, जिनमें प्रमुख अल्पसख्यक जैसे मुसलमान, पारसी ईसाई आदि जाति के हों। याने यहाँ से वहाँ तक सारा सोच साप्रदायिकता का है, फिर भी वे साप्रदायिक नहीं हैं। लेकिन राष्ट्र का उत्थान करने में प्रयत्नशील लोग साप्रदायिक कहे जाते हैं। इससे बढकर आश्चर्य दुनिया में और क्या हो सकता है? इसलिए

इस प्रकार के आरोपों का जवाब देने की आवश्यकता नहीं है।

यह पर्व विजय की आकांक्षा जगानेवाला है, परंतु आज चारों ओर पराभूत मनोवृत्ति का विषादजनक वायुमंडल दिखाई देता है। जिस देश में इस प्रकार की मानसिकता होगी, उसका संसार में नाम होगा, यह आशा करना ही व्यर्थ है। वही राष्ट्र प्रतिष्ठासंपन्न होता है, जो 'सारे संसार को पदाक्रांत करूँगा'— ऐसा आत्मविश्वास रखता है। हमारी संस्कृति भी पराक्रमी लोगों की है। यहाँ के श्रेष्ठ पुरुषों ने अभिमान के साथ कहा है कि 'वयं साम्राज्यवादिनः' अपना राज्य लुटाकर एक टुकड़ा इसको दिया, एक टुकड़ा उसको दिया, इस प्रकार घर लुटाने की मनोवृत्ति आज पाई जाती है, वह भारतीय कदापि नहीं हो सकती।

इधर हमारी यह स्थिति है, उधर इंग्लैंड, अमरीका, रूस दुनिया में अपना प्रभुत्व जमाने के लिए प्रयत्नशील हैं। बाकी सबको अपना हस्तक बनाकर रखने की उनकी इच्छा है। फिर भी सारे संसार में शांति का घोष चलता रहता है। बड़े-बड़े राष्ट्र विश्व-शांति के प्रयासों में व्यस्त दिखाई देते हैं। इसके लिए सभा-सम्मेलनों का आयोजन करते रहते हैं। लेकिन विश्व-शांति की परिभाषा ही यही है कि मुझसे मत लड़ो। मेरी बात मानते जाओ और आराम से रहो।

ये लोग दुनिया को अपना गुलाम बनाने के लिए सारा उपक्रम कर रहे हैं। हमने अपनी संस्कृति के आधार पर मनुष्य को देव बनाने का प्रयत्न ही किया है, जबकि दुनिया की बाकी सभ्यताएँ मनुष्य को केवल पशु बनाने का काम कर रही हैं। पहले भी स्थान-स्थान पर सच्ची मानवता का निर्माण करने का प्रयत्न हमारे पूर्वजों ने किया है। इतिहास इस बात का साक्षी है। उन पूर्वजों की संतान होते हुए दूसरों को अपना घर लुटा देंगे? दुनिया के सामने हाथ जोड़कर प्राणदान की भिक्षा माँगेंगे? हर बात में भिक्षा माँगने की निकम्मी विचारधारा लेकर चलेंगे, तो वह अपने पूर्वजों के साथ भारी प्रतारणा होगी।

इस प्रतारणा को हटाकर हम यह आत्मविश्वासपूर्ण भाव रखें कि बाकी सारे लोग आसुरी साम्राज्य के निर्माण के लिए बद्धपरिकर हैं, परंतु हम दैवी भावनाओं को लेकर सच्चा दैवी साम्राज्य स्थापन कर वास्तविक रीति से सब प्रकार की जीवन-रचना हो, इसके लिए प्रयत्नशील रहेंगे। इस संकल्प के साथ हमको कार्य करना होगा।

ᗒᗒᗒ

शस्त्रपूजन, १९५४

इस भूमि में जो जीवन दिखाई देता है, जिसे 'भारतीय जीवन' कहा जाता है, वह वास्तव में हिंदू जीवन है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे इसका प्रकटीकरण सदा होता रहता है। राजकीय, सामाजिक, भौतिक आदि जितने भी क्षेत्र हैं, उसमें यही दिखाई देगा। एकात्म जीवन के साथ नाना प्रकार के सुख-दु खों का अनुभव सवने एक साथ लिया है, वही इस भूमि पर राष्ट्ररूप है। हिंदू से भिन्न जीवन यहाँ नहीं हे।

किंतु इसको विस्मृत कर देने के कारण दूसरे लोगों ने अपने देश को पदाक्रात किया। अपने से बहुत अधिक पराक्रमी या श्रेप्ठ होने अथवा सख्या बल में अधिक होने के कारण वे सफल नहीं हुए। अपने लोग आपस में झगडते रहे, इसलिए हमारी हार हुई। इसी दोप के कारण समय-समय पर हमपर आपत्तियाँ आई और आक्रामक सफल हुए। वह दुर्गुण दूर करने का काम ही हमें सर्वप्रथम करना है। बाकी के जितने छोटे-बडे दुर्गुण हैं, वह तो अपने आप ही निकल जाएँगे।

लेकिन अपने ही देश के लोग कहते हैं कि यह तो पुरानी बात हो गई है। ससार में आजकल नया-नया ज्ञान आ रहा है, अब उन पुरानी बातों की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन इन नए विचारों से एकात्मतापूर्ण सुसगठित जीवन तो तैयार होगा नहीं। आजकल समाज में एकात्मता का भाव बिल्कुल भी दिखाई नहीं देता। जिधर देखो उधर विच्छेद-विच्छेद ही दिखाई पडता है। प्रातभेद, भापाभेद, जातिभेद के द्वारा कटुता ही उत्पन्न होती दिखाई देती है।

यह तो अभी-अभी कुछ सौ वर्षो की देन हे। पृथ्वीराज को परास्त करने के लिए महाराणा प्रताप के स्वतत्रता प्राप्ति के प्रयासों में, श्री छत्रपति शिवाजी के स्वराज्य स्थापित करने के मार्ग में उन्हीं की जाति के लोगों ने विरोध किया। कोल्हापुर के राजवश के झगडे होकर ही तो नए पक्ष बने थे। अत में हमने यह भी देखा कि पेशवाओं का पराभव होने के बाद अपने प्राचीन काल के सुवर्ण गैरिक भगवद्ध्वज को शनिवार वाडे से उतारकर अग्रजों का निशान ऊपर चढाने का कुकृत्य किया, वह व्यक्ति भी पेशवाओं की जाति का ही था।

जाति-जाति में झगडे तो वर्तमान काल में ही दिखाई देते हैं। कोई कहता है कि मैं ब्राह्मण हूँ, कोई कहता है कि मैं कायस्थ हूँ, कोई स्वय को

एक विचार सामने रखकर बडे-बडे नेता लोग उसका समर्थन करने में हिचकिचाते हैं। मैं तो यह सत्य स्पष्ट रूप से बोलता हूँ, क्योंकि भीख का कटोरा लेकर मुझे किसी के सामने वोट मॉगने जाना नहीं है। गोहत्या चालू रहे, यह तो केवल सत्ता की अभिलाषा के कारण ही बोला जाता है, अन्य दूसरा कोई भी कारण नहीं है। स्वार्थ के लिए सब-कुछ भला-बुरा करने के लिए लोगों की तैयारी है।

भिन्न-भिन्न दल उत्पन्न हो गए हैं। कम से कम वे स्वार्थरहित हैं, ऐसा भी दिखाई नहीं देता। वे सब आपस में झगडते रहते हैं। दलातर्गत भी स्वार्थ ही स्वार्थ भरा हुआ दिखता है।

इस प्रकार का आज का समाज जीवन है। इसकी सगठित अवस्था है --ऐसा तो कदापि नहीं कहा जा सकता। लोगों को अपने देश के प्रति श्रद्धा तथा प्रेम नहीं है। यह मेरी मातृभूमि है -- इसका भान भी नहीं है। यदि यह भान रहता तो अपनी मातृभूमि खडित अवस्था में नहीं होती।

नागपुर में ही कितनी बडी सख्या में अनाथ व निराश्रित लोग दिखते हैं, कितने लोग ऐसे हैं, जिनके पास खाने के लिए अन्न भी नहीं है। बिहार व असम के बाढपीडितों की सहायता हेतु धन एकत्र करने के लिए नट-नटियों के कार्यक्रम करने पडे। क्रिकेट मैच आयोजित कर पैसा एकत्र करने का प्रयास किया गया। मेरे विचार में इस प्रकार जो पैसा एकत्र हुआ, वह तो नट-नटियों तथा तमाशा देखने का था। बाढपीडितों से सहानुभूति होने के कारण पैसा नहीं मिलता, अन्यथा इस प्रकार से पैसा मॉगने की आवश्यकता नही पडती। इसे अच्छी स्थिति नहीं कहा जा सकता है। यह किसी स्वतत्र देश के सभ्य लोगों के आचरण को शोभा देनेवाला है? नहीं तो बाढपीडितों का दु ख, याने अपना दु ख, उनपर आई आपत्ति, याने अपने पर आई आपत्ति है, ऐसा लोग मानते। मगर वैसी भावना दिखाई नहीं देती। सब अपने उद्योग में मग्न है। मातृभूमि के बारे में जो अत्यत उत्कट श्रद्धा समाज के प्रत्येक मनुष्य के हृदय में दिखाई देनी चाहिए, उसका अभाव ही दिखाई देता है।

उस अभाव की पूर्ति कर अपने इस राष्ट्र के बारे में प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उच्च कोटि का स्वाभिमान जागृत कर, मातृभूमि के प्रति अत्यत आदर की भावना रखनेवाले व्यक्तियों को एक सूत्र में गूँथकर, आसेतुहिमाचल एक प्रबल सगठन समाज में निर्माण करना तथा उसके द्वारा राष्ट्र का

क्षत्रिय बतलाता है, ऐसा हमने पहले कभी नहीं देखा था। पहले तो हमने आपस में सर्वत्र स्नेह का ही अनुभव किया था। अब कोई एकाध विद्वान इतिहास-सशोधक कहीं से अपवादात्मक कुछ उदाहरण खोज निकाले और इस बात को असत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करे, तो बात दूसरी है, परतु जातिगत झगडे तो आजकल ही बढे हैं।

पूर्वकाल में हमारे यहाँ जाति के झगडे नहीं थे। अयोध्या में जन्म लेकर भी अपने कार्य के कारण भगवान श्री रामचद्र सपूर्ण भारतवर्ष के आराध्य देव बने रहे। मथुरा में जन्मस्थान होनेवाले भगवान श्रीकृष्ण को सपूर्ण भारतवर्ष ने अपना आदर्श माना। बुद्ध का जन्म बिहार में होने हुए भी उनके प्रति आदर होने के कारण उनको अपने दशावतारों में स्थान दिया। सुदूर दक्षिण में जन्मस्थान होने के उपरात भी श्रीमत् शकराचार्य सारे भारतवर्ष के ललामभूत रहे।

सकीर्णता को तो आज बढावा दिया जा रहा है। अतरराष्ट्रीयता और विश्वबधुत्व के नारों के बाद ही सकीर्णता अधिक बढी है। वर्तमान सत्ताधीशों में भी यही भाव दिखाई देता है। शिवाजी जैसे महापुरुषों को स्थानिक बना दिया गया। देश के जिस भाग में व्यक्ति का जन्म हो, उसी भाग तक उसे मर्यादित कर देने की यह वृत्ति अत्यत अनुचित व अनिष्टकारक है। यदि ऐसा ही होता रहा तो मुझे लगता है कि कुछ दिनों बाद महात्मा गाँधी को लोग एक सौराष्ट्रीय के नाते से ही पहचानेंगे। देश के बाकी भाग से उन्हें पूर्णतया भुला देंगे। भाषा व प्रात के झगडे, अलग-अलग राज्य की आकाक्षा की प्रवृत्ति आज बढती हुई दिखाई देती है।

प्राचीन काल में मनुष्य स्वार्थ के ही कारण सघर्ष करता रहा होगा, परतु आजकल तो सघर्ष के लिए हजारों कारण प्राप्त हो गए हैं। यदि स्वार्थ नहीं होता तो आज के बडे-बडे सत्ताधारी, जिन्होंने पहले कई अच्छे काम किए हैं, केवल अपने को सत्ता में बनाए रखने हेतु चुनाव में दूसरे लोगों के वोट अपने को मिले, इसी उद्देश्य को सामने रखकर, अपने हृदय के जो विचार हैं उन्हें छिपा कर नहीं रखते।

इसके लिए उदाहरण गोहत्या-विरोध का देता हूँ। वास्तव में तो गोहत्या बद हो यह सबकी इच्छा है, परतु यदि यह कानून से बद हुआ तो अभी समीप आए हुए चुनाव में मुसलमानों के मत प्राप्त होंगे कि नहीं यही

एक विचार सामने रखकर बडे-बडे नेता लोग उसका समर्थन करने में हिचकिचाते हैं। मैं तो यह सत्य स्पष्ट रूप से बोलता हूँ, क्योंकि भीख का कटोरा लेकर मुझे किसी के सामने वोट माँगने जाना नहीं है। गोहत्या चालू रहे, यह तो केवल सत्ता की अभिलाषा के कारण ही बोला जाता है, अन्य दूसरा कोई भी कारण नहीं है। स्वार्थ के लिए सब-कुछ भला-बुरा करने के लिए लोगों की तैयारी है।

भिन्न-भिन्न दल उत्पन्न हो गए हैं। कम से कम वे स्वार्थरहित हैं, ऐसा भी दिखाई नहीं देता। वे सब आपस में झगडते रहते हैं। दलातर्गत भी स्वार्थ ही स्वार्थ भरा हुआ दिखता है।

इस प्रकार का आज का समाज जीवन है। इसकी सगठित अवस्था है --ऐसा तो कदापि नहीं कहा जा सकता। लोगों को अपने देश के प्रति श्रद्धा तथा प्रेम नहीं है। यह मेरी मातृभूमि है -- इसका भान भी नहीं है। यदि यह भान रहता तो अपनी मातृभूमि खडित अवस्था में नहीं होती।

नागपुर में ही कितनी बडी सख्या में अनाथ व निराश्रित लोग दिखते हैं, कितने लोग ऐसे हैं, जिनके पास खाने के लिए अन्न भी नहीं है। बिहार व असम के बाढपीडितों की सहायता हेतु धन एकत्र करने के लिए नट-नटियों के कार्यक्रम करने पडे। क्रिकेट मैच आयोजित कर पैसा एकत्र करने का प्रयास किया गया। मेरे विचार में इस प्रकार जो पैसा एकत्र हुआ, वह तो नट-नटियों तथा तमाशा देखने का था। बाढपीडितों से सहानुभूति होने के कारण पैसा नहीं मिलता, अन्यथा इस प्रकार से पैसा माँगने की आवश्यकता नही पडती। इसे अच्छी स्थिति नहीं कहा जा सकता है। यह किसी स्वतत्र देश के सभ्य लोगों के आचरण को शोभा देनेवाला है? नहीं तो बाढपीडितों का दु ख, याने अपना दु ख, उनपर आई आपत्ति, याने अपने पर आई आपत्ति है, ऐसा लोग मानते। मगर वैसी भावना दिखाई नहीं देती। सब अपने उद्योग में मग्न है। मातृभूमि के बारे में जो अत्यत उत्कट श्रद्धा समाज के प्रत्येक मनुष्य के हृदय में दिखाई देनी चाहिए, उसका अभाव ही दिखाई देता है।

उस अभाव की पूर्ति कर अपने इस राष्ट्र के बारे में प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उच्च कोटि का स्वाभिमान जागृत कर, मातृभूमि के प्रति अत्यत आदर की भावना रखनेवाले व्यक्तियों को एक सूत्र में गूँथकर, आसेतुहिमाचल एक प्रबल सगठन समाज में निर्माण करना तथा उसके द्वारा राष्ट्र का

पुनर्निर्माण करने को आवश्यक कार्य समझकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने इसे अपने हाथ में लिया है। भिन्न-भिन्न प्रकार के बाकी कार्य तो होते ही रहेंगे। उन सब कार्यों का पोषण करनेवाला यह आधारभूत कार्य है।

卐卐卐

विजयादशमी, १९५४

विश्व में भिन्न-भिन्न समाज विद्यमान हैं। उनमें से कुछ समाजों की शेष समाजों की तुलना से कुछ अधिक प्रगति हुई दिखाई देती है। पुरुषार्थ चतुष्टयों में जिसको अग्रिम स्थान दिया गया है, वह है धर्म, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव आदि रहने पर भी संपूर्ण समाज की एक संस्कारयुक्त धारणा बनती है। उसके अनुसार ही अर्थ और काम- इन दोनों पुरुषार्थों का नियंत्रण होता है। इस प्रकार धर्म के नियंत्रण में अर्थ और काम- इन दो पुरुषार्थों से ऊपर उठकर, इस अखंड मंडलाकार संपूर्ण विश्व को व्याप्त करनेवाला जो सत् तत्त्व है, उसकी अनुभूति अर्थात् मोक्ष, यह चौथा पुरुषार्थ है। इन चारों पुरुषार्थों की दृष्टि से समाज-रचना की आवश्यकता है। उसी में मानवता का कल्याण भी है। आज के विद्यमान आडंबरों से विमुक्त होकर अपने राष्ट्र की प्राचीन गौरवमयी विचारधारा, परंपरा तथा अस्मिता को जागृत करने की आवश्यकता दिखाई देती है।

कई बार लोग पूछते हैं कि आजकल के नवयुवक तो सभी दृष्टि से अच्छे हैं, स्कूल जाते हैं, खेलते-कूदते हैं, विश्व की सभी छोटी-बड़ी बातों का ज्ञान रखते हैं। ऐसा होते हुए भी सेना में भर्ती होने के लिए उनके हृदय में प्रेरणा क्यों नहीं दिखाई देती? शिक्षण समाप्त कर अच्छी नौकरी प्राप्त करूँगा, स्त्री-पुत्र, धनधान्य की कामना करना, बहुत अधिक हुआ तो किसी के सामने खड़े होकर Your most obedient servant (आपका आज्ञाकारी सेवक) इस प्रकार कहना, ऐसी श्ववृत्ति क्यों दिखाई देती है? स्वाभिमान जागृत कर स्वतंत्र वृत्ति से अपना जीवन-निर्माण करने की प्रेरणा उनमें क्यों नहीं दिखाई पड़ती? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहना पड़ेगा कि दूसरी सभ्यता और संस्कृति का संकर हुआ है, उसी का परिणाम आज हमें दिखाई देता है।

मैं जीवशास्त्र का विद्यार्थी था, इसलिए जीवशास्त्र का ही उदाहरण देता हूँ। अश्व के समान दूसरा प्राणी गर्दभ है। इन दो प्राणियों के संकर

से तीसरा प्राणी उत्पन्न होता है। परंतु उसमें स्वतंत्र सृजन की शक्ति नहीं हुआ करती। वह केवल बोझा ढोने के योग्य प्राणी होता है। इसी प्रकार उस दूसरी सभ्यता के संकर होने के कारण यह वर्ग दिखाई देता है। उसमें स्वतंत्र विचार, स्वतंत्र प्रतिभा, स्वतंत्र शक्ति, स्वतंत्र बुद्धि आदि का अभाव दिखाई देता है। इसे यदि ठीक करना हो तो अंतःकरण में उसी प्राचीन शुद्ध, अत्यंत पवित्र भारतीय भावों को जागृत करने की आवश्यकता है।

इस दूसरी सभ्यता का आक्रमण जिस प्रकार हमारी बुद्धि पर हुआ है, उसी प्रकार का आक्रमण ऐहिक जीवन पर भी हुआ है। कुछ लोग कहते हैं कि हम स्वतंत्र हो गए हैं। मालूम नहीं, सच में स्वतंत्र हुए हैं या नहीं? यदि थोड़ी देर के लिए इस बात को हम मान भी लें कि हम स्वतंत्र हुए हैं, परंतु इस स्वतंत्रता के चिह्न तो दिखाई देने चाहिए। वह कहीं दिखाई नहीं देते।

प्राचीन काल में यह हिंदू-समाज अत्यंत संगठित था। एक प्रबल हिंदूराष्ट्र के रूप में जाना जाता था। हमपर जितने भी आक्रमण हुए, उनका सफल प्रतिकार कर आक्रामक को केवल परास्त ही नहीं किया, अपितु उसे पूर्णरूपेण अपनी संस्कृति में समाहित भी कर लिया।

ऐसा होने पर भी अभी कुछ ऐसे लोग बाकी हैं, जिनकी शत्रुता इस देश के साथ अभी शेष है। उनके अन्याय, अत्याचार अभी भी चल रहे हैं। अपनी ही मातृभूमि के एक अंग पर उनका शासन चल रहा है। यह बात कितनी अपमानास्पद है। जब तक ऐसी अवस्था बनी रहेगी, तब तक इस स्वातंत्र्य को पूरा स्वातंत्र्य नहीं कहा जा सकता। ऐसा होने पर भी उसी शत्रु देश के साथ मैत्री के संबंध बढ़ाने की बात कही जाती है। एक दूसरे को छोटा भाई, बड़ा भाई कहकर गले लगाया जाता है। हम यह कदापि नहीं भूल सकते कि इन्हीं लोगों ने पाकिस्तान की निर्मिति के पक्ष में अपने मत दिए थे। इसलिए वे हमारे शत्रु ही हैं। कोई कुछ भी कहे, पर हम तो उनको शत्रु ही कहेंगे। उनकी इस शत्रुता के लक्षण निरंतर दिखाई देते हैं। सन् १९४६ के पहले लगनेवाले नारे आजकल फिर से सुनाई देते हैं। दुनिया-भर में भारत के विरुद्ध जहरीला प्रचार यथावत चल रहा है।

उन्होंने देख लिया है कि कितनी भी गालियाँ दीं, तब भी भारत सरकार की जबान उनके विरुद्ध उठने वाली नहीं है। उनका यह विचार भी दिखाई देता है कि अभी पंजाब व बंगाल का आधा ही भाग हाथ में आया

है, वह पूरा क्यों न लिया जाए? इसी हेतु से भारतीय शासन को नानाविध उपायों से दबाना, उसको भ्रम में डालने का काम होता है।

एक और सकट सामने दिखाई देता है। वह, याने जीवदया के नाम पर दवाखाने, स्कूल आदि खोलकर उनके माध्यम से अपने धर्म का प्रचार करना। इतनी दूर से आकर यह जो दवाखाने वगैरह खोलने का कार्य है, वह कोई मानवता के प्रति दयाभाव के कारण नहीं हे। यदि केवल मनुष्य मात्र के प्रति दया का भाव होता, तो बीमारी से मुक्त होने के लिए ईसाई धर्म स्वीकार करने का आग्रह नहीं किया जाता। बीमारी का और धर्म का तो कोई सबध नहीं है।

कुछ वर्ष पहले विश्व के एक अत्यत विद्वान, बुद्धिमान तथा ख्यातनाम पाश्चात्य व्यक्ति ने इग्लैंड के ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन से छ भाषण दिए थे। World and West (विश्व व पश्चिम) इस विषय पर बोलते हुए उन्होंने कहा था कि यदि सपूर्ण विश्व में पश्चिमी यूरोप की प्रतिष्ठा बढानी हो, तो अत्यत कुशलता से ईसाई धर्म का प्रचार सारी पृथ्वी पर होना चाहिए। 'कुशलता से' यह शब्द प्रयोग बडे विचार से उपयोग में लाया गया था। चीन का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा था कि वहॉ ईसाई धर्म का प्रचार ठीक से हो नहीं सका और उन्हें वहाँ से निकाल दिया गया। क्योंकि जिस प्रकार से कार्य करना चाहिए था, वैसे नहीं किया गया।

इसके पीछे का मर्म समझना चाहिए। ईसाई धर्म के विरुद्ध मेरा मत है, ऐसी कोई बात नहीं है। वैसे तो सारे धर्मों को अपने मत का प्रसार करने का स्वातत्र्य होना चाहिए। परतु उसके लिए जो तरीका अपनाया जा रहा है, उसे ठीक नहीं कहा जा सकता।

पश्चिमी यूरोप के प्रभाव को किसी न किसी प्रकार स्थापित करने हेतु इस देश के पुरातन राष्ट्रजीवन की अस्मिता को दबाकर हमें बौद्धिक दास बनाने की जो चेष्टा चल रही है, उसी का नाम ईसाई धर्म-प्रचार है। ऐसा प्रचार जिनके द्वारा होता है वह तो इस देश के शत्रु ही समझे जाने चाहिए। परतु अपने देश के विधान के कारण वैसा माना नहीं जाता। इस प्रकार का सरक्षण पाकर उनकी राष्ट्रविरोधी चेष्टाएँ और बढी हैं।

देश के अदर का यह हाल है। यदि बाहर देखा जाए तो जिधर देखो उधर अपने शत्रु ही शत्रु दिखाई पडेंगे। दूसरे देशों से मैत्री का बडा ढिंढोरा पीटा जा रहा है। जगत् में आज दो गुट, । दोनों गुट

बाकी देशों को अपनी ओर खींचने का प्रयास करते हैं। सघर्ष के लिए किसी न किसी रणक्षेत्र की खोज में लगे रहते हैं। पहले कोरिया को इस निमित्त चुना गया। वहाँ जमा नहीं, तब इडोचाइना पर हाथ आजमाने का प्रयत्न हुआ। वहॉ से भी निकलना पडा। अब वे किसी ऐसे देश की खोज में हैं, जहाँ बहुत अधिक लोकसख्या हो और वह देशाभिमानविहीन हो, जहॉ किसी भी प्रकार का सगठित सामर्थ्य न हो, जो किसी प्रकार से उनका प्रतिकार न करे। इस प्रकार का स्थान इस समय तो हिदुस्थान के सिवाय दूसरा कौन-सा हो सकता है।

वे लोग उनके अपने देश में तो लडाई होने नहीं देंगे। वे बडे बुद्धिमान हैं, जानते हैं कि युद्ध तो दूसरे देशों की भूमि पर ही होना चाहिए। क्योंकि उद्देश्य में सफलता मिली तो ठीक ही है और यदि नहीं मिली तो कम से कम अपने देश की जनता, उनके घर-बार, कारखाने आदि तो नष्ट नहीं होंगे। उनका नुकसान तो होगा नहीं। जो कुछ हानि होगी, वह दूसरे की होगी। लोग मरेंगे तो वहॉ के, कल कारखाने नष्ट होंगे तो वहाँ के, आर्थिक पिछडापन आएगा तो दूसरों का। ये तो मुफ्त में तमाशा देखेंगे। इतना ही नहीं, वे तो शस्त्रों के विक्रय से कुछ लाभ ही कमाएँगे।

कोई कहते हैं कि हम तो तटस्थ हैं। हम किसी के झगडे में नहीं हैं। हमें उनसे भय क्यों होना चाहिए? परतु इस तटस्थता का कोई मतलब नहीं। युद्धोत्सुक गट इतने भोले नहीं हैं कि जब उनका स्वार्थ हो, तब वे तुम्हें तटस्थ रहने दें। पिछले युद्धों में तटस्थ देशों को क्या भुगतना पडा, इसका अध्ययन करें। वह अपनी ऑखें खोलने के लिए पर्याप्त होगा।

हॉलैंड ने भी स्वय को तटस्थ घोषित किया था। परतु जब जर्मनी ने देखा कि फ्रास पर आक्रमण करने के लिए सबसे अच्छा रास्ता हॉलैंड से होकर ही है, तब उसने हॉलैंड की तटस्थता को ठुकराते हुए पहले उसे जीता, उसके बाद ही अपनी फौज आगे बढाई। हॉलैंड की तटस्थता धरी रह गई। बलवान के सामने उसके समान बल प्राप्त किए बिना बोलना मूर्खता होती है।

इस प्रकार की सघर्ष की अवस्था में देश को सुरक्षित रखने की दृष्टि से विचार करना अत्यत आवश्यक है। लोग कहते हैं कि अब तो हम आजाद हैं, अपनी सेना है, इस कारण अपना रक्षण तो कर ही सकते हैं।

मगर हमने देखा कि यही सेना कश्मीर में थी और देखते-देखते कश्मीर का एक-तिहाई हिस्सा शत्रु के हाथ में चला गया। कश्मीर गया, तब किसी के हृदय पर चोट लगी क्या?

देश को सामर्थ्यसंपन्न करने के लिए एक और बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि दूसरे देशों से शस्त्रादि मँगवाकर हम बलवान नहीं हो सकेंगे। इस बारे में इतिहास का एक उदाहरण आपके सामने रखता हूँ।

जब अपने देश की असंगठित एवं दुर्बल अवस्था हो गई थी, तब इसी नागपुर के भोंसले राजवंशियों ने राष्ट्र को फिर से सामर्थ्य- संपन्न करने के लिए, उसका पुनरुत्थान करने के उद्देश्य से अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए फ्रांस से शस्त्रास्त्र मँगवाए थे। उस समय फ्रांस में नेपोलियन बोनापार्ट राज्य कर रहा था। उसने देखा कि ये लोग अपने साम्राज्य विस्तार में सहायक हो सकते हैं। मतलब रहने तक वह शस्त्रास्त्र भेजता रहा। बाद में वहाँ से शस्त्रास्त्र आना एकदम बंद हो गया। भोंसलों द्वारा शस्त्रों की कोई स्वतंत्र व्यवस्था न करने कारण युद्ध में वे अंग्रेजों के सामने टिक नहीं सके और उसके ठीक तीन वर्ष बाद पुणे के शनिवार बाड़े से अपना सुवर्ण गैरिक भगवा ध्वज उतर गया।

इससे यह स्पष्ट होता है कि जब खुद की शक्ति होगी, तभी हम शत्रु का सामना कर सकेंगे, अन्यथा नहीं। इस परिप्रेक्ष्य में आज के अंतरराष्ट्रीय संघर्ष में हम सुरक्षित रहेंगे– यह सोचना कोरी कल्पना ही हो सकती है, प्रत्यक्ष में यह हो नहीं सकेगा।

इस परिस्थिति में अपने प्राचीन सुसंगठित राष्ट्रजीवन का स्मरण कर, राष्ट्र की आत्मा का जागरण कर, संस्कृति व सभ्यता की संकरता को दूर कर, पुरुषार्थ चतुष्टयों को स्वीकार कर, उसकी नींव पर राष्ट्र को वैभवसंपन्न बनाएँगे, इस प्रकार की श्रेष्ठ भावना को लेकर चलना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। सारे संसार की सर्वश्रेष्ठ अजेय शक्ति बनेंगे– इस प्रकार की उत्तुंग आकांक्षा को लेकर चलने के लिए, अत्यंत सामर्थ्यसंपन्न, सुसंगठित बलशाली राष्ट्र के प्रति नितांत प्रेम लेकर चलनेवाले और राष्ट्रभाव से ओतप्रोत ऐसे व्यक्तियों का आसेतु हिमाचल एक प्रबल संगठित सामर्थ्य खड़ा करना होगा। यही एकमेव मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग हो नहीं सकता। संघ पिछले ३० वर्षों से इसी दिशा में प्रयत्न करता हुआ नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम में बढ़ता हुआ अपने ही कुछ बांधवों के कारण जो बाधाएँ व संकट उपस्थित किए गए उन्हें पार करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है।

❁ ❁ ❁

शस्त्रपूजन, १९५५

उथल-पुथल मचानेवाले भाषावाद और उससे उत्पन्न विघटनकारी असहिष्णुता के विनाशकारी वातावरण में देश रचनात्मक प्रगति के पथ पर नहीं बढ सकता। अपने उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग में भाषावाद और प्रांतवाद बाधक सिद्ध होंगे। अतः संपूर्ण समाज में एकता स्थापित करने के लिए 'एकता मंच' की नितांत आवश्यकता है।

महाराष्ट्रीय और गुजराती एक साथ रहने को तैयार नहीं है, इस पर आश्चर्य होता है। ऐसे में कश्मीर से कन्याकुमारी तक पूरे समाज को एकात्म भाव से कैसे भर सकेंगे?

हिंदू का आदर किसी एक आदमी की उच्च गुणवत्ता के कारण न होकर संपूर्ण समाज की उच्च गुणवत्ता, त्याग, तपस्या और बलिदानी वृत्ति के कारण जगत् में है। राष्ट्रीय भावना की विस्मृति के कारण हमारे इन गुणों का प्रभाव लुप्त हो गया प्रतीत होता है। हमारे अपने लोग ही जिस प्रकार हिंदुत्व का निषेध और अपमान करते हुए दिखाई दे रहे हैं, उसका निराकरण सशक्त सामाजिक संगठन से ही संभव है।

बहुत से लोग हम पर आक्रामक हिंदू होने का आरोप लगाते हैं। परंतु वही लोग तिब्बत पर चीन के आक्रमण को चीन का 'आंतरिक मामला' कहकर टाल देते हैं। वह उन्हें आक्रामक नहीं लगता। अब उसी चीन ने भारत की भूमि पर कब्जा कर लिया है। हम उनकी गोलियों का ठीक से उत्तर भी न दे सके। उसके हस्तक तो पहले से ही हमारे देश में सक्रिय हैं, जो उसकी सब प्रकार की कार्यवाहियों का समर्थन ही करते हैं। हमारे देश की राजधानी में ही चीन ने 'विशाल चीन' के मानचित्र बेचे और बाँटे हैं। इसके प्रत्युत्तर में हमारी सरकार द्वारा केवल निषेध-पत्र जारी कर कर्तव्य की पूर्ति कर दी जाती है।

कम से कम अपने देश में तो अपमानमुक्त जीवनयापन कर सकने का वातावरण होना चाहिए, ताकि हम आत्मविश्वास और सम्मान के साथ सिर उठाकर चल सकें। इसके लिए हमें आवश्यक सामर्थ्य प्राप्त करना होगा। संघ इस सामर्थ्य को प्राप्त करने के लिए ही प्रयत्नशील है।

शस्त्रपूजन, १९५६

हमारा हिंदू-समाज आज सुसगठित नहीं है। आपस में प्रेम और स्नेह की आवश्यकता रहती है, वह नहीं है। समाज सुसूत्र चल सके, ऐसा अनुशासन नहीं है। समाज के प्रति श्रद्धा चाहिए, बधुभाव चाहिए, एक दूसरे के प्रति मित्रता चाहिए, एक दूसरे की सहायता करने की इच्छा चाहिए। एक दूसरे के बारे में अभिमान चाहिए।

इन सब बातों का आज अभाव दिखाई देता है। जिस समाज में इतनी विस्मृति हो, उस समाज की दिन-प्रतिदिन हानि और कमी होती हुई दिखाई देती है। हम देखते हैं कि इस समाज से भिन्न मत रखनेवाले, राजनैतिक लक्ष्य रखनेवाले भिन्न-भिन्न मतानुयायी हैं। वे इस समाज से परिस्थितिवश बिछुडे हुए, परिस्थितिवश दरिद्र व्यक्तियो के पास जाकर भिन्न-भिन्न प्रलोभन दिखाकर, कभी मिथ्या बातो को सामने रखकर अपने-अपने पथ मे खींचते हैं। हमारे समाज के बधु परस्पर सौहार्द के अभाव के शिकार होकर उनकी बातो मे आकर उनकी कुटिल चाल में फँस जाते हैं।

आरभ में यहाँ केवल एक हजार मुसलमान बाहर से आए थे, जो अब कोट्यावधि हो गए हैं। इसी प्रकार कुछ थोडे से ईसाई ही यहाँ आए थे, वे भी आज लक्षावधि हो गए हैं।

उनके प्रभाव में आए और उनका पथ स्वीकार करनेवाले हमारे ही बधु अब अपने ही समाज से विलग रहना चाहते हैं। उनका यह अलगाव अपनी मातृभूमि को प्रेम, एक धर्म, एक जीवनादर्श, एक तत्त्वज्ञान, एक सस्कृति की परपरा को भुलाकर पृथकता की माँग तक जा पहुँचा है।

हम ठीक ढग से विचार नहीं करते, अन्यथा देश विभाजन न होता। नागालैंड, झारखड जैसे स्वतत्र स्थान की माँग न होती और न उसके लिए आदोलन चलते। विभाजन के बाद भी बचे हुए मुसलमानों के लिए अलग स्थान की माँग, यद्यपि अब वह केवल छोटे प्रमाण में सामने आती हो, उत्पन्न न होती। किंतु यह सब हुआ और हो रहा है। इसी कारण उनमें इस राष्ट्र के प्रति विरोध की भावना उत्पन्न हुई है।

कुछ लोग अभी इस सीमा तक तो नहीं गए हैं फिर भी अपने ही समाज के अन्य पथों के साथ जाने की बात सोचते हैं। जैसे कि जैन पथ,

जो यज्ञ संस्था आदि मान्यताओं के विपरीत निरीश्वरवाद या निराकार की उपासना को लेकर चलनेवाला है, किंतु यह हिंदू-समाज से अलग नहीं है। समय-समय पर अपने समाज में निर्माण हुई कमी को हटाने के लिए ऐसे अनेक पंथ निर्मित हुए हैं। उस समय की यही माँग थी। जैसे वेदोत्तर विचार का प्राबल्य देखकर उन विचारों के विरुद्ध आवाज उठाकर, फिर से वैदिक ऋचाओं का घोष खडा करनेवाला आर्यसमाज निर्माण हुआ। वह विद्रोही नहीं है, समय की माँग के अनुरूप सामने आया था। वैसे ही उत्तर भारत में सिख संप्रदाय है, परंतु कभी-कभी बडे-बडे नेता भी 'हिंदू और सिख' ऐसा उल्लेख करते हैं।

मैं तो कहता हूँ कि ऐसे अलग-अलग शब्द का उपयोग करनेवाला और उसमें आनंद माननेवाला व्यक्ति सबसे बडा पापी है, अधम है। यह शब्द थोडे कटु हैं, परंतु अपने प्राणप्रिय समाज के बारे में ऐसे विचार रखनेवाला और अपने इस समाज के टुकडे करनेवाला व्यक्ति देखकर अंतःकरण में स्वाभाविक क्षोभ उत्पन्न होता है, इसीलिए मैं ऐसा कहता हूँ। ऐसा ही आपको और बाकी सबको भी लगना चाहिए।

वैसे ही अति प्राचीनकाल में भगवान गौतम बुद्ध ने एक संप्रदाय चलाया था। फिर उसमें भी हिंदूसमाज से दूर जाने की भावना उत्पन्न हुई। उस पंथ के लोगों को कभी-कभी अपने देश के व्यक्तियों से दूसरे देश के, उसी पंथ के व्यक्ति अधिक अच्छे लगने लगे। सनातन जीवन-प्रणाली का विरोध करने के कारण कभी-कभी वह राष्ट्रविरोधी भी बना।

हिंदुत्व, जो शुद्ध भारतीयत्व है, हिंदू आचार-विचार, हिंदू संस्कृति, इसके बारे में अरुचि रखनेवाले विचार और राजनीतिक संस्था के बारे में उन लोगों की रुचि दिखाई देती है। कुछ ऐसे हैं, जो अभी स्पष्ट रूप से राष्ट्रविरोधी नहीं है, किंतु उनके साथ मिलने की इच्छा रखते हैं। यह स्थिति आत्मविस्मृति के ही कारण है।

ऐसा करके वे उत्कर्ष व प्रगति कर सकने की आशा रखते हैं। परंतु कुछ कपडे अधिक पहनने को मिले, कुछ रोटी अधिक मिले इसमें उत्कर्ष है क्या? हम मनुष्य हैं और हमारे पास बुद्धि है, परंपरा से प्राप्त विचारधारा का विचार करते हुए तदनुरूप जीवन बनाने का प्रयत्न करते हैं, उसके कारण हम मनुष्य हैं।

इसी बात का विचार करते हुए संघ ने कहा कि जीवन के शुद्ध

आदर्शों का स्मरण करते हुए हिंदु-समाज की इस आत्मविस्मृति को हटाना हमारा काम है। बाकी को राजनैतिक, आर्थिक आदि प्रकार का कार्य करने की इच्छा हो तो उनको उसमें ही आनद रहे, परतु हमारा यह विचार– सब जाति-पथों को इकट्ठा कर सूत्रवद्ध, प्रवल स्वाभिमानी अपनी परपरा का अभिमान और तदनुकूल जीवन बनाने की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों को खडा करना – यही है। यह काम मानव-समाज की श्रेष्ठता के चिरतन कार्य की नींव के रूप में है। यह काम दिखता नहीं। इसलिए इस मौलिक काम की विस्मृति होकर हम इधर-उधर के विचार करने लगते हैं। एक बार फिर से सबको मैं नम्रता से कहता हूँ कि ऐसा काम किए बिना बाकी सब आर्थिक, राजनैतिक आदि कार्य अनर्थकारक हैं। उनमें वास्तविक सुख देने का सामर्थ्य नहीं है।

अपने यहाँ पर अनेक योजनाएँ होती हैं। हर बार कहते हैं कि अगले ५ वर्षो में इसके कारण दु ख कम होगा, सुख की मात्रा बढेगी, यह मिलेगा, वह मिलेगा आदि। परतु इसके कारण दु ख कम हुआ है – ऐसा देखने में नहीं आता। इस बात के लिए करोडों रुपए उड गए और भी उड जाएँगे, तब भी वास्तविक काम नहीं होगा। काम होने का केवल आभास उत्पन्न होगा, वास्तविकता में कुछ नहीं होगा। खाना-पीना भी नहीं मिलेगा और चैतन्य भी निर्माण नहीं होगा।

यदि कोई ईमानदारी व सच्चाई के साथ, अत करण का अहकार हटाकर विचार करे, तो उत्तर यही मिलेगा कि इसमें परपरा का नाश है। समाज में विद्रोह हे, ग्लानि हे, फिर भी समाज के सुदृढ चैतन्यमय स्वरूप के निर्माण की कोई योजना या व्यवस्था नहीं है।

मैं तो कहता हूँ कि यदि ऐसा ही चलता रहा तो पाच वर्ष के बाद अधिक दारिद्रय, अधिक दुर्गति देखने को मिलेगी। यदि परपरा से प्राप्त आध्यात्मिकता की नींव फिर से भरेंगे और दृढ आधार पर समाज खडा करेंगे, तब योजना न करते हुए भी अथवा योजना न करने पर भी समाज अधिक सुखी होगा। समाज-जीवन की विशृखलता को दूर कर श्रेष्ठ समाज के निर्माण का कार्य ही करणीय है। इसीलिए सघ ने परपरा से प्राप्त हिंदुत्व के अभिमान और बल के साक्षात्कार को जगाने का काम अपने हाथ में लिया है।

ऌ ऌ ऌ

विजयादशमी, १९५६

आज के इस उत्सव के अध्यक्ष स्वामी चिन्मयानदजी के भाषण से देश की परिस्थिति देखकर उन जैसे साधु के अत करण में कितनी व्यथा उत्पन्न हुई है, यह हम समझ सकते हैं। जब क्रोध और मोह से अलिप्त, शात वृत्ति से रहनेवाले सन्यस्त लोग अत्यत क्षोभ का अनुभव कर रहे हैं, तब सामान्य समाज कितना सकटग्रस्त होगा, उसकी अवस्था कितनी बुरी होगी, इसका विचार करना चाहिए। अन्यथा ऐसे साधु-सन्यासियों को क्रोध नहीं आता।

हो सकता है कि कोई यह सोचे कि समाज में अन्य श्रेष्ठ व्यक्ति भी हैं। यह भी जानना चाहिए कि इस परिस्थिति में उनका क्या कहना है। उनमें से कुछ तो हमें साप्रदायिक कहते हैं। साप्रदायिक माने क्या? इसकी व्याख्या आज तक किसी ने नहीं की। कहते हैं, परतु व्याख्या नहीं करते। इसके दो कारण हो सकते हैं– या तो वे इसका अर्थ जानते नहीं होंगे अथवा जानते हुए भी उसे प्रकट करने की ईमानदारी उनमें नहीं होगी। जो हमें साप्रदायिक कहते हैं, उनको हिंदू-समाज का पुनरुत्थान ही 'साप्रदायिक' दिखता है। अन्य कोई बात साप्रदायिक नहीं लगती।

वास्तव में तो जिनको साप्रदायिक कहा जाना चाहिए, ऐसे लोग अधिकाधिक मात्रा में चारों ओर बढते हुए दिखाई देते हैं। मुसलमान और ईसाई – दोनों ही राष्ट्रविरोधी वातावरण निर्मित करते दिखाई देते हैं। इस भारतमाता का वास्तविक पुत्र यह जो हिंदू-समाज है, उसका विरोध करने में ही मुसलमानों ने एक हजार साल व्यतीत किए हैं।

अभी उन्होंने एक आदोलन किया था। उस आदोलन का कारण वह पुस्तक बनी, जिसको आदोलन करनेवालों में से किसी ने पढा नहीं होगा और जो आज नहीं, १५ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी। अब आज उस पुस्तक पर आपत्ति करने का कारण क्या है? केवल यही कि एक हिंदू ने उस पुस्तक को प्रकाशित किया है। पुस्तक प्रकाशित करनेवाला वह व्यक्ति भले ही विद्वान और बडा साहित्यकार हो या किसी राज्य का राज्यपाल ही क्यों न हो। उसका अपराध बस, इतना ही है कि वह हिंदू है। ऐसे आदोलनकारियों को कोई साप्रदायिक नहीं कहता। इतना ही नहीं, उन्होंने कुछ आक्षेपादि किया है, ऐसा भी नहीं माना जाता।

उस प्रकाशक की शिकायत यहाँ के मुसलमानों ने सऊदी अरबस्थान के राजा इब्न सौद से की। इनके रक्षणकर्ता वे विदेशी हैं क्या? अपने प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू सऊदी अरबस्थान में गए थे, तब वहाँ के राजा ने उनसे पूछा, 'आपके देश में हमारे मुसलमान भाई अच्छे तो है?'

उन्होंने भी उत्तर दिया, 'हाँ, हम आपके मुसलमानों को अच्छी तरह से रखते हैं।'

यह तो वैसे ही हो गया, जैसे दूसरे देश के नागरिक यहाँ रहते हों और उनपर आपत्ति आने पर उनकी पूछताछ उस देश के राज्यकर्ता किया करते हैं। इसका अर्थ यह निकलता है, जैसे यह उस सऊदी अरेबिया के बादशाह के नागरिक हैं। अगर यह अर्थ प्रधानमन्त्री को अभिप्रेत और मान्य हो, तो जो चार करोड़ मुसलमान इस देश में रहते हैं, उनको मत देने का अधिकार क्यों होना चाहिए? उनका मताधिकार समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

जब मुझे कोई सांप्रदायिक कहता है, तब मैं तो कहता हूँ कि 'अच्छा, मैं हूँ।' जिस समाज में जन्म लिया है, उसका रहने से कोई सांप्रदायिक कहता हो तो इतने के लिए उस समाज को भूल जाना और उससे बेईमानी करना मैंने सीखा नहीं।

विश्व के सारे राष्ट्र दिन-प्रतिदिन अपने शस्त्रास्त्र बढा रहे हैं। अतिक्रमण कर अपनी सीमाएँ भी बढा रहे हैं। कुछ समय पूर्व चीन की कुछ सेनाएँ ब्रह्मदेश में घुस गई थीं। उस बारे में शिकायत करने पर चीन ने अपनी सेना वापस नहीं ली और ऊपर से कहा कि अपनी सीमा का ठीक से विचार कर, सीमा निर्धारित करेंगे। अभी चीन का एक नक्शा बिक्री हेतु जारी किया गया था, जिसमें नेपाल, हिमालय, पूरा कश्मीर और भूटान आदि प्रदेश को चीन का हिस्सा बताया गया था। आगे कुछ हुआ, तब वे फिर से कहेंगे कि पहले सीमा निश्चित करेंगे।

ऐसा करते-करते दिल्ली पर भी उनका अधिकार हो सकता है और तब हो सकता है कि पंडित नेहरू को चीन के प्रधानमंत्री का उपप्रधानमंत्री बनकर रहना पड़े।

क्या हम देखते रहेंगे कि हमारा चिरजीव अमर राष्ट्र बातों-बातों में दूसरे के पैरों तले रगडा जाए या इसका प्रयास करेंगे कि हमारा राष्ट्र

अजेय, अमर रहे और इसके लिए अत्यत पराक्रम कर वल से सपन्न ऐसा एक महान श्रेष्ठ राष्ट्र शीघ्रातिशीघ्र खडा करेंगे।

अहिंसा का उपदेश देनेवाले भगवान वुद्ध के जीवन का एक प्रसग आज स्मरण करना ठीक होगा। अपने धर्मप्रसार-भ्रमण के क्रम में वे एक शहर में गए। उसी समय वहाँ के राजा पर परकीयों का आक्रमण हुआ। वह राजा वुद्ध के पास जाकर पृछने लगा— 'मैं क्या करूँ?' गौतम वुद्ध ने उत्तर दिया— 'राजा को भिक्षु होने की आवश्यकता नहीं है। जाकर पहले अपने राज्य की रक्षा करो।'

भगवान वुद्ध भी यह माननेवाले नहीं थे कि यज्ञ में पशु-हिसा करने से मोक्ष मिलता है। वे भारतीय परपरा में ही उत्पन्न हुए थे और भारतीय जीवन-रचना को माननेवाले थे। भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है 'परित्राणाय साधूनाम्, विनाशाय च दुष्कृताम्।' उन्होंने भी दुष्कृताम् विनाशाय, याने पाप करनेवालों का विनाश करना— यही कहा है।

शक्ति, सुखसपन्नता, शुद्ध हिंदुता के लिए आह्वान करनेवाले हिंदू सगठन का यह कार्य चल रहा है। यह सगठन व्यक्ति-व्यक्ति को हिंदू के नाते चरित्रसपन्न वनाकर सवमें एक अनुशासन का सूत्र निर्माण करने के कार्य में व्रतस्थ है। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का काम शीघ्रातिशीघ्र सफल और पूर्ण करने के लिए सव व्यक्ति आगे आएँ, इसका आज आह्वान कर रहा हूँ।

ॐ ॐ ॐ

शस्त्रपूजन, १९५७

प्रकृति का नियम है कि वलवान निर्वल को खाकर जीवन-यापन करता है। व्यवहार में इसका अनुभव हमें होता ही है। आज साम्राज्य-विस्तार की अभिलापा से विश्व की शक्तियॉ वही कर रही हैं। भले ही वह कार्य आर्थिक साम्राज्यवाद के विस्तार का हो अथवा अपनी विशिष्ट विचार-प्रणाली के प्रसार का हो।

अभी हाल ही में अपने नगर में एक रूसी चित्रपट प्रदर्शित हुआ था। उस चित्रपट के प्रथम दृश्य में मास्को नगर दिखाया गया था और उसपर लिखा हुआ था 'विश्व की भावी राजधानी मास्को । क्या यह जगत् पर स्वामित्व-स्थापना की इच्छा को प्रकट नहीं करता?

आज के युग में जव विश्व के सारे देश वैचारिक, आर्थिक,

सास्कृतिक और राजनीतिक साम्राज्यवाद की स्थापना में प्रयत्नशील हैं, इस परिस्थिति में अपने समाज को सुरक्षित तथा स्वत्वपूर्ण बनाए रखते हुए, उसकी विशेषताओं को उन्नत करना हो, तो अपना देश शक्तिसपन्न होना आवश्यक है। शक्ति-सग्रह न रहने पर सभी प्रकार की आपत्तियाँ आती हैं। हमारा पूर्व इतिहास इसका साक्षी है।

यह शक्ति कहाँ से प्राप्त हो, यह प्रश्न उपस्थित होता है। नि सदेह यह शक्ति बाहरी सूत्रों से प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि इस दिशा में हुए प्रयत्नों का इतिहास यह बताता है कि उस शक्ति का आह्वान करने पर हम उसे अपनाने में अपना स्वत्व खोते गए। यहाँ तक कि आज हमें 'हिंदू' कहलाने में लज्जा, घृणा व निंदा का अनुभव होने लगा। इन प्रयत्नों ने हमारी स्थिति 'धोबी के कुत्ते' जैसी कर दी है। हमारे पैर जमीन से उखड गए हैं और हवा जिस दिशा में बहती है, उसी दिशा में हम भी बहने लगे। इस आत्मविस्मरण से एक प्रकार की बेहोशी उत्पन्न हो रही है। बाहरी सहायता पर निर्भरता तो हमें पूरी तरह नष्ट कर देगी।

हमें जिस शक्ति को प्राप्त करना है, वह वास्तविक शक्ति होनी चाहिए। हम सब इस महान कार्य में थोडे-थोडे सहभागी होकर सामर्थ्यशाली राष्ट्र का मूर्तस्वरूप साकार करें, जो सारे सकटों का सामना करने में सक्षम हो। इतना प्रचड सामर्थ्य और शक्ति हमें अपने चैतन्य से, स्वत्व से उत्पन्न करनी है। यही एकमेव मार्ग है, ऐसा समझकर ही सघ ने इस दिशा में कदम बढाएँ हैं।

समाज में सुधार लाकर, उसकी सुरक्षा करते हुए सकटों का सामना करने का सामर्थ्य निर्माण करना है। प्रत्येक में यह भाव उत्पन्न करना है कि किसी भी प्रकार के आक्रमण को सहन नहीं करेंगे। इस अति महत्त्व के कार्य के लिए हम अपना कुछ समय दें। सब लोग एक स्थान पर, एक ही भाव से एकत्र होकर सूत्रबद्ध अनुशासित जीवन का निर्माण करें, यही अपनी आकाक्षा व कर्तव्य होना आवश्यक है।

हम विभिन्न प्रकार के नारे सुनते हैं, किंतु उनसे कोई स्पष्ट अर्थ-बोध नहीं होता। इन नारों से अलग हटकर स्वय विचार करें कि यह मातृभूमि अपना अधिष्ठान है। जो समाज पुत्ररूप में उसपर रहता है, उसका अग है, उस समाज को स्वाभिमानयुक्त, स्वत्वपूर्ण, सामर्थ्यशाली, सूत्रबद्ध, अनुशासित बनाना हमारा कर्तव्य है। सघ इसी विचार से इस

शक्ति को उत्पन्न करने का कार्य कर रहा है और इसी के प्रतीकस्वरूप शस्त्र-पूजन किया जाता है।

विजयादशमी, १९५७

ठोस भावात्मक विचार सामने न होने के कारण सारे लोग प्रवाह-पतित के समान बहते जा रहे हैं। कांग्रेस का ही उदाहरण अपने सामने है। लोकमान्य तिलक जी के समय 'कांग्रेस' जिस हिंदुत्व व राष्ट्रवाद की हामी भरती थी, आगे चलकर उसी कांग्रेस की स्थिति ऐसी हो गई है कि हिंदूराष्ट्र का नाम लेते ही कांग्रेसियों को पसीना छूटने लगता है। ऐसी स्वाभिमानविहीनता के कारण ही अपने देश की स्थिति दयनीय हो गई है। देश आज विश्व के सामने भीख का कटोरा लिए खडा है, इसकी उन्हें जरा भी लज्जा नहीं है।

समाजवाद का विचार असफल सिद्ध हो चुका है, फिर भी हम उसी के गीत गाए जा रहे हैं। समाजवाद का स्वीकार करनेवाले जर्मनी व इटली में कैसी उद्दंडतापूर्ण तानाशाही निर्माण हुई, इसको सबने देखा है। संसार में अपना आधिपत्य कायम रखने के प्रयत्न करनेवाले रूस ने समाजवाद के दूसरे रूप साम्यवाद को पुरस्कृत करते हुए उसे अपनाया। यहाँ मनुष्य कितनी हीन अवस्था में पहुँच चुका है। इस समय देश में भौतिकता का बोलबाला है। वह मनुष्य को पशुत्व की ओर ही ले जानेवाला है। परंतु हमारा ध्येय वाक्य तो 'कृण्वतो विश्वमार्यम्' का है। विश्व से भौतिकता का विष नष्ट करके हमें आध्यात्मिकता का अमृत भरना है। इस शुभ आकांक्षा के लिए किसी ने हमें 'साम्राज्यवादी' कहा तो भी चलेगा।

विजयादशमी, १९५८

हम देखते हैं कि अनेक प्रकार के साधन, सामग्री तथा शस्त्रास्त्र अपने पास होते हुए भी केवल विजय की आकांक्षा का अभाव होने के कारण हम लोग पराभूत हुए। राजपूतों का इतिहास अपने सामने है। मुझे उनके प्रति विशेष श्रद्धा है। परंतु हम देखते क्या हैं कि जब-जब वे रणबाँकुरे युद्ध करने निकले, मर जाने की इच्छा से निकले। अपनी माँ,

वहन, पत्नी आदि घर की महिलाओं को अग्नि में आत्माहुति देने को कह स्वय केसरिया बाना धारण कर पराक्रम करने निकलते थे। उन्होंने अपूर्व व तेजस्वी पराक्रम किए, उनका बलिदान स्फूर्तिदायक है, परतु मरने के निश्चय के कारण वे असफल रहे। भगवान तो कल्पवृक्ष के समान है। कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर यदि कोई सुखोपभोगों या ज्ञान-प्राप्ति की कामना करता है तो उसकी वह कामना पूर्ण होती है। लेकिन यदि कोई उसके नीचे बैठकर मन में यह लाए कि कहीं मैं मर तो नहीं जाऊँगा। कल्पवृक्ष उसकी इस कल्पना को भी 'तथास्तु' कहता है। उसे वही मिलता है, जो वह मन में लाता है। अत सदा विजय की कामना के साथ कार्य करते हुए आगे बढें।

अपने यहाँ अवतारी पुरुष भगवान राम, श्रीकृष्ण, वामन, कभी पराभूत नहीं हुए। वे सदैव विजयी ही रहे। हमारी सस्कृति विजयोपासिनी है। आज की अपनी इस अनैसर्गिक, महापतित व लाछनीय परिस्थिति में हमें उत्थान के लिए विजय की उपासना करना अनिवार्य है।

लोग कहते हैं हमारी मातृभूमि स्वतत्र हो गई है, उसे स्वतत्र कर हमने महान विजय पाई है। कितु यह वृथा अभिमान है। इस वृथा अभिमान को, दर्प को छोडकर यदि हम विचार करे और सोचें तो हमें पता लगेगा कि अग्रेज यहाँ से गए– हमारे पराक्रम से नहीं, अपितु एक विशेष अतरराष्ट्रीय परिस्थिति के कारण उन्हें जाना पडा। यदि वे हमारे पराक्रम से गए हैं तो उन्होंने अन्य देश स्वतत्र क्यों किए? क्या श्रीलका, ब्रह्मदेश में भी ऐसे आदोलन हुए थे? इसका जवाब 'नहीं' में ही मिलेगा। फिर भी वे देश स्वतत्र हुए। इसका एकमात्र कारण यह है कि अतरराष्ट्रीय परिस्थिति के कारण वे अपना राज्य बनाए रखने में असमर्थ थे, इसलिए यहाँ से गए।

देश में सर्वत्र पराजय, पराभव और मानहानि ही दिखाई दे रही है। अभी २-४ मास पूर्व 'नेहरू-नून समझोता' क्या हमारी विजय का लक्षण है? दो-चार मील भूमि इधर क्या और उधर क्या। इसलिए समझौते के अनुसार उधर ही दे दी। जो भाग दिया है, वह ऐसा नहीं था कि शत्रुराज्य से घिरा हो और न अभी तक पाकिस्तान ने माँगा था। मगर वह भी दे दिया। पर क्या इस समझौते से झझट सदा के लिए मिट गया है? इसे अभी डेढ मास भी पूरा न हो पाया था कि नए समझौते के अनुसार बनी सीमा के इस पार असम की सीमा पर पाकिस्तानी सेना और वहाँ के गुडे

आधा-आधा मील घुस आए और फसल व वृक्ष काटकर ले गए। क्या यह समझौता विजय का द्योतक है? क्या यह हमारा पराभव नहीं है?

फिर भी सब कुछ भुलाकर हम उन्हें गले लगा रहे हैं। एक जागृत प्रवासी के नाते पूरे देश में भ्रमण करते रहने के कारण राष्ट्रजीवन को निकट से देखने का अवसर मिलता है। मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि सब ओर सतही शाति है, परतु अदर ही अदर सारे सकट, सारी आक्रमणकारी शक्तियाँ सबल हो रही हैं। उनकी नीति और मार्गक्रमण स्वतन्त्रता-पूर्व के काल की तरह ही अभी भी जारी हैं। वे राज्य के साथ रहें अथवा किसी पक्ष के साथ रहें, अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। वे कभी आदोलन, कभी धौंसबाजी, कभी मारपीट, यहाँ तक कि खून-खराबा, हत्या आदि करने में भी नहीं चूकते। यह सब करते हुए उन्होंने पजाब, सिध और बगाल ले लिया। आज भी वे वही मार्ग अपना रहे हैं। भले ही सफेद टोपी पहन रखी हो, कितु हृदय काला ही है। उनकी माँगें लगातार बढती जा रही हैं। कभी उर्दू के नाम पर तो कभी किसी किताब को लेकर आदोलन करते हैं।

पहले भी आक्रमण होते रहे हैं। वे राज्य पर होते थे। आज आक्रमण का स्वरूप बदला है। अब आक्रमण यहाँ के राष्ट्रजीवन, यहाँ की परपरा-विशेष, यहाँ की जीवन-पद्धति और जीवन निष्ठा पर हो रहे हैं।

राजनीतिक दृष्टि से तो अपने देश की अतिविचित्र और दयनीय स्थिति है। इस देश का नागरिक होने के लिए इस देश से प्रेम होना प्राथमिक आवश्यकता होनी चाहिए। लेकिन कुछ समाज ऐसे हैं, जो रहते यहाँ हैं, परतु उनकी निष्ठा इस देश के बाहर कहीं पर रहती है। अपने यहाँ के ईसाइयों ने तो अपनी निष्ठा प्रभावशाली ईसाई राष्ट्रों को बेच दी है। मुसलमानों का तो कहना ही क्या। कम्युनिस्ट भी चीन व रूस से ही नाता रखते हैं। उनके इशारे पर अपनी नीति का निर्धारण करते हैं। हमारे देश के कम्युनिस्ट रूस के इशारों पर कैसे नाचते हैं, इस विषय में एक अत्यत उपयुक्त और सत्य घटना मुझे स्मरण आती है।

अपने केरल राज्य में आजकल कम्युनिस्टों का शासन है। वहाँ नीति-निर्धारण के विषय में कुछ मतभेद था। अतिम निर्णय के लिए उन्हें मास्को के आदेश की आवश्यकता पडी। इसलिए वहाँ जाने के लिए केरल के एक मत्री को बीमार घोषित किया गया। उनके पेट-दर्द की दवा

भारतवर्ष में नहीं थी। अत उन्हें रूस भेजा गया। यात्रा के लिए सरकार की ओर से पासपोर्ट, जाने-आने का खर्च आदि दिया गया। वे महोदय वहाँ से आदेश लेकर आए, तव उनकी नीति का निर्धारण हुआ। इस प्रकार विदेशों के आदेशों पर चलनेवाले देश के शत्रु ही हैं। परतु हमारी आत्मघाती उदारता ऐसी है कि इन लोगों को भी नागरिक माना जा रहा है। अति सस्ती नागरिकता है हमारे देश की।

ऐसी दुरवस्था से ऊपर उठने का मार्ग परिस्थिति की भीपणता से हतवीर्य होना तो नहीं है। अपने इस राष्ट्र के स्वत्व को बचाते हुए, स्वाभिमान के साथ राष्ट्र की रक्षा करना, उसकी सेवा करना अपना कर्तव्य है। वह करने के लिए शीलसपन्न, चारित्र्यसपन्न, राष्ट्रभक्तियुक्त, राष्ट्ररक्षा के लिए सदा सन्नद्ध, अनुशासित स्वयपूर्ण प्रबल सगठित समाज को खडा करने की नितात आवश्यकता हे। सारी राजनीतिक बातें, भेद-निष्ठाएँ आदि भुलाकर, सारे झझटों को परे रखकर काम करना होगा।

यह अपना राष्ट्र है, इस भाव की जागृति अत्यत आवश्यक है। मुझे जीना है तो देश के लिए, मरना हे उसकी रक्षा के लिए— यह भाव प्रत्येक के मन में जगाना होगा। सपूर्ण समाज में राष्ट्र के प्रति एकात्म भाव जागृत करना वाछनीय हे। जेसे शरीर के सारे अवयव एक सघ होने का अनुभव रखते हैं, भिन्नता का वहाँ नामोनिशान नहीं होता। उसी प्रकार यहाँ का प्रत्येक घटक इस राष्ट्रभाव में स्वय को विलीन करे। यदि बाह्य-समाजों को आत्मसात करने की आवश्यकता है तो उन्हे सस्कारों की विशेप पद्धति में ढालकर राष्ट्रीय बनाकर आत्मसात करना होगा। किंतु तू मुसलमान है, तू ईसाई है, तू कम्युनिस्ट है— इस प्रकार उन्हें बार-बार स्मरण कराने के बाद कहा कि 'कुछ भी कर, यह विशेप अधिकार ले, पर हमारे साथ रह'। इस प्रकार उन्हें अपनाने की कोशिश की गई, तो सुविधाओं को मिलता देखकर वे क्यों मिलने के लिए तैयार होंगे? इससे राष्ट्र का भला होने के स्थान पर हानि ही होगी।

ऐसी हरकतें करके हम नित नई झझटें खडी कर रहे हैं। कहीं भापाओं का झगडा है, कहीं पथ का झगडा है, तो कहीं प्रांतों का झगडा है। इतना ही नहीं तो विद्यार्जन के क्षेत्र में उसकी पवित्रता को भग करनेवाले विवाद खडे किए जा रहे हैं। पढना-पढाना छोडकर शिक्षक व विद्यार्थी आपस में लड रहे हैं। शिक्षकों के विरोध में विद्यार्थियों ने अपने

सगठन खडे कर लिए हैं। पूर्व के जमाने में जब शिक्षक, विद्यार्थियों को खूब मारते थे, तब भी उनके प्रति जो प्रेम, श्रद्धा ओर आदर था, वह आज जब शिक्षक द्वारा विद्यार्थी को मारना कानून के चलते रोक दिया गया है, दिखाई नहीं देता। शिक्षक के विषय में वे अनेक घृणास्पद बातें करते हे। शिक्षा-जगत् का वातावरण इतना विषाक्त हो रहा हे कि इस क्षेत्र की अनिवार्य और वांछित पवित्रता समाप्त-सी ही हो गई है। विद्यार्थियों को शिक्षा केवल जीवनयापन करा देने के साधन के रूप में लगती है। पढना, अर्थात् ज्ञानार्जन जीवन को उन्नत व सफल बनाने के लिए अनिवार्य है, इसका भान तक नहीं है। पालक भी इसी दृष्टि से शिक्षा को देखते हैं।

जब शिक्षा की ओर देखने का दृष्टिकोण ही ठीक नहीं होगा, तब उसके द्वारा सुफल प्राप्त होने की कल्पना कैसे की जा सकती है? शुद्ध चरित्र और देशभक्तियुक्त सदाचारी मनुष्य मिलना कठिन हो गया है इसका एक कारण यह भी हे। अपेक्षित चारित्र्य, नैतिकता, सज्जनता आएगी कहाँ से? उपदेश से तो प्राप्त होने वाली नहीं। उसके लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्र के विषय में श्रद्धा, भावना, कूट-कूटकर भरनी पडेगी। राष्ट्रसमर्पित जीवन का आदर्श उनके सम्मुख रखना होगा। अपना यह राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ इसी महान उद्देश्य को लक्ष्य करते हुए, एक आदर्श समाज का चित्र लिए, इस राष्ट्रजीवन को सूत्रबद्ध, अनुशासित, जागृत, आत्मविश्वासपूर्ण, आत्म-सम्मानयुक्त, सगठित, एकात्म, एकरसपरिपूर्ण बनाने के लिए प्रयास कर रहा है।

ॐ ॐ ॐ

शस्त्रपूजन, १९५९

बीच के कालखड मे हमे विकृत इतिहास पढाया गया और हिंदूसमाज के हृदय से यह मेरी मातृभूमि है, इस राष्ट्रप्रेरक भावना को नष्ट करने का प्रयत्न किया गया। इस शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि हमारे लोगों ने यह मान लिया कि इस देश का सुव्यवस्थित राष्ट्रजीवन नहीं है। यह कभी 'राष्ट्र' रहा ही नहीं। यह विचार मन में पक्का हो जाने के कारण हमारे देश के नेता यह कहते है कि 'हम राष्ट्र बन रहे है' नया राष्ट्रजीवन बनाने के लिए अग्रसर हुए हैं। वह विस्मरण आज भी बना हुआ है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के वाद जव सविधान के वारे में सोचा जाने लगा, तव अपने राष्ट्रजीवन का ज्ञान व उसकी अनुभूति न होने के कारण चर्चा के वाद राज्य का चक्राकित ध्वज स्वीकार किया गया। नया राष्ट्र वनाने की धारणा होने के कारण ही नया झडा वनाया गया।

हिदू-समाज का राष्ट्रजीवन कभी था ही नहीं, यह वात किसी भी तरह विश्वसनीय नहीं है। हमारे इतिहास के प्रथम पृष्ठ से ही इस समाज का उत्कृष्ट धर्म, श्रेष्ठ सस्कृति, उसके तत्त्वज्ञान के अनुरूप सुव्यवस्थित राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था थी। समाज की समान सुख-दु ख की भावना, आकाक्षा-अभिलाषा, शत्रु-मित्र की भावना, परपरा, श्रद्धा-स्थान एक ही थे। विदेशी कालखड केवल विदेशियों का आक्रमण-मात्र था। ग्रहण लगने के समान उसका स्वरूप अस्थायी था। इन आक्रमणों के वाद भी एक स्रोत के समान हमारा राष्ट्रजीवन चला आ रहा है।

राष्ट्र-जीवन का विस्मरण होने से अनेक आपत्तियॉ आईं एव अव भी आती हैं। एक नया राष्ट्र वनाने की इच्छा के कारण ही इसके लिए समान भावना खोजने की चेष्टा हुई। आज भी भावात्मक एकता की वात कही जाती है।

परतु हिदू समाज के वाहर के समाज की भावना क्या है यह स्पष्ट है। वे इस देश की मातृभूमि को अपना आराध्य नहीं मानते। मुस्लिम-समाज ने तो इस देश को पापभूमि माना, तभी तो उन्होंने 'पाक' भूमि की मॉग की और देश का विभाजन कराया। हिदू-समाज के बाहर के समाजों में इस देश की परपरा, श्रेष्ठ पुरुषों तत्त्वज्ञान के वारे में जरा भी श्रद्धा नहीं है। देश की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए हिदू ही ईमानदारी से प्रयत्न करते रहे, जवकि अहिदू समाज तो अपने स्वार्थ की ओर ही देखता रहा। उसने अग्रेजों व हमारे नेताओं से अपने सहयोग की भरपूर कीमत भी वसूल की।

आत्मविस्मृति के कारण नया राष्ट्र वनाने के प्रयत्न में हिदुओं को अहिदू वनाने के प्रयत्न हो रहे हैं। यह तो एक प्रकार से हिदू-समाज को अराष्ट्रीय वनाना और उसे विनाश की ओर प्रवृत्त करना है। आत्मविस्मृत समाज का भविष्य अच्छा नहीं हो सकता वह कभी भी उत्कर्ष के दिन नहीं देख सकेगा, विश्व में सम्मान का स्थान प्राप्त नहीं कर सकेगा।

जव-जव अपना समाज आत्मविश्वास आत्मविस्मृति से ग्रस्त हुआ,

तव-तव 'यह भारत माता, मेरी आराध्य है'— ऐसी श्रद्धा नहीं रही और यह राष्ट्र छोटे-छोटे राज्यों में बँटकर आपसी सघर्ष में लगा रहा। प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र की रक्षा करने के लिए विदेशियों की सहायता की कामना करने लगा। उसने विदेशियों को आक्रमण का निमत्रण देकर अथवा उसे इसका अवसर देकर देश के साथ धोखा किया। इस प्रवृत्ति के कारण अपने समाज को कठिन यातनाएँ सहन करनी पडीं। जव-जव राष्ट्र-जीवन का सूत्र छिन्न-विच्छिन्न हुआ, तव-तव विदेशी आक्रमणकारियों को सफलता मिली। यह अनुभवसिद्ध वात है कि आत्मविस्मृति से समाज विशृखलित और दुर्वल हो जाता है।

आज भी भापाभेद, जातिभेद, समुदायभेद, राजनीतिक मतभेद दिखाई देते हैं। परस्पर सौहार्द की भावना नहीं दिखाई देती। यह सोचना कि अव हम लडाई-झगडे भूल गए हैं और विदेशी फिर से नहीं आएँगे, केवल भूल ही नहीं, अपितु दिवास्वप्न है।

पजावी सूवे की माँग पूरी न होने पर एक वयोवृद्ध सिख नेता ने कुछ दिन पूर्व यह कहा था कि वे कम्युनिस्ट वन जाएँगे। आज भारत की उत्तरी सीमा पर कम्युनिस्ट चीन का आक्रमण शुरू हो गया है। ऐसे समय कम्युनिस्ट वनने की घोपणा का क्या अर्थ है? कम्युनिस्टों का इस देश से कभी भी हितसवध नहीं रहा। चीन के भारत पर आक्रमण को भी वे आक्रमण नहीं मानते। क्योंकि वे चीन व रूस को विदेशी नहीं मानते। उनकी पहली निष्ठा उन राष्ट्रों के साथ है। उनका समर्थन या सहयोग करना अप्रत्यक्ष रूप से विदेशियों को निमत्रण देना ही है।

सघ से किसी को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है, विशेषकर राजनीतिज्ञों को तो कतई नहीं। सघ सत्ताप्राप्ति या प्रतिष्ठा का भूखा नहीं है। वह तो शाति, समृद्धि और राष्ट्र की प्रगति के लिए कार्य करता है। मैं सारे राजनीतिक दलों को आश्वस्त कराना चाहता हूँ कि सघ की किसी भी प्रकार की राजनीतिक महत्त्वाकाक्षा नहीं है। इसीलिए वह न तो आज तक किसी चुनाव में उतरा है और न ही भविष्य में उतरेगा।

विजयादशमी, १९५९

इतिहास हमें शिक्षा देता है कि पहले हो चुकी गलती फिर से दोहराई न जाए, लेकिन हमारे राजनेताओं ने इतिहास से कुछ सीखा है- ऐसा दिखाई नहीं देता। आज हमारा राष्ट्रजीवन भीषण संकटों से ग्रस्त है। अंग्रेजों द्वारा स्थापित मुस्लिम लीग देश के विभाजन के लिए कारणीभूत हुई थी। विभाजन के पश्चात् उस मुस्लिम लीग का काम उत्तर भारत में बाह्यत बंद हुआ भले ही दिखाई दे रहा हो, परंतु दक्षिण भारत में वह प्रकट रूप से जारी है। इसी नाम से उन्होंने चुनाव भी लड़ा है। कम्युनिस्ट और ईसाइयों का समर्थन तो उसे प्राप्त था ही, अब कांग्रेस ने भी ना-ना करते हुए उससे चुनावी समझौता कर लिया है। अभी-अभी हुए आंदोलन में सहभागी होकर मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की सहायता से अपने को पुनर्जीवित करने का मौका प्राप्त कर लिया है। उसने अपने जो इरादे घोषित किए हैं, वे इस देश की शांति और प्रगति के लिए एक बड़ा खतरा हैं। समय रहते उसपर अंकुश नहीं लगाया गया, तो हमारी स्वतंत्रता को भी खतरा हो सकता है।

लीग के बारे में प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि 'भारत में जो मुस्लिम लीग है, वह पहलेवाली मुस्लिम लीग नहीं है।' सामान्यत दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँककर पीता है, किंतु हमारे प्रधानमंत्री तो अभी हाल ही में घटी घटनाओं से कोई सीख लेने को तैयार नहीं हैं। मुस्लिम लीग का पुनरुज्जीवन होना देश के लिए घातक है- ऐसा उन्हें लगता नहीं, इसे देश का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए, जबकि विभाजन के पूर्व लीग के बारे में उनकी जो धारणा थी, उसे उन्होंने पंजाब के नेताओं के सामने व्यक्त करते हुए कहा था कि 'ये ताँगेवाले राज्य करना क्या जानें, ऐसा होना संभव ही नहीं है।' किंतु हुआ क्या? ये ताँगेवाले ही राज्यकर्ता हुए और अपने महान नेताओं को वहाँ से भागकर आना पड़ा।

अपने यहाँ ऐसा कहा गया है कि अग्निशेष, ऋणशेष, शत्रुशेष और रोगशेष नहीं रखना चाहिए। किंतु इस ओर दुर्लक्ष्य कर और इतिहास की सीख की उपेक्षा कर आत्मवंचना करने की प्रवृत्ति अपने नेताओं में है। दुर्भाग्य यह है कि ऐसे ही नेताओं के हाथ में अपने देश का शासन है।

विभाजन के बाद लोगों का यह अनुमान था कि इस देश में शेष रहे मुसलमान भारतीय समाज से स्नेहपूर्ण व्यवहार करेंगे। लेकिन अनुभव

विपरीत ही रहा है। जिन्होंने कश्मीर में बहुत वर्षो तक कार्य किया, गाँव-गाँव जाकर वहाँ के लोगों की मनोवृत्ति का अध्ययन किया, ऐसे एक सामाजिक कार्यकर्ता ने बताया कि 'कश्मीर का एक भी मुसलमान भारत में रहने को इच्छुक नहीं है। उनकी सुरक्षा के लिए इतनी बडी सेना तैनात की। वहाँ के नागरिकों को अतिरिक्त सुविधाएँ देकर भारत सरकार आर्थिक बोझ ढो रही है, फिर भी उनकी मानसिकता मे जरा भी अतर नहीं आया है।'

हमारे राजनेता भाषाभेद या जातिभेद निर्माण कर स्वार्थ का पोषण किस प्रकार करते हैं, उसका ताजा उदाहरण 'गुजरातीभाषियों का गुजरात और मराठीभाषियों का महाराष्ट्र' का नारा है। इसके अनुसार, राज्य का विभाजन करने का निर्णय भी लगभग हो ही चुका है। लेकिन इससे समाज में एकता व एकात्मता निर्माण होने के स्थान पर विभेद ही बढ़ेंगे। किंतु इसकी चिता किसे है।

शस्त्रपूजन, १९६०

यदि देश की चारों ओर की स्थिति का अध्ययन करें तो अपने कार्य की आवश्यकता का अनुभव अधिक तीव्रता से कर सकेंगे। आज हमारे समाज का व्यक्ति स्वत्व को भूल रहा है, हिंदूपन को भूल रहा है। आत्मविस्मृति यहॉं तक हो गई है कि जीवन की समग्र रचना ही एक प्रकार से अहिंदू हो रही है। यही नहीं तो शब्दों तथा वाक्यों की रचना भी अपने ढग की नहीं रहती। स्वय का विचार करने की भावना से व्यक्तिगत स्वार्थ तथा अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए किसी भी मार्ग का अवलबन करने की प्रवृत्ति बढती है, परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार पनपता है।

व्यक्तिगत कठिनाई होने पर वह जाति, पथ, बोली अथवा राजनीतिक दलों के रूप में अनेक समूहों का निर्माण करता है। समान स्वार्थो को लेकर बने हुए ये गुट या समूह आपस में एक दूसरे से स्पर्धा करते है। सघर्ष तक होते हैं और इस सब में समाज की चेतना दब जाती है। समाज छिन्न-विच्छिन्न होकर अति दुर्बल बन जाता है। आज हमारे हिंदू-समाज की यही स्थिति है।

हमारे देश का इतिहास यह बताता है कि आत्मविस्मृत हुआ तथा

परस्पर संघर्ष में लगा हुआ समाज जब दुर्बल बनता है, तब वह आक्रमणकारियों के लिए सुगम भक्ष्य बन जाता है।

इतिहास यह बताता है कि हमारे समाज के छोटे-छोटे गुटों के परस्पर संघर्ष के कारण ही परकीय लोगों के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। उनकी विजय हुई। हममें पौरुष तथा विद्वत्ता होते हुए भी हमारा पराभव हुआ। किंतु यह विचारणीय प्रश्न है कि ये परकीय क्या अपने पराक्रम से जीते? वस्तुस्थिति तो यह है कि अपने ही लोगों की सहायता के बल पर वे यहाँ विजयी हुए। सोमनाथ मंदिर के विध्वंस से लेकर संपूर्ण देश में विधर्मी शासन होने तक की सारी घटनाएँ इसी तथ्य को बताती हैं कि हमारे समाज के व्यक्ति अपने तात्कालिक स्वार्थ की पूर्ति में फँसकर अपने ही शत्रु के हाथ मजबूत कर सर्वस्व नाश का कारण बने। इतिहास की इन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से हमें शिक्षा ग्रहण कर सचेत होकर जागरूक रहने की आवश्यकता है। किंतु आज भी चारों ओर की स्थिति देखने पर यही दिखलाई दे रहा है कि समाज में आत्मविस्मरण, विच्छिन्नता, अनेक प्रकार के विवादों एवं स्पर्धाओं के कारण दौर्बल्य उत्पन्न हो रहा है। यह एक बार पुनः परकीय आक्रमण के लिए देश के द्वार खोलने के समान है। यह स्थिति अत्यंत ही चिंतनीय है।

देश के नेता 'शांति' का पाठ करते हैं। वे कोई भी मूल्य देकर शांति खरीदने को तैयार हैं। यहाँ तक कि शांति प्राप्त करने में देश का दान भी कर देंगे। इस प्रकार से प्राप्त शांति स्थायी नहीं होती। ऐसे प्रयासों से उन्हें हमेशा असफलता ही मिली है। शांति की प्राप्ति में बंगाल का बेरूबारी और पथरिया का क्षेत्र दिया। नागा राज्य बन चुका है और संभवतः कश्मीर तक दे दिया जाएगा। मनुष्य को मृत्यु के पश्चात् श्मशान में शांति मिलती है। क्या हम ऐसी शांति चाहते हैं? ऐसी श्मशान शांति का क्या करेंगे?

पाकिस्तान की निर्मिति हमारे देश पर आक्रमण की पहली सीढ़ी है। इस संदर्भ में आपने सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता अर्नाल्ड टॉयनबी के हाल ही के लेख को पढ़ा होगा, जिसमें उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि 'पाकिस्तान की निर्मिति भारत-विजय की योजना का पहला कदम है। पाकिस्तान का निर्माण स्पष्ट रूप से आक्रमण ही है। इस देश में जब विभाजन की माँग उठी थी उसी समय हमने इस 'आक्रमण' के स्वरूप को पहचानकर जनता को सचेत करने का प्रयास किया था। किंतु पाकिस्तान

देकर हमेशा का सकट टालने (?) की दृष्टि से देश के नेताओं ने विभाजन को स्वीकार किया। विभाजन के बाद भी सकट टला नहीं, उल्टे वह बढता ही जा रहा है।

पाकिस्तान ने धावा बोलकर कश्मीर का कुछ हिस्सा तो हडप ही लिया गया है। अब सपूर्ण प्रदेश को अपने उदर में समाविष्ट करने की उसकी योजना है। हमारे देश के नेता कश्मीर को 'अतरराष्ट्रीय प्रश्न' कहकर यह बताने का प्रयास कर रहे हैं कि इससे मामला बिना झगडे के निपट जाएगा। हमें डरने का कोई कारण नहीं है, किंतु वस्तुस्थिति यह है कि देश के भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं की मन स्थिति है कि कश्मीर का झगडा मिटाने के लिए उसे पाकिस्तान को दे दिया जाए। यह मेरी निरी कल्पना नहीं है।

आक्रमणकारियों के हौसले बढने का प्रमुख कारण यही है कि वे यह जानते हैं कि इस देश के नेताओं में न तो राष्ट्रभक्ति है और न ही देशभक्ति। सब आपस के झगडों में व्यस्त हैं। इन्हीं बातों को देखकर पचशील का उद्घोष करनेवाला चीन भारत में घुस आया। हमें सतर्क करने के लिए ये घटनाएँ पर्याप्त हैं।

हिंदू-समाज को उद्ध्वस्त करने की दृष्टि से ही ये सारे आक्रमण हमारे देश पर हो रहे हैं। अत यह अत्यावश्यक है कि अब भी निराश न होते हुए शीघ्र ही अपने समाज को जागृत कर, बिखरी हुई शक्ति को पुन एकत्र करना होगा। हिंदू-समाज के प्रत्येक व्यक्ति में इस मातृभूमि के पुत्रत्व का बोध कराकर उसे एक सूत्र में गूँथकर आत्मविश्वास के साथ खडा करना होगा।

ट ट ट

विजयादशमी, १९६०

हमारा समाज इतना भोला है कि वह इन अराष्ट्रीय तत्त्वों द्वारा किए गए अपमानों, दु खों आदि को शीघ्र भूल जाता है और यह समझने लगता है कि इनसे अब कोई खतरा नहीं है। किंतु देश की हाल ही की कुछ घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस देश का मुस्लिम समाज, जो अब तक भले ही ऊपर से शात दिखाई देता रहा हो, सुप्त रूप से सदैव क्रियाशील रहा है। फिरोजाबाद, सहारनपुर, येवला आदि स्थानों पर हिंदुओं

के धार्मिक जुलूस पर मुसलमानों द्वारा आक्रमण किए गए। किंतु खेद की बात है कि शासन ऐसी घटनाओं में भी उन्हीं का पक्ष लेता है।

येवला कांड की जाँच में न्यायाधीश द्वारा यह निर्णय दिए जाने के बावजूद कि किसी समाज के तुष्टिकरण के लिए बहुसंख्य हिंदू-समाज को प्राप्त स्वाभाविक, धार्मिक अधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता। लेकिन हमारे शासन के प्रमुख अधिकारी ने न्यायालय के उक्त निर्णय की अवहेलना कर हिंदुओं की शोभा-यात्रा पर ही बंधन लगाने का आदेश दिया। मानो वे भारत में रहकर पाकिस्तान का राज्य चला रहे हों। इतिहास यह बताता है कि इस अराष्ट्रीय समाज ने हमेशा अपनी साम्राज्यलिप्सा की पूर्ति के लिए किसी भी मार्ग का अवलंबन किया है और सदैव अवसरवादिता का ही परिचय दिया है।

स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजों का साथ देनेवाले मुस्लिम नेता १५ अगस्त १९४७ की मध्यरात्रि से ही एकाएक कट्टर देशभक्त बन गए। हमारे देश के नेताओं ने भी इतिहास से शिक्षा ग्रहण न करने के कारण यह समझ लिया कि 'उनके' जीवन में भावनात्मक परिवर्तन हो गया है। केरल के उत्तरी क्षेत्र में रहनेवाले 'मोपला' मुसलमानों की, जिन्होंने एक समय वहीं के असंख्य हिंदुओं की हत्या की थी। महात्मा गाँधी ने 'मेरे बहादुर मोपला भाइयों' कहकर 'देशनिष्ठ' करार दिया था। पिछले वर्ष केरल के कम्युनिस्ट मन्त्रिमंडल के विरुद्ध छिड़े आंदोलन के समय 'मुस्लिम लीग' से गठबंधन कर कांग्रेस के कतिपय नेताओं — लालबहादुर शास्त्री, इंदिरा गाँधी आदि ने उसे राष्ट्रीय एवं देशनिष्ठ होने का प्रशस्ति पत्र देकर, यह बताने का प्रयास किया कि इस नई 'मुस्लिम लीग' से देश को कोई खतरा नहीं है। परिणामस्वरूप सारे देश भर में जगह-जगह मुस्लिम-लीग की पुनर्स्थापना की जा रही है।

हमारे नेता भले ही भ्रम में हों अथवा जानबूझकर भोले बनने का नाटक कर मुस्लिम लीग को प्रोत्साहन दे रहे हों, लीग के विचारों व करतूतों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उन्होंने इस देश में अपना राज्य प्रस्थापित करने के उद्देश्य से पुनः उन्हीं तरीकों— हिंदुओं को भयभीत कर आतंक की स्थिति निर्माण करने, उनके धार्मिक समारोहों में विघ्न डालने आदि के प्रयास— का अवलंबन करना शुरू कर दिया है।

जब कभी दंगे होते हैं तो अनेक नेता और समाचार पत्र उन्हें 'हिंदू-मुस्लिम दंगे' बताने का प्रयास करते हैं, जबकि वस्तुस्थिति तो यह है कि दंगे हमेशा मुसलमान करते हैं और हिंदू उन दंगों का शिकार होता है। अतः इन दंगों का सारा श्रेय मुसलमानों को ही है। 'हिंदू-मुस्लिम दंगा' कहकर मुसलमानों का श्रेय छीनना मुसलमानों के प्रति अन्याय ही होगा।

पाकिस्तान के साथ हुए पानी-समझौते में हमारे नेताओं ने सिंधु नदी का लगभग सारा जल तो पाकिस्तान को दिया ही, ऊपर से दक्षिणा के रूप में ८३ करोड़ रुपये का दान देना भी कबूल किया। यह तो राजा हरिश्चंद्र की भाँति स्वयं को बेचकर स्वप्न में दिया हुआ वचन पूरा करने जैसा हुआ। वास्तव में लेन-देन बराबरी का होना चाहिए। 'अर्धं त्वया अर्धं मया' के आधार पर समझौता होना चाहिए, किंतु यहाँ तो 'सर्वं त्वया गृहीतव्यम्' है। 'मया' कुछ नहीं है। फिर यह समझौता कैसे? यह तो हमारा प्रत्यक्ष पराभव है।

असम में हुए उपद्रवों के पीछे भी उसे पाकिस्तान में मिलाने का राजनैतिक षड्यन्त्र था। भाषा-विवाद की आड़ लेकर पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बाँग्लादेश) से ट्रक भर-भरकर मुसलमान असम लाए गए, जिन्होंने उक्त उपद्रवों में खुलकर भाग लिया। उपद्रवों में बंगाली हिंदुओं के घर लूटे गए, किंतु बंगाली मुसलमानों को इन उपद्रवों से बचाकर रखा गया। उनका कोई नुकसान नहीं हुआ। उस क्षेत्र के हिंदुओं को निष्कासित कर, वहाँ बच रहे बहुसंख्य मुसलमानों द्वारा 'आत्मनिर्णय' का प्रश्न उठा कर असम को पाकिस्तान में मिलाने का यह एक षड्यन्त्र है। वहाँ के सत्तारूढ़ मुस्लिम नेताओं ने हमारे वरिष्ठ नेताओं को इस संबंध में भुलावे में रखा और हमारे नेता भी उनके भुलावे में आ गए। अभी भी उनकी आँखें नहीं खुली हैं।

स्वतंत्र नागा राज्य के निर्माण के लिए विद्रोही नागाओं के नेता फिजो ने जब लंदन पहुँचकर यह धमकी दी कि वे यह प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाएँगे, तो हमारे शांतिदूत नेताओं ने उनसे डरकर शरणागति स्वीकार करना ही उचित समझा और एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर डाली। इस राज्य को परराष्ट्र मंत्रालय के अधीन रखकर भारत से अलग होने के लिए मार्ग खुला रख दिया गया है।

उपर्युक्त सभी घटनाएँ हमारी पराभूत मनोवृत्ति की ही द्योतक है।

पराक्रम से पूर्ण व श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान जाननेवाला यह समाज क्या केवल पराभव के लिए ही बना है? हमें समाज की पराभूत मनोवृत्ति को दूर करना होगा। समाज का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत होकर, राष्ट्र के अभिन्न अग के रूप में अपने शरीर का विकास राष्ट्रहित के लिए ही करेगा, उसमें राष्ट्रसमर्पित जीवन की जितनी अधिक भावना होगी, उतना ही वह समाज अजेय एव अभेद्य शक्तिसपन्न रूप में खडा होकर राष्ट्र को गौरव का स्थान दिला सकेगा। उसे जीवन के हर क्षेत्र में विजय ही प्राप्त होगी।

ᗘᗘᗘ

शस्त्रपूजन, १९६१

आपसी मतभेद के कारण अग्रेजों के विरोध में जो तात्कालिक मोर्चा बनाया गया था, उससे एकता निर्माण होने के स्थान पर अलगाव के विष-बीज बोए जा रहे हैं, यह उसी समय ध्यान में आ गया था। उसके दुष्परिणाम सामने आए, तब जाकर राष्ट्रीय एकात्मता की आवश्यकता मालूम होने लगी है, यह भाग्य की बात है। मगर उसके लिए प्रयत्न होना अभी बाकी है। परतु चुनाव का ध्यान आते ही राष्ट्रीय एकात्मता स्थापित करने की सारी चिता एक ओर रखकर, केवल उसका ही विचार होने लगा है। कोई हरिजनों को ५० प्रतिशत सीट देने की बात कर रहा है, तो कोई महिलाओं को। अल्पसख्यकों को अधिक प्रतिनिधित्व देने का वही पुराना राग अलापा जा रहा है।

जब तक हमारे देश में अल्पसख्यक व बहुसख्यक की बातें चलेंगी, तब तक एकता होने की सभावना नहीं है। अल्पसख्यकों की शिकायतें और उनपर होनेवाले अन्याय आदि के बहाने जॉच समितियाँ बनाना, अल्पसख्यक-बहुसख्यकवाद को चिरजीव रखने का ही प्रयास है। लेकिन यह सब उनके ध्यान में क्यों नहीं आता? पता नहीं। भावात्मक एकता के लिए सभा, सम्मेलन तो हमारे नेता निरतर आयोजित करते रहते हैं, परतु इस एकता का आधार क्या हो, यह अभी तक ढूँढा नहीं गया है। उसके लिए योग्य विचार भी नहीं हुआ है।

अनेक राष्ट्रों ने अल्पसख्यकों की समस्या बहुत ही योग्य रीति से सुलझाई है। हमें उनसे सबक लेना चाहिए। बहुसख्यकों के साथ ही अल्पसख्यक भी राष्ट्रनिष्ठ होकर अपना उत्तरदायित्व निभाता है तो यह

समस्या समस्या नहीं रहेगी।

अपनी मातृभूमि को केवल वीरान-भूमि समझनेवाले हमारे प्रधानमत्री, आजकल देश के तीर्थस्थानों की पवित्रता व महिमा का गुणगान कर रहे हैं। इस बुढापे में उन्हें भारतभूमि की जगत्-जननी इस नाते अनुभूति हो गई तो बहुत ही अच्छा होगा। हमें भी सतोष ही होगा।

हमारे प्रधानमत्री ने एक भाषण में कहा है कि राजपूत, शक-हूणों के वशज हैं। मुझे उनके कथन में पूरा सदेह है। लेकिन यदि थोडी देर के लिए उनकी बात सही मान भी ली जाए, तो मेरा सवाल यह है कि फिर मुसलमान व ईसाई समाज को उसी तरह का क्यों नहीं होना चाहिए? यदि शक-हूणों के वशज होकर भी राजपूत कट्टर देशभक्त हो सकते हैं, इस देश के लिए जिन्होंने अपना रक्त बहाया है। वे राम, कृष्ण व एकलिगजी के उपासक बनकर स्वय को सूर्यवशी व चद्रवशी कहने में गौरव मानते हैं, तब तो राजपूतों ने अल्पसख्यकों के सामने एक उत्तम आदर्श ही प्रस्तुत किया है। राष्ट्रीय जीवन की पवित्र गगा में स्नान कर उनको भी आनद से इस देश में रहना चाहिए। लेकिन हमारे नेता उनके बारे में खुलकर कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते।

सारे भेदों को एक तरफ रखकर एकात्मता की नींव पर भारत के पुनरूप समाज को स्नेहसूत्र में बॉधकर मातृभूमि के पवित्र स्वरूप, 'सपूर्ण समाज एक परिवार है'— इसका बोध कराने का प्रयास सघ ने प्रारभ से किया है। इसी अनुभूति के आधार पर अतर-बाह्य जीवन में भाषा, प्रात सप्रदाय, जाति आदि के भेद समाप्त होकर आसेतु हिमाचल एकरस हिंदूसमाज खडा होगा।

विजयादशमी, १९६१

हमारे राजनीतिक नेताओं की तुष्टीकरण की नीति के कारण देश में चारों ओर भय और आतक के वातावरण की निर्मिति हो रही है। गत वर्ष भी इन्हीं दिनों उत्तरप्रदेश में दगे हुए थे, जिनमें ५०-६० लोग घायल हुए थे। इस वर्ष फिर वहॉ दगे हुए हैं। अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हुए दगों के बारे में पुलिस अधिकारियों व केंद्रीय शिक्षा मत्री का जो कहना है, वह वहाँ की स्थिति की गभीरता को प्रकट करनेवाला है। लेकिन वे कुछ

पराक्रम से पूर्ण व श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान जाननेवाला यह समाज क्या केवल पराभव के लिए ही बना है? हमें समाज की पराभूत मनोवृत्ति को दूर करना होगा। समाज का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत होकर, राष्ट्र के अभिन्न अंग के रूप में अपने शरीर का विकास राष्ट्रहित के लिए ही करेगा, उसमें राष्ट्रसमर्पित जीवन की जितनी अधिक भावना होगी, उतना ही वह समाज अजेय एवं अभेद्य शक्तिसंपन्न रूप में खड़ा होकर राष्ट्र को गौरव का स्थान दिला सकेगा। उसे जीवन के हर क्षेत्र में विजय ही प्राप्त होगी।

ॐ ॐ ॐ

शस्त्रपूजन, १९६१

आपसी मतभेद के कारण अंग्रेजों के विरोध में जो तात्कालिक मोर्चा बनाया गया था, उससे एकता निर्माण होने के स्थान पर अलगाव के विष-बीज बोए जा रहे हैं, यह उसी समय ध्यान में आ गया था। उसके दुष्परिणाम सामने आए, तब जाकर राष्ट्रीय एकात्मता की आवश्यकता मालूम होने लगी है, यह भाग्य की बात है। मगर उसके लिए प्रयत्न होना अभी बाकी है। परंतु चुनाव का ध्यान आते ही राष्ट्रीय एकात्मता स्थापित करने की सारी चिंता एक ओर रखकर, केवल उसका ही विचार होने लगा है। कोई हरिजनों को ५० प्रतिशत सीट देने की बात कर रहा है, तो कोई महिलाओं को। अल्पसंख्यकों को अधिक प्रतिनिधित्व देने का वही पुराना राग अलापा जा रहा है।

जब तक हमारे देश में अल्पसंख्यक व बहुसंख्यक की बातें चलेंगी, तब तक एकता होने की संभावना नहीं है। अल्पसंख्यकों की शिकायतें और उनपर होनेवाले अन्याय आदि के बहाने जॉच समितियॉं बनाना, अल्पसंख्यक-बहुसंख्यकवाद को चिरंजीव रखने का ही प्रयास है। लेकिन यह सब उनके ध्यान में क्यों नहीं आता? पता नहीं। भावात्मक एकता के लिए सभा, सम्मेलन तो हमारे नेता निरंतर आयोजित करते रहते हैं, परंतु इस एकता का आधार क्या हो, यह अभी तक ढूँढा नहीं गया है। उसके लिए योग्य विचार भी नहीं हुआ है।

अनेक राष्ट्रों ने अल्पसंख्यकों की समस्या बहुत ही योग्य रीति से सुलझाई है। हमें उनसे सबक लेना चाहिए। बहुसंख्यकों के साथ ही अल्पसंख्यक भी राष्ट्रनिष्ठ होकर अपना उत्तरदायित्व निभाता है तो यह

समस्या समस्या नहीं रहेगी।

अपनी मातृभूमि को केवल वीरान-भूमि समझनेवाले हमारे प्रधानमत्री, आजकल देश के तीर्थस्थानों की पवित्रता व महिमा का गुणगान कर रहे हैं। इस बुढापे में उन्हें भारतभूमि की जगत्-जननी इस नाते अनुभूति हो गई तो बहुत ही अच्छा होगा। हमें भी सतोष ही होगा।

हमारे प्रधानमत्री ने एक भाषण में कहा है कि राजपूत, शक-हूणों के वशज हैं। मुझे उनके कथन में पूरा सदेह है। लेकिन यदि थोडी देर के लिए उनकी बात सही मान भी ली जाए तो मेरा सवाल यह है कि फिर मुसलमान व ईसाई समाज को उसी तरह का क्यों नहीं होना चाहिए? यदि शक-हूणों के वशज होकर भी राजपूत कट्टर देशभक्त हो सकते हैं, इस देश के लिए जिन्होंने अपना रक्त बहाया है। वे राम, कृष्ण व एकलिगजी के उपासक बनकर स्वय को सूर्यवशी व चद्रवशी कहने में गौरव मानते हैं, तब तो राजपूतों ने अल्पसख्यकों के सामने एक उत्तम आदर्श ही प्रस्तुत किया है। राष्ट्रीय जीवन की पवित्र गगा में स्नान कर उनको भी आनद से इस देश में रहना चाहिए। लेकिन हमारे नेता उनके बारे में खुलकर कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते।

सारे भेदों को एक तरफ रखकर एकात्मता की नींव पर भारत के पुनरूप समाज को स्नेहसूत्र में बाँधकर मातृभूमि के पवित्र स्वरूप, 'सपूर्ण समाज एक परिवार है'— इसका बोध कराने का प्रयास सघ ने प्रारभ से किया है। इसी अनुभूति के आधार पर अतर-बाह्य जीवन में भाषा, प्रात सप्रदाय, जाति आदि के भेद समाप्त होकर आसेतु हिमाचल एकरस हिंदूसमाज खडा होगा।

✤ ✤ ✤

विजयादशमी, १९६१

हमारे राजनीतिक नेताओं की तुष्टीकरण की नीति के कारण देश में चारों ओर भय और आतक के वातावरण की निर्मिति हो रही है। गत वर्ष भी इन्हीं दिनों उत्तरप्रदेश में दगे हुए थे, जिनमें ५०-६० लोग घायल हुए थे। इस वर्ष फिर वहाँ दगे हुए हैं। अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हुए दगों के बारे में पुलिस अधिकारियों व केंद्रीय शिक्षा मत्री का जो कथन है, वह वहाँ की स्थिति की गभीरता को प्रकट करनेवाला है। लेकिन

पराक्रम से पूर्ण व श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान जाननेवाला यह समाज क्या केवल पराभव के लिए ही बना है? हमें समाज की पराभूत मनोवृत्ति को दूर करना होगा। समाज का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत होकर, राष्ट्र के अभिन्न अग के रूप में अपने शरीर का विकास राष्ट्रहित के लिए ही करेगा, उसमें राष्ट्रसमर्पित जीवन की जितनी अधिक भावना होगी, उतना ही वह समाज अजेय एव अभेद्य शक्तिसपन्न रूप में खडा होकर राष्ट्र को गौरव का स्थान दिला सकेगा। उसे जीवन के हर क्षेत्र में विजय ही प्राप्त होगी।

शस्त्रपूजन, १९६१

आपसी मतभेद के कारण अग्रेजों के विरोध में जो तात्कालिक मोर्चा बनाया गया था, उससे एकता निर्माण होने के स्थान पर अलगाव के विष-बीज बोए जा रहे हैं, यह उसी समय ध्यान में आ गया था। उसके दुष्परिणाम सामने आए तब जाकर राष्ट्रीय एकात्मता की आवश्यकता मालूम होने लगी है, यह भाग्य की बात है। मगर उसके लिए प्रयत्न होना अभी बाकी है। परतु चुनाव का ध्यान आते ही राष्ट्रीय एकात्मता स्थापित करने की सारी चिंता एक ओर रखकर, केवल उसका ही विचार होने लगा है। कोई हरिजनों को ५० प्रतिशत सीट देने की बात कर रहा है, तो कोई महिलाओं को। अल्पसख्यकों को अधिक प्रतिनिधित्व देने का वही पुराना राग अलापा जा रहा है।

जब तक हमारे देश में अल्पसख्यक व बहुसख्यक की बातें चलेंगी, तब तक एकता होने की सभावना नहीं है। अल्पसख्यकों की शिकायतें और उनपर होनेवाले अन्याय आदि के बहाने जॉच समितियॉ बनाना, अल्पसख्यक-बहुसख्यकवाद को चिरजीव रखने का ही प्रयास है। लेकिन यह सब उनके ध्यान में क्यों नहीं आता? पता नहीं। भावात्मक एकता के लिए सभा, सम्मेलन तो हमारे नेता निरतर आयोजित करते रहते हैं, परतु इस एकता का आधार क्या हो यह अभी तक ढूँढा नहीं गया है। उसके लिए योग्य विचार भी नहीं हुआ है।

अनेक राष्ट्रों ने अल्पसख्यकों की समस्या बहुत ही योग्य रीति से सुलझाई है। हमें उनसे सबक लेना चाहिए। बहुसख्यकों के साथ ही अल्पसख्यक भी राष्ट्रनिष्ठ होकर अपना उत्तरदायित्व निभाता है तो यह

समस्या समस्या नहीं रहेगी।

अपनी मातृभूमि को केवल वीरान-भूमि समझनेवाले हमारे प्रधानमत्री, आजकल देश के तीर्थस्थानों की पवित्रता व महिमा का गुणगान कर रहे हैं। इस बुढापे में उन्हें भारतभूमि की जगत्-जननी इस नाते अनुभूति हो गई तो बहुत ही अच्छा होगा। हमें भी सतोष ही होगा।

हमारे प्रधानमत्री ने एक भाषण में कहा है कि राजपूत, शक-हूणों के वशज हैं। मुझे उनके कथन में पूरा सदेह है। लेकिन यदि थोडी देर के लिए उनकी बात सही मान भी ली जाए, तो मेरा सवाल यह है कि फिर मुसलमान व ईसाई समाज को उसी तरह का क्यों नहीं होना चाहिए? यदि शक-हूणों के वशज होकर भी राजपूत कट्टर देशभक्त हो सकते हैं, इस देश के लिए जिन्होंने अपना रक्त बहाया है। वे राम, कृष्ण व एकलिंगजी के उपासक बनकर स्वय को सूर्यवशी व चद्रवशी कहने में गौरव मानते हैं, तब तो राजपूतों ने अल्पसख्यकों के सामने एक उत्तम आदर्श ही प्रस्तुत किया है। राष्ट्रीय जीवन की पवित्र गगा में स्नान कर उनको भी आनद से इस देश में रहना चाहिए। लेकिन हमारे नेता उनके बारे में खुलकर कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते।

सारे भेदों को एक तरफ रखकर एकात्मता की नींव पर भारत के पुनरूप समाज को स्नेहसूत्र में बाँधकर मातृभूमि के पवित्र स्वरूप, 'सपूर्ण समाज एक परिवार है'– इसका बोध कराने का प्रयास सघ ने प्रारभ से किया है। इसी अनुभूति के आधार पर अतर-बाह्य जीवन में भाषा, प्रात सप्रदाय, जाति आदि के भेद समाप्त होकर आसेतु हिमाचल एकरस हिंदूसमाज खडा होगा।

विजयादशमी, १९६१

हमारे राजनीतिक नेताओं की तुष्टीकरण की नीति के कारण देश में चारों ओर भय और आतक के वातावरण की निर्मिति हो रही है। गत वर्ष भी इन्हीं दिनों उत्तरप्रदेश में दगे हुए थे, जिनमें ५०-६० लोग घायल हुए थे। इस वर्ष फिर वहाँ दगे हुए हैं। अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हुए दगों के बारे में पुलिस अधिकारियों व केंद्रीय शिक्षा मत्री का जो कहना है, वह वहाँ की स्थिति की गभीरता को प्रकट करनेवाला है। लेकिन वे कुछ

भी करें, उनके खिलाफ कुछ भी बोलना नहीं है— अपनी सरकार की इस नीति के कारण उनको प्रश्रय ही मिलता है।

कश्मीर में मुसलमान बहुसख्या में हैं, वहाँ हिंदुओं को उनसे मिलकर रहना चाहिए, ऐसा ही पाकिस्तान के हिंदुओं के लिए भी कहा जाता है। लेकिन उत्तरप्रदेश में दगे होने पर हिंदुओ को सलाह दी जाती है कि उन्होंने अपना जातीय अभिमान भूलना चाहिए। ऐसा लगता है, जैसे मुसलमान ही देश के असली मालिक हैं और हिंदू इस देश में दूसरे दर्जे के नागरिक हैं, मुसलमानों के दास हैं।

मुझे जानकारी मिली है कि यदि समय रहते अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही की गई होती, तो इस प्रकार की दुघटना होती ही नहीं। एक ओर मुसलमान दहशत उत्पन्न कर अराजकता का वातावरण बना रहे हैं, दूसरी ओर हमारे नेता तथा प्रशासनिक अधिकारी उनकी गतिविधियों को रोकने का प्रयत्न तो करते नहीं, उल्टे उन्हें बचाने का ही काम करते हैं।

एक ओर मुसलमान आतक फैला रहे हैं तो दूसरी ओर ईसाई मिशनरी सेवा के नाम पर ईसा मसीह को ही बदनाम करनेवाला जघन्य व्यापार कर रहे हैं। ऐसा कहा जाता है कि उनका कार्य मानवतावादी है। उनके काम के परिणाम का विचार करेंगे तो साफ दिखाई देगा कि उनका मानवता से कोई लेना-देना नहीं है। बल्कि उनका काम केवल स्वार्थ की भावना से प्रेरित है। एक केंद्रीय मत्री, जो धर्म से ईसाई हैं, का अभी हाल ही में जो वक्तव्य आया हे, वह विद्रोह को बढावा देने वाला ही है। कोई भी भारतमाता का पुत्र इस प्रकार की भाषा नहीं बोल सकता।

स्थान-स्थान पर जो साप्रदायिक दगे हो रहे हैं, वे अकारण व असबद्ध नहीं हें। शरीर में व्याधि निर्माण होने पर सपूर्ण शरीर में जगह-जगह उसका परिणाम दिखाई देता है। उसी प्रकार राष्ट्र-शरीर में व्याप्त विष का प्रकटीकरण करनेवाली ये घटनाएँ हैं। सन् १९४६-४७ में विभाजन के समय मुसलमान कहे जानेवाले लोगों ने जिस प्रकार की तैयारी की थी, आज फिर से उससे भी अधिक बडी व घातक तैयारी हो रही है। भविष्य में हमें कहना पड सकता है कि १९४६-४७ में हुए दगे आज की तुलना में सामान्य ही थे।

देश का प्रत्येक मुसलमान राष्ट्रीय है, ऐसा अपना अनुभव नहीं है।

उनमें राष्ट्रीय भावना निर्माण करने का प्रयत्न होना चाहिए। लेकिन उन्हें राष्ट्रीय बनाने के प्रयत्नों का विरोध हमारे ही नेता करते हैं, मेरा उनपर ऐसा स्पष्ट आरोप है।

वे ऐसा समझते हैं कि यहाँ के मुसलमान विदेशी नागरिक हैं और उनको सुरक्षित रखना हमारी जवाबदारी है। विदेश से आनेवाले राजनेताओं व पाकिस्तान से आनेवाले अधिकारियों से इस प्रकार का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए उन्हें देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमने व निरीक्षण करने की अनुमति दी जाती है, मानो यहाँ के मुसलमानों का हितरक्षक पाकिस्तान हो। भारत सरकार ने अपने व्यवहार से इस प्रकार की सोच को मान्यता दी हुई है, जबकि होना तो यह चाहिए कि मुसलमानों में जो सज्जन लोग हैं और राष्ट्रीय दृष्टि से सोचते हैं, उन्हें सरकार बढावा देती और पाकिस्तान से कहती कि तुम्हें हमारे घरेलू मामले में पडने की आवश्यकता नहीं है।

देश में अपना प्रभुत्व स्थापित करने की मुसलमानों की आकांक्षा दबी-छिपी हुइ नहीं है, वह सबके सामने खुली हुई है। इसी दृष्टि से उनके सारे प्रयत्न चल रहे हैं। लेकिन क्या इन गतिविधियों पर हमारे गुप्तचर विभाग की नजर है? यहाँ नागपुर में ही 'संपूर्ण भारत को पाकिस्तान बनाए बिना चैन नहीं लेंगे'— ऐसे प्रस्ताव पास हो रहे हैं। ऐसा होने पर भी मुसलमानों को 'राष्ट्रीय' माना जाता है, यह एक आश्चर्य ही है।

मेरी ऐसी मान्यता है कि इस प्रकार की गतिविधियों के पीछे विशेष उद्देश्य है। पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण करने की घोषणा की हुई है। आक्रमण होने पर देशभर में विद्रोह का वातावरण उत्पन्न करने की दृष्टि से ही यह सब किया जा रहा है। चीन भी एक-एक कदम आगे बढा रहा है। उसका स्वागत करनेवाले भी हमारे देश में विद्यमान हैं। समय आने पर वे भी पीछे नहीं रहेंगे।

अब लोग पूछते हैं कि यह सब आपको ही क्यों दिखता है? आप भी कोई गुप्तचर विभाग रखते हैं क्या? क्योंकि चीनी आक्रमण होने वाला है इसकी सूचना मैंने पहले से ही दी थी। इस सबके लिए गुप्तचर विभाग की जरूरत नहीं है, देशहित सामने रखकर आँखे खुली रखी जाएँ तो उनको भी दिखाई देगा।

इस प्रकार संकटों से घिरे हुए हालात में अपने संगठन को मजबूत करना ही एकमात्र विकल्प है।

ऊँ ऊँ ऊँ

है। वह यहाँ की हर बात पर श्रद्धा रखता है।

अब यह सत्य है कि हिंदू-समाज के अतिरिक्त अन्य भी अनेक लोग यहाँ रहते हैं, किंतु वह अपने को इस भारतमाता का पुत्र मानते हैं क्या? उन्होंने तो अपने लिए अलग देश व भूमि की माँग की। उसमें वे सफल भी हुए। विभाजन के बाद केवल देशभक्त मुसलमान ही इधर रह गए हैं क्या? भले ही हमारे देश के बडे-बडे लोग उन्हें 'देशभक्त' कहें, परंतु वास्तव में ऐसा है नहीं।

हैदराबाद राज्य को भारत में विलीन करने के बाद वहाँ हुई स्वागत-सभा में रजाकारों की करतूतों का उल्लेख करते हुए सरदार पटेल ने कहा, 'मुझे तो कोई देशभक्त मुसलमान नजर नहीं आता।' सरदार पटेल ने जिस सभा में यह भाषण दिया था, उस सभा के अध्यक्ष से मिलकर मैंने उनके इस वक्तव्य की पुष्टि की है। सरदार पटेल जैसे धीर-गभीर, यथार्थवादी, सत्यवादी, राजनीति-धुरधर, श्रेष्ठ पुरुष कम ही मिलेंगे। उन्होंने ठोस विचार और अपने अनुभव के आधार पर ही यह कहा था। महात्मा गाँधी के समकक्ष माने जाने वाले सरहदी गाँधी खान अब्दुल गफ्फार खान ने देश के विभाजन के समय जो वक्तव्य दिया था, उसे ध्यान में लाएँ तो सरदार पटेल के कथन का मम समझ में आ सकता है।

सरहदी गाँधी ने कहा था— 'हमारे प्रति तो अन्याय हुआ है। हमें इच्छा के विपरीत पाकिस्तान में ठूँस दिया गया। हमें पख्तूनों का प्रदेश चाहिए। भारत के नेताओं ने हमें अलग पख्तूनिस्तान का आश्वासन दिया था परंतु उन्होंने हमारे साथ विश्वासघात किया है।' इन बातों पर गौर करना चाहिए। इनका क्या मतलब है?

अपना राष्ट्रजीवन बनाने के बारे में बहुत सभ्रम फैला हुआ है। अभी का उदाहरण आपके सामने रखता हूँ। सोमनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार के समय हमारे श्रद्धेय राष्ट्रपति से लेकर जिन नेताओं के भाषण हुए, उन्होंने अपने भाषणों में कहा था— 'इस कार्य से हमारे राष्ट्रजीवन पर हजारों वर्ष पूर्व लगा कलक धुल रहा है। हमारा राष्ट्रजीवन अति पुरातन है। विधर्मी आक्रमणों के कारण वह सहस्रों वर्षों से दासता की जजीरों में जकडा गया था, पददलित था। उस दासता का जो कलक लगा था, वह इस पुनर्निर्माण से धुल रहा है।' यह कथन सिद्ध करता है कि हमारा राष्ट्रजीवन क्या था। विधर्मी आक्रामकों के पूर्व से हिंदूसमाज ही इस देश

शस्त्रपूजन, १९६२

मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य भगवान की प्राप्ति करना है। सामान्य व्यक्ति भौतिक सुखों के पीछे दौडता है। दिल बहलानेवाली बातों के पीछे भागता है। किंतु उनका अनुभव लेने के बाद उसकी रुचि उसमें सदैव बनी नहीं रहती। केवल बुद्धि को संतुष्ट करने के लिए जो प्रयास किया जाता है, वह भी अंततोगत्वा एक प्रकार की विफलता ही लाता है। मनुष्य निर्बाध, निर्विवाद सुख चाहता है। अपने यहाँ के महापुरुषों ने स्वानुभव से यह बात सबके सामने रखी कि वह सुख, जिसे 'भगवान' कहते हैं, उसके साथ एकरूप होने में है। वही हमारे जीवन का वास्तविक लक्ष्य भी है। वह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए यदि कोई भूमि है तो वह अपनी भारतभूमि ही है। यह अपनी भूमि है— इस दुरभिमान के कारण यह कहा गया है, ऐसी बात नहीं है।

हम लोग सोचेंगे तो अपने को ऐसा दिखाई देगा कि भारत के बाहर भी बडे-बडे महापुरुष हुए हैं। उन्होंने मत और पंथों की स्थापना की है, जिनको गलती से कई लोग 'धर्म' भी बोलते हैं। जैसे मुस्लिम या ईसाई मत। उनके अनुयायियों ने बडी श्रद्धा से उनके जीवन-चरित्र लिखे हैं। अब अनुयायी अपने श्रद्धेय के बारे में लिखेगा तो कुछ बढा-चढाकर ही लिखेगा। उसके जीवन-चरित्र को किसी प्रकार की न्यूनता आए — ऐसा नहीं लिखेगा। ऐसे वर्णनों में भी किसी को देवदर्शन होने का उल्लेख नहीं मिलता। हजरत मोहम्मद साहब को देववाणी सुनाई दी। ईसा मसीह को देवदूत एवं शैतान के दर्शन हुए। परंतु भगवान के दर्शन होने का उल्लेख नहीं मिलता।

अपनी भूमि में अनेकों श्रेष्ठ पुरुष हुए हैं, जिन्होंने सारे विश्व का आह्वान करते हुए कहा, 'मैंने उस तेजस्वी पुरुष को देखा है, जाना है। जिसे जानने से मनुष्य सभी सुख-दुःखों से ऊपर उठकर मोक्ष प्राप्त करता है। अभी-अभी जो संप्रदाय अस्तित्व में आए, उनके प्रवर्तकों ने भी इस सत्य को प्रत्यक्ष हृदयंगम किया है। फिर उस सत्य को कोई 'शून्य' कहे, 'निर्वाण' कहे, या अन्य किसी नाम से कहे।

भगवान ने अपने साक्षात्कार की दृष्टि से समग्र पृथ्वी पर यही एक तीर्थस्थल बनाया है— इसमें कोई संदेह नहीं। इन सबके प्रति श्रद्धा रखने वाला अपना यह हिंदू-समाज इसे पुण्यभूमि मानकर इसपर पुत्ररूप में रहता

है। वह यहाँ की हर बात पर श्रद्धा रखता है।

अब यह सत्य है कि हिंदू-समाज के अतिरिक्त अन्य भी अनेक लोग यहाँ रहते हैं, किंतु वह अपने को इस भारतमाता का पुत्र मानते हैं क्या? उन्होंने तो अपने लिए अलग देश व भूमि की माँग की। उसमें वे सफल भी हुए। विभाजन के बाद केवल देशभक्त मुसलमान ही इधर रह गए हैं क्या? भले ही हमारे देश के बडे-बडे लोग उन्हें 'देशभक्त' कहें, परंतु वास्तव में ऐसा है नहीं।

हैदराबाद राज्य को भारत में विलीन करने के बाद वहाँ हुई स्वागत-सभा में रजाकारों की करतूतों का उल्लेख करते हुए सरदार पटेल ने कहा, 'मुझे तो कोई देशभक्त मुसलमान नजर नहीं आता।' सरदार पटेल ने जिस सभा में यह भाषण दिया था, उस सभा के अध्यक्ष से मिलकर मैंने उनके इस वक्तव्य की पुष्टि की है। सरदार पटेल जैसे धीर-गंभीर, यथार्थवादी, सत्यवादी, राजनीति-धुरंधर, श्रेष्ठ पुरुष कम ही मिलेंगे। उन्होंने ठोस विचार और अपने अनुभव के आधार पर ही यह कहा था। महात्मा गाँधी के समकक्ष माने जाने वाले सरहदी गाँधी खान अब्दुल गफ्फार खान ने देश के विभाजन के समय जो वक्तव्य दिया था, उसे ध्यान में लाएँ तो सरदार पटेल के कथन का मर्म समझ में आ सकता है।

सरहदी गाँधी ने कहा था– 'हमारे प्रति तो अन्याय हुआ है। हमें इच्छा के विपरीत पाकिस्तान में ठूँस दिया गया। हमें पख्तूनों का प्रदेश चाहिए। भारत के नेताओं ने हमें अलग पख्तूनिस्तान का आश्वासन दिया था, परंतु उन्होंने हमारे साथ विश्वासघात किया है।' इन बातों पर गौर करना चाहिए। इनका क्या मतलब है?

अपना राष्ट्रजीवन बनाने के बारे में बहुत संभ्रम फैला हुआ है। अभी का उदाहरण आपके सामने रखता हूँ। सोमनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार के समय हमारे श्रद्धेय राष्ट्रपति से लेकर जिन नेताओं के भाषण हुए, उन्होंने अपने भाषणों में कहा था– 'इस कार्य से हमारे राष्ट्रजीवन पर हजारों वर्ष पूर्व लगा कलंक धुल रहा है। हमारा राष्ट्रजीवन अति पुरातन है। विधर्मी आक्रमणों के कारण वह सहस्रों वर्षो से दासता की जंजीरो में जकडा गया था, पददलित था। उस दासता का जो कलंक लगा था, वह इस पुनर्निर्माण से धुल रहा है।' यह कथन सिद्ध करता है कि हमारा राष्ट्रजीवन क्या था। विधर्मी आक्रामकों के पूर्व से हिंदूसमाज ही इस देश

में रहता आया है, यह बात स्पष्ट होते हुए भी हम सभ्रम में क्यों पडे हुए हैं?

पचशील के सिद्धात बडे अच्छे हैं। उन्हें अपनाएँ तो झगडे होंगे ही नहीं, वैमनस्य रहेगा नहीं, पर मनुष्य स्वार्थी है। व्यक्ति, समूह का अग बनकर अधिक स्वार्थी बन जाता है। इसके चलते दुष्ट भी हो जाता है। विभाजन के समय हुए उपद्रवों में इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। अच्छे-अच्छे लोग सामूहिक पागलपन में सम्मिलित हो जाते हैं। अत इस बात को समझकर, जो जैसा है, उसे उस रूप में समझना चाहिए, अन्यथा आत्मघात ही होगा। उसके बारे में हृदय में भ्रम नहीं रखना चाहिए।

आज मनुष्य की प्रवृत्ति पचशील की नीति को मानती नहीं, उल्टे उसका दुरुपयोग करने की ही है। चीन को ही लें। आक्रमणकारी होकर, उल्टे हमको ही पचशील का उपदेश कर रहा है, साथ ही साथ हमारी सीमा में भी घुसता जाता है।

जगत् में मीठे शब्दों से लाभ नहीं होता, केवल सिद्धात बताने से काम नहीं होता। यह तो सबको मान्य करना पडता है कि जीवन व्यतीत करने के लिए शक्ति से खडा रहना आवश्यक है। 'वास्तव में तो दुर्बल रहना ही हिसा को प्रोत्साहन देना है।'

गत चालीस वर्षो से हमारे देश में होनेवाली मारपीट बद क्यों नहीं हुई? देश का विभाजन क्यों हुआ? क्योंकि हिंदू-समाज कोई प्रतिकार किए बिना केवल मार खाता रहा, इसलिए। यदि वह मार नहीं खाता और अपना सामर्थ्य एक बार भी अच्छी प्रकार से बता देता, तो सब भाई के रूप में रहने को तैयार हो जाते और प्रेममय वातावरण उत्पन्न होता। 'हिंदू-मुसलमान भाई-भाई' के नारे लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। परतु यह हुआ नहीं और अब भी नहीं हो रहा।

भगवान बुद्ध को भी एक बार कहना पडा था कि 'प्राण व धन का विनाश होता हो तो शक्ति का उपयोग करना होगा।' गॉधीजी ने भी यह कहा कि 'अपनी शक्ति से खडा रहना आवश्यक है। मार खाते बैठकर अहिसा का जप करना कायरता का लक्षण है।'

सब सप्रदाय, जाति, भाषा, भिन्न-भिन्न प्रकार का रहन-सहन, इत्यादि से बना हुआ यह श्रेष्ठ विशाल हिंदू-समाज है। इसके एक घटक के नाते हम पर एक बडा भार आता है कि इस माता के परिसर में रहनेवाले हिंदू-समाज को आगे बढाएँ उसके जीवन को शुद्ध करें, उसको सक्षम-सबल बनाएँ।

इस भारत को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिए दो बातें करने की आवश्यकता है। पहली यह कि अपने स्वत के जीवन के प्रति नितात श्रद्धा और उसके अनुरूप अपने जीवन में चारित्र्य व शुचिता का आविष्कार और दूसरी बात यह कि सबके अत करण में भारतमाता की सेवा के लिए सबने मिलकर सूत्रबद्ध शक्ति के रूप में अपने जीवन को परिवर्तित करना।

इन दो बातों के बिना अपनी परपरा को हम चिरजीव नहीं बना सकेंगे। इसके अभाव में आज के सघर्षमय वायुमडल में हम टिक नहीं पाएँगे।

ॐ ॐ ॐ

विजयादशमी, १९६२

जिस समाज को अपना स्वातत्र्य सुरक्षित रखना हो उसे सदा जागरूक रहने की आवश्यकता होती है। यदि वह सजग न रहा तो घात लगाए बैठे दुश्मन को सधि मिलती है और वह केवल उसकी आजादी ही नहीं, वरन् सर्वस्व छीनने में भी सकोच नहीं करता।

अभी पिछले दिनों असम में भूकप आया था। अपने स्वयसेवकों ने वहाँ कुछ सहायता कार्य हाथ में लिए हैं। मैं उस भूकपग्रस्त क्षेत्र के प्रवास पर गया था। उस समय जो अनुभव आया उसे आपके सामने रख रहा हूँ। अपनी सीमा से लगे हुए देश के बहुत सारे लोग अनधिकृत रूप से वहाँ रह रहे हैं। उन्हें ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। मेरे देखने में आया कि वहाँ उन्होंने अपने उद्योग-धधे शुरू कर दिए हैं। यहाँ तक कि जमीनें भी खरीद ली हैं। स्थानीय शासकीय अधिकारी इसमें उनकी सहायता कर रहे हैं। लोगों से व्यक्तिगत भेंट के समय यह भी मालूम हुआ कि उस क्षेत्र में भाषावाद, प्रातवाद भी चरम स्थिति को प्राप्त है। सिलहट जिला हिंदू बहुल है, लेकिन असमी, बगाली के आपसी झगडे में व्यस्त रहने के कारण अल्पसख्यक समुदाय के प्रभाव में आ गया है। इतना सब होते हुए भी हिंदुओं को इसकी कोई चिता नहीं है। राजनेताओं ने इस झगडे को सुलझाने का गभीरता से प्रयास किया हो, ऐसा भी देखने में नहीं आया। बडी मात्रा में हो रही घुसपैठ के प्रति भी उनका रवैया उदासीनता का ही रहा है। ध्यान दिलाने पर उनका एक ही उत्तर रहता है कि चिता की कोई बात नहीं है। लेकिन अब वे भी चिंतित दिखाई देने लगे हैं। अपने

राजनेताओं की जागरूकता इस प्रकार की है। ऐसा लगता है, मानो उन्होंने देश की समस्याओं के प्रति सजग न रहने का निश्चय किया हुआ है।

तमिलनाडु की स्थिति संतोषजनक है, ऐसा कहने की स्थिति नहीं है। वहाँ भी विधर्मी लोगों की संख्या बढ रही है। उत्तर व पूर्व क्षेत्र के समान ही वहाँ भी अलगाववादी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। अलग तमिल राष्ट्र की माँग का प्रचार शुरू है। फादर गुडविन नामक एक ईसाई मिशनरी ने यह कहकर कि 'तमिल एक महान भाषा है, तमिल एक महान संस्कृति है, वैसे ही तमिल एक महान राष्ट्र है', उसके भारत से अलग होने की मानसिकता के बीज बो दिए हैं। ईसाई इस प्रकार की गतिविधियों में सक्रियता से संलग्न हैं।

उनकी इस प्रकार प्रकार की गतिविधियों के चलने के पीछे हमारा सजग न होना ही है। हम लोग इन सब बातों से गाफिल हैं, एक प्रकार की बेहोशी में हैं। इस प्रकार की गतिविधियाँ निर्बाध रूप से चलती रहीं तो एक दिन अपने इस देश में हमें कदम रखने के लिए भी स्थान नहीं रहेगा।

नेफा में (वर्तमान अरुणाचल प्रदेश -स) चीन घुस आया है, ऐसे समाचार मिल रहे हैं। समाचार-पत्रों में इस संबंध में समाचार प्रकाशित हुए हैं। यह कितनी चिंता की बात है, किंतु हमारी सरकार ने इसे गंभीरता से नहीं लिया— इसका अनुमान हम विदेश मंत्री के वक्तव्य से कर सकते हैं। न्यूयार्क के लिए प्रस्थान करने से पूर्व उन्होंने कहा— 'चीन के इस आक्रमण से बहुत परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। चीन को तो आक्रमण करने की आदत है, उसका यह स्वभाव बन गया है।'

विदेश मंत्री के इस प्रकार के बयान पर देश में जो व्यापक प्रतिक्रिया होनी चाहिए थी, वह नहीं हुई यह कितने आश्चर्य की बात है? यह तो ऐसे ही हुआ कि चोर चोरी करे और पुलिस कहे कि उसे चोरी करने की आदत है। यदि ऐसा है तो फिर पुलिस विभाग की आवश्यकता ही क्या है? मेरा ऐसा मानना है कि विदेश मंत्री के वक्तव्य पर कोई प्रतिक्रिया न होना राष्ट्र में जागरूकता के अभाव को प्रकट करनेवाला है।

आज समाज में जो क्षुद्रता व संकुचितता व्याप्त है, जिसके कारण अनेक प्रकार की समस्याएँ निर्माण हुई हैं, आपसी संघर्ष भी हो रहे हैं। योग्य सामंजस्य निर्माण करने के लिए मातृभूमि के प्रति भक्ति जगानी होगी ओर योग्य संस्कार के द्वारा समाज की मानसिकता बदलनी होगी। उसके

अभाव में शक्ति का प्रकटीकरण सम्भव नहीं है। शक्ति अनुशासन से निर्माण होगी। अनुशासन का अर्थ केवल कदम से कदम मिलाकर चलना ही नहीं है। युक्ति, बुद्धि और शक्ति का सुयोग्य रीति से उपयोग कर सामजस्य निर्माण के लिए जो गुण चाहिए, उनकी उपस्थिति, याने अनुशासन होता है। इस प्रकार के अनुशासन से ही कश्मीर से कन्याकुमारी तक उत्कट राष्ट्रभक्ति और उससे उत्पन्न अखड जागरूकता निर्माण होगी, तभी शक्ति का साक्षात्कार होगा। उसके माध्यम से ही समाज की ग्लानि और सवत्र फैली हुई अनास्था को दूर किया जा सकेगा।

भारतीय विचार यद्यपि त्याग को महत्त्व देता है, श्रेष्ठ मानता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता कि सुख-समृद्धि नहीं होनी चाहिए। सुख-समृद्धि के बिना त्याग का कोई महत्त्व नहीं है। सुख-समृद्धि का ही तो त्याग हो सकता है। वह है ही नहीं तो त्याग किसका होगा? इसलिए सर्वप्रथम जीवन की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सपूर्ण समाज को उसमें सहभागी बनाना होगा। निराश मनोवृत्ति रही तो उपलब्ध साधन भी निरर्थक रहते हैं और यदि विजयाकाक्षा रही तो दृढनिश्चय की नींव पर साधनों के अभाव में भी सफलता प्राप्त होती है। 'क्रियासिद्धि सत्वे भवति महता नोपकरणे' ऐसा शास्त्र-वचन है।

सघ सस्थापक के पास कोई साधन नहीं थे, साथ था तो केवल घोर दारिद्रय का। परतु प्रबल विजयाकाक्षा होने के कारण ही अपने कार्य ने देशभर में विस्तार प्राप्त किया। उसी विजयाकाक्षा को हृदयगम करना होगा।

इन सब समस्याओं का विचार करने पर हिंदू-समाज के जागरण की कितनी आवश्यकता है, यह ध्यान मे आएगा। इन समस्याओं के निराकरण के लिए मातृभूमि के प्रति नितात भक्ति व उत्कट प्रेम उत्पन्न कर व्यक्ति-व्यक्ति को सस्कारित कर समाज को सन्नद्ध करना होगा। तभी अपने देश व समाज हित का सरक्षण करने की पात्रता प्राप्त कर सकेंगे।

मातृभूमि की उत्कट भक्ति से सुयोग्य सस्कार कर समग्र समाज की विच्छिन्नता दूर कर एकात्म-भाव निर्माण होने पर एकता के लिए 'पैच वर्क' की आवश्यकता नहीं रहेगी। परतु इसके लिए सारे भेद एक ओर रखकर सतर्क जागरूक समाज-जीवन निर्माण करने के लिए अपने दैनिक जीवन

का कुछ समय इस कार्य के लिए देना होगा। तभी वैभवशाली समर्थ राष्ट्र बनाने की अपनी आकांक्षा पूर्ण होगी।

ॐ ॐ ॐ

शस्त्रपूजन, १९६३

उद्दंडता के आगे झुकना अति भयंकर भीरुता है, कायरता है, मनुष्यता नहीं। आज हिंदू-समाज के स्वाभिमानशून्य सामर्थ्यशून्य एवं परस्पर कलह से शक्तिशून्य होने से यह सब सहन करना पड़ता है। अपने ही समाज के बड़े-बड़े लोग अनेक कारण उपस्थित कर आपसी संघर्ष बढ़ाने में संलग्न हैं। भाषा जाति, पंथ, संप्रदाय के भेद खड़े कर विरोध खड़ा किया जाता है। कभी-कभी क्षुद्र स्वार्थ के लिए अपने गुट बनाकर स्पर्धा, ईर्ष्या करते हैं। इस कारण उत्तर से दक्षिण तक फैला यह समाज खोखला हो गया है और दिन-प्रतिदिन अधिक खोखला होता जा रहा है। कोई भी विचारी मनुष्य इस स्थिति को देखकर चिंतित हुए बिना नहीं रहेगा। विशेषकर आज के युग में दुर्बल को जीवित रहने का अधिकार नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न समाज, मत-संप्रदाय हमारी दुर्बलता का लाभ उठाकर विभेद निर्माण करने का प्रयत्न कर रहे है। देश के भीतर-बाहर से समाज व धर्म पर आघात करनेवाले लोग सक्रिय हैं।

कुछ दिन पूर्व मैंने पढ़ा था कि ईसाई धर्म का प्रचार करनेवाले किसी एक व्यक्ति ने लेख लिखकर विदेशों में भारत को बदनाम करना प्रारंभ किया है। इसपर किसी ने उसका अत्यंत सौम्य उत्तर लिखकर भेजा, परंतु उसे छापने का सौजन्य विचार-स्वातंत्र्य का शोर मचानेवाले अमरीका के समाचार-पत्रों ने नहीं दिखाया। उनका काम तो भारत के बारे में अनर्गल प्रचार कर भ्रम फैलाना है। इस प्रकार प्रलोभन देने के अलावा भ्रम फैलाकर लोगों को हिंदू धर्म से अलग करने के प्रयत्न चल रहे हैं। उनके पास धन की कोई कमी नहीं है। इस कारण कार्यकर्ताओं का भी अभाव नहीं है। भिन्न-भिन्न वन्य क्षेत्रों में विपुल मात्रा में कार्य चल रहा है। अपने देश में अपनी आँखों के सामने खुले रूप से यह सब चलता रहे, यह तो अत्यंत दुःख की बात है।

एक और विलक्षण प्रसंग आपके विचार के लिए प्रस्तुत करना चाहूँगा। यह अनुभव में आया है कि अपने महाराष्ट्र प्रांत में गणेशोत्सव में

बाधाएँ खडी की जाती हैं। गणपति-विसर्जन के समय वाद्य बजाते हुए जो शोभायात्राएँ निकाली जाती हैं, उन पर आक्रमण होते हैं। श्रद्धास्पद मूर्तियों को खडित किया जाता है। हमें अपने धार्मिक कार्यो को शाति व उल्लास के साथ सपन्न नहीं करने दिया जाता।

अग्रेजों ने अपना राज्य कायम रखने की दृष्टि से इस प्रवृत्ति को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया था। उल्टे धार्मिक कार्यो में सलग्न हिदू-समाज को ही रोकने व हतोत्साहित करने का प्रयास किया था। अग्रेज परकीय थे, हिदुओं की धार्मिक श्रद्धा नष्ट कर सदा के लिए उन्हें दास बनाने की दृष्टि से उन्होंने यह किया हो तो आश्चर्य नहीं। परतु विचित्र बात तो यह हे कि स्वराज्य में भी सर्वसामान्य धार्मिक उत्सव मनाने में बाधा उत्पन्न की जाती हे। आज भी वही हो रहा है, जो पहले होता था। मारपीट, आगजनी आदि होती हे ओर इसके लिए जिम्मेदार तत्त्वों को उद्दडता करनेवालों को रोकने अथवा पकडकर किसी प्रकार दड देने का प्रयत्न नहीं किया जाता। शाति व न्याय पर चलनेवाले लोग ही सरकार की एकतरफा कार्यवाही के शिकार होते हैं।

महाराष्ट्र के अलावा देशभर में कुछ अन्य स्थान भी हैं, जहाँ इस प्रकार की उद्दडता होती रहती है। इस वर्ष ऐसी उद्दडता मालेगाँव में हुई। वहाँ उद्दडता रोकने के लिए प्रशासनिक अधिकारी सक्रिय नहीं हुए, परतु जिस मालेगाँव में झगडा हुआ था, उससे दूर औरगाबाद या नादेड में सघ के कार्यकर्ता प्रवास पर जाते थे, उनके पीछे-पीछे सरकारी अधिकारी रहते थे। ऐसी तो हमारी सरकार की सजगता व नीति है, जो सज्जन व अपराधी को एक तराजू पर तोलती है। इससे तो असामाजिक तत्त्वों के हौंसले बढते हैं, बढ भी रहे हैं।

हम लोग कहते हैं कि सबकी धार्मिक भावनाओं का आदर किया जाना चाहिए। परतु यह कोई धार्मिक भावना है? न्यायालय ने भी कहा है कि इसमें धर्म-भावना का प्रश्न नहीं उठता। वाद्य न बजाए जाएँ– ऐसा कोई प्रतिबध उनके धर्म में नहीं है। सडकें बनी हैं– वे तो नगरपालिका या सरकार की बनाई हुई हैं। हिदू-समाज ने तो कहा नहीं कि सडकें मस्जिदों के पास बनाओ। जो अभी तक नहीं थीं उन्हें भी खींच-तानकर सडकों तक किया जा रहा है। यदि धार्मिक भावनाएँ इतनी कोमल हैं तो उन्हें चाहिए कि वे मस्जिदों का निर्माण एकात स्थान में करें, जगल में बनाएँ।

हमारे यहाँ जो चिंतन-मनन करना चाहते हैं, वे निर्जन या एकांत स्थान पर चले जाते हैं।

जो अपने प्रार्थना-स्थान सडकों पर जमाते हैं, उसमें कोई धार्मिक भावना नहीं होती। उसके पीछे केवल एक ही भावना रहती है कि उद्दडता या मारपीट कर दहशत से लोगों को झुकाएँगे। इसका अनुभव स्थान-स्थान पर आता रहता है। ऐसी उद्दडता के सामने साष्टाग नमस्कार करना, शीश झुकाना तो भीरुता है। उद्दडता के आगे विनम्र होना पाप है।

मुसलमान इस बात को भूले नहीं हैं कि अग्रेज आने के पूर्व हिंदुस्थान में उनका राज्य था। वे उस स्थिति को फिर से लाने के लिए प्रयासरत हैं। उनके सारे आन्दोलन इसी आधार पर चलाए गए। अग्रेजों के विरुद्ध सघर्ष भी इसी उद्देश्य को सामने रखकर किया था। मगर वे हर-बार विफल हुए। देश को आजादी प्राप्त होने के बाद उन्होंने रातों-रात अपने स्वर बदले थे। लेकिन उनके मत (वोट) के लोभी नेताओं की प्रवृत्ति देखकर उनकी वह सुप्त अभिलाषा फिर से जाग उठी है। इसलिए वे अपने मत की कीमत अधिकाधिक अधिकार प्राप्त कर वसूल करते हैं। पिछले ५० वर्षों का उनका इतिहास अपने सामने है। वे अपना सख्याबल बढा रहे हैं। देश में हिंदुओं की सख्या तो दिनो-दिन कम हो रही है, किंतु उनकी जनसख्या निरतर बढती जा रही है।

मतों के प्रलोभन में जो अपने देश व समाज को चोट पहुँचा रहे हैं, उन नेताओं को बडा कैसे माना जाए? वर्तमान स्थिति के लिए आत्मघात की प्रवृत्तिवाले ऐसे लोग ही दोषी हैं। यह सब हमें इसलिए सहन करना पडता है, क्योंकि हम स्वाभिमानशून्य, सामर्थ्यशून्य, परस्पर कलह के कारण शक्तिशून्य हो गए हैं।

पाकिस्तान ने चीन के साथ दोस्ती कर चीन के समान ही कदम उठाए हैं। उसने गोली चलाई, दहशत उत्पन्न की और हमारी भूमि पर अधिकार कर लिया। हमारे सत्ताधीश इस बात का जवाब नहीं देते कि उस भूमि को कब वापस लेंगे? वे इतना ही कहते हैं कि इस विषय में पाकिस्तान से बात करेंगे। वे बातें ही करते रहेंगे। ऐसे सामर्थ्यहीन लोगों को समाज नेता बनाता है यह उसी का परिणाम है। समाज के भले के लिए यह उचित नहीं है। हम दुर्बल हैं तो शासन भी दुर्बलता का ही प्रतिनिधित्व करेगा। साहस के साथ यदि आक्रमण करने के लिए हम खडे

न हों तो उसके लिए समाज ही दोषी है।

मनुष्य सगठित तभी होता है, जब उसके सामने एक लक्ष्य व एक ही श्रद्धा हो। उपासना करने के लिए अपने पास अपनी श्रेष्ठ मातृभूमि है। हमारी कर्मभूमि, पुण्यभूमि, धर्मभूमि यही है। इसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। हमारे यहाँ 'मातृदेवो भव' कहा गया है। उसके हम पर जो अनत उपकार हैं, वे हम कभी चुका नहीं सकते। मातृभक्त होना सभ्यता का, सुसस्कृत होने का लक्षण है। इस भूमि पर ऐसा पुत्ररूप समाज, हिदू-समाज ही है, शेष आक्रामक हैं।

आज जो आक्रामक हैं, वे पहले हिदू ही थे। यह ठीक है कि वे पहले हिदू थे, पर यदि अपने पूर्व के हिदुत्व का स्मरण कर आज की अपनी स्थिति पर उन्हें दु ख नहीं होता, वेदना नहीं होती, अपितु वे पूर्वजों की स्मृति को मिटाने पर ही तुले होंगे, तो वे आक्रमणकारी ही माने जाएँगे। उनके साथ शत्रुता का ही व्यवहार करना चाहिए।

इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया है कि जब अपने मन में यह भाव रहेगा कि एक-दूसरे के हित-सबध जुडे हुए हैं, तभी एकता कायम रहेगी। जब तक यह नहीं होता, पराजय ही पराजय मिलती है। अपने इस समाज के साथ भिन्न-भिन्न समाजों ने जो व्यवहार किया है, उस आधार पर उनके साथ शत्रुता या मित्रता के विचार रखें। पुत्ररूप समाज की ही अपनी भूमि के प्रति नितात श्रद्धा रहती है और ऐसा अतर्बाह्य एकरूप समाज 'राष्ट्र' कहलाता है। सक्षेप में कहना हो तो भारतीय राष्ट्रजीवन ही हिदू राष्ट्रजीवन है। इस जीवन का अश होने के कारण उसे उसके श्रेष्ठ रूप में खडा करना है।

विजयादशमी, १९६३

सघ के कार्य को सक्रिय प्रोत्साहन मिले — यह इच्छा सघ के कार्यक्रम के कारण उत्पन्न हुई है या राष्ट्र की आवश्यकता के कारण? आज राष्ट्र की स्थिति सकटमय है। एक ओर उत्तर-पूर्व सीमा पर चीन और पाकिस्तान की सेनाएँ खडी हैं, दूसरी ओर उनकी सरकारें भारत विरोधी-प्रचार इतनी कुशलता से कर रही हैं कि यह माना जाने लगा है कि आक्रमणकारी ठीक हैं, उनकी माँगें न्यायपूर्ण हैं। कश्मीर का प्रश्न उनके

प्रचार का एक उदाहरण है। वहीं हमारे देश के लोगों का प्रचार के प्रति असामान्य अज्ञान है। हम अपनी सही बात भी ठीक ढग से नहीं रखते।

हमारी तो हालत यह है कि मित्रों की सहायता करने में भी हमें हिचकिचाहट होती है। ऐसी स्थिति में क्या कोरी बातों से हमारा सरक्षण हो सकेगा? केवल सौजन्य, सज्जनता, न्याय, नीति-अनीति की बातें नहीं चलेंगी। हमें ऐसी भाषा का प्रयोग करना होगा, जो उनकी समझ में आता हो। उन्हें उन्हीं की भाषा में, अर्थात् प्रबल प्रत्याघात की भाषा में उत्तर देना होगा, अन्यथा स्वाभिमान को नष्ट करने के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगेगा।

कुछ लोग आक्रमण का सामना शाति से करने की बात करते हैं। उनका कहना है कि यदि घास-फूस नहीं रहेगी तो आग कहाँ लगेगी? मार-पीट के लिए दो पक्ष लगते हैं। एक पक्ष शात रहेगा तो मार-पीट कैसे होगी? वे यह भूलते हैं कि मार-पीट में एक पक्ष मारनेवाला और दूसरा मार खानेवाला हो, तब भी मार-पीट हो सकती है। क्या हम मार खानेवाला पक्ष बनें? भारत ने आज तक कम सौजन्य व सहिष्णुता नहीं दिखाई है। इसका जवाब हमें हर बार आक्रमण के रूप में ही मिला है।

आजकल का ही उदाहरण लें। कहा जाता है कि चीन के साथ हमारा भाई-चारे का सबध है। पर उसने तिब्बत हडपने का महापाप किया। इस पर भी उसका अभिनदन करने के निकृष्ट स्तर तक पहुँचकर हमने बधु-प्रेम का प्रदर्शन किया, फिर भी हमें मिला क्या?

आज दुनिया में अण्वास्त्रों के कारण मानव-सहार व व्यापक विनाश के भय से शाति की बातें हो रही हैं। जब युद्ध होता है तब ये बातें किसी काम की नहीं रहतीं। व्यापक युद्ध होने में भगवान की योजना काम करती है। महाभारत का युद्ध टालने के क्या कम प्रयत्न हुए थे। युधिष्ठिर तो पाँच ग्राम पर भी समझौता करने को तैयार थे। पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य ने भी युद्ध टालने के कम प्रयत्न नहीं किए। भगवान कृष्ण ने भी समझौता कराने की पूरी कोशिश की, किंतु दुर्योधन के दुराग्रह के कारण युद्ध हुआ।

इसी महाभारत में भगवान ने अर्जुन को गीता सुनाते हुए अपना विश्वरूप दिखाया था। वह सदैव का स्नेहमय रूप नहीं था। उस विराट व विकराल रूप को देखकर भगवान शकर के साथ युद्ध करनेवाला अर्जुन जैसा वीर भी भयभीत हो गया। जब अर्जुन ने उस विराट पुरुष से पूछा,

'तुम कौन हो?' उसने उत्तर दिया— 'मैं साक्षात् काल हूँ। यहाँ जो लोग उपस्थित हैं, वे चाहे लडें या न लडें, बचेंगे नहीं।'

अब भी कोई न कोई दुर्योधनरूपी व्यक्ति दुराग्रह की भूमिका निभाएगा और युद्ध निमंत्रित करेगा। आज चीन हमारे सम्मुख हठधर्मी के रूप में हैं। ऐसी स्थिति में हम आत्मरक्षा की कोई भी व्यवस्था न करें तो इतिहास हमें मूर्ख ही कहेगा।

केवल सेना अच्छी होने या शस्त्रास्त्रों से युक्त होने से ही विजय नहीं मिलती। सेना को यह अनुभूति होनी चाहिए कि अनुशासनपूर्ण, राष्ट्रभक्तियुक्त समाज हमारे पीछे है। सेना को यह विश्वास दिलाने के लिए सदैव जागृत राष्ट्रभक्त समाज चाहिए। इसके साथ ही राष्ट्र के नेता दृढ आत्मविश्वास व प्रबल विजयाकांक्षा रखनेवाले होने चाहिए। ऐसा आत्मविश्वास होने पर हर सैनिक विजय के लिए लडेगा और निश्चित रूप से विजयी होगा, पर आज के नेता नि संदिग्ध नहीं हैं। क्या करना है— यह उनके सम्मुख स्पष्ट नहीं है।

कामराज योजना के नाम पर कांग्रेस में उथल-पुथल चल रही है। यह ठीक है कि यह कांग्रेस का अंदरूनी मामला है, परंतु देश पर आई विपत्ति के समय इस प्रकार की उथल-पुथल होना योग्य है क्या? शत्रु के आक्रमण की ओर ध्यान न देकर आपसी झगडे में लगे रहना देशभक्ति नहीं है। यह तो देश को शत्रु के हाथ में देना है। किसी भी दृष्टि से यह शोभाजनक नहीं है। देरी से क्यों न हो, यह उनकी समझ में आएगा। मगर तब तक कितना नुकसान हो चुका होगा, कहना कठिन है।

अत आज के अवसर पर हम यह दृढ संकल्प कर आगे बढें कि संकट लानेवाली आक्रमणकारी शक्तियाँ, भारत की ओर आँख उठाकर देखने की हिम्मत न करें— ऐसे दृढ, सुसंगठित, राष्ट्रभक्तिपूर्ण समाज का निर्माण करेंगे।

शस्त्रपूजन, १९६४

भिन्न-भिन्न स्थानों पर क्रांतियाँ हुई हैं, परंतु वहाँ इस प्रकार की समस्या नहीं थी। आस्ट्रिया के साम्राज्य से मुक्ति पाने की इच्छा करनेवाले इटली की नहीं थी, अन्यत्र भी कहीं नहीं थी। लेकिन भारत में थी। क्योंकि

अपने यहाँ केवल अंग्रेज ही आक्रामक नहीं थे। उनके पूर्व मोहम्मद गजनवी से लेकर जो आए वे परकीय ही थे। अंग्रेजों के सामने तो यह समस्या थी ही नहीं कि कौन यहाँ के मूल निवासी हैं और कौन आक्रामक? उन्हें तो यहाँ दोनों पर राज्य करना था। उन्होंने तो इसका फायदा ही उठाया। दोनों को आपस में लड़ाकर राज्य किया। उनके लिए दोनों ही गुलाम प्रजा के रूप में थे।

यहाँ की इन समस्याओं का विचार अंग्रेजों ने नहीं किया, उन्हें आवश्यकता भी नहीं थी। किंतु हमें तो विवेकपूर्ण विचार करना चाहिए था कि ध्वंस करनेवाले परकीय आक्रमणकारी कौन-कौन हैं? इस प्रकार विचार करनेवाला कोई नहीं था। संघ-निर्माता को यह बात खटकी। उस समय देश में चल रहे सारे कार्यों का प्रत्यक्ष अनुभव लेने के बाद उन्हें लगा कि उनमें वह चैतन्यता नहीं है। इस विषय में चर्चा करने पर सबका एक ही उत्तर मिलता था कि पहले अंग्रेज को हटाओ, बाकी बातों पर बाद में विचार करेंगे। एक बार अंग्रेज चले जाएँ, फिर इन सबके लिए पर्याप्त अवकाश रहेगा। संघ-निर्माता का अनुमान था कि यह प्रवृत्ति बाद में दुर्बल पड़ जाएगी। उनका अनुमान सही निकला। हम देखते हैं कि समय रहते अपने-पराए का भेद नहीं किए जाने से आज अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ रहा है। यहाँ तक कि भारत का विभाजन सहन करना पड़ा।

यदि राष्ट्र के यथार्थ रूप का ज्ञान प्राप्त कर, अपने-अपने मजहब को मानते हुए भी राष्ट्र के प्रति निष्ठा रहती तो यह समस्या उत्पन्न नहीं होती। इस राष्ट्र की जो परंपरा है, उसे मानते हुए चलते तो आज जिन्हें अल्पसंख्यक कहा जाता है, उनमें पृथक अस्तित्व की वृत्ति नहीं रहती।

निकट से देखने के कारण उन्होंने अनुभव किया था कि प्रत्येक का राज्य प्राप्त करने का स्वार्थ बढ़ रहा है, जिसके कारण प्राचीन काल से चलता आ रहा अपना राष्ट्रजीवन आँखों से ओझल हो गया है। पहले भी आत्मविस्मृति और समाज का असंगठित स्वरूप ही पराजय का कारण रहे हैं। अतः इन मूल कारणों को दूर करना है तो इस भूमि पर पुत्ररूप में रहनेवाले अपने हिंदू-समाज को संगठित करना होगा। और यह अनिवार्य काम करने को कोई अन्य तैयार नहीं है तो अपने को ही करना चाहिए। इसलिए उन्होंने पूरी तरह से सोच-समझकर समाज को संगठित करने का मार्ग अपनाया।

उस समय लोगों का यह कहना था कि बडे-बडे आदोलन हो रहे हैं या नहीं? भेदभाव कहाँ दिखाई देता है? फिर हिंदुओं का अलग सगठन करने की क्या आवश्यकता है? कुछ कहते थे कि सगठन अंग्रेजों के जाते ही कर लेंगे। उनमें से कुछ आज भी विद्यमान हैं। कुछ कहते थे कि सगठन से शक्ति उत्पन्न होती हैं, हमें शक्ति का क्या करना है? किसी से लडना थोडे ही है? हम भाईचारे से रहेंगे तो अपने से कौन लडेगा?

महात्माजी का नाम लेकर अहिंसा का प्रचार करते रहे, परतु महात्माजी की अहिंसा दुर्बल रहकर मार खाने की नहीं थी। उनकी अहिंसा शक्तिशाली की अहिंसा थी। शक्तिसपन्न की अहिंसा का प्रभाव पडता है। उसे छोडकर दुर्बल की अहिंसा का प्रतिपादन करना लोगों ने शुरू किया। सामने वाले की प्रवृत्ति न समझने का कैसा परिणाम हुआ, यह प्रकट ही है।

भाई बनाने का प्रयत्न प्रारभ से ही हुआ है। गुरु नानक, सत कबीरदास, रामानुज आदि 'राम-रहीम एक हैं' कहकर प्रयास करते रहे। सबके बीच प्रेम उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न किया। काग्रेस ने भी ऐसी ही कोशिश की।

भाई बनाने के लिए यह सब होता रहा। 'जो माँगा, वह ले लो, पर भाई बनकर रहो', यह कहा गया। फिर भी इस सबका परिणाम क्या हुआ? सत्य जानने का साहस किया तो दिखाई देगा कि इन सारे प्रयत्नों के बाद भी उनकी गतिविधियाँ सकट उत्पन्न करनेवाली ही रही हैं। भाईचारा कोई 'वन-वे ट्रैफिक' नहीं है। केवल हमारे 'भाई' कहने से क्या होगा, जब तक कि दूसरा भी 'भाई' नहीं कहता।

चीन का उदाहरण भी हमारे सामने है। मित्रता की बलिवेदी पर तिब्बत की हत्या होने दी। उसके साथ विश्वासघात किया। 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के केवल नारे ही नहीं लगाए, हमने हृदय से उसे सत्य भी माना। किंतु इस भाईचारे का क्या हुआ, सब जानते हैं। आज भी वह चीन सदल-बल उत्तरी सीमा पर खडा है।

ससार की रीति तो ऐसी है कि दूसरा 'भाई' तभी कहेगा, जब उसे यह विश्वास हो जाए कि उद्दडता करने पर उसको दड मिलेगा। अपने पास आघात करने की क्षमता हो, ऐसा आघात करने की कि जो आघात करनेवाले को उसके द्वारा किए गए आघात की स्मृति दिलाता रहे। ससार इस पद्धति को ही मानता है।

यह तो हम जानते ही हैं कि जो लोग आज अपने को मुसलमान कहते हैं, डेढ़-दो सौ वर्ष पहले हिंदू ही थे। सोचा गया कि उन्हें अपना बंधु मानने में कोई कठिनाई नहीं होगी। अंग्रेजों के सामने इसके प्रदर्शन भी हुए। उनकी मिन्नतें की जाती थीं कि वे कांग्रेस के अधिवेशन में रहें। उन्हें जेब-खर्च भी दिया जाता था। इसके बावजूद बहुत कम मुसलमान आते थे। उस समय उन्होंने जो भी माँगा दिया गया। नौकरियाँ माँगी — दीं, गोहत्या करने की माँग भी मानी, कहा कि मस्जिद के सामने बाजा मत बजाओ — वह भी माना। आज भी मानते हैं। खामगाँव में आज भी गणेश-विसर्जन नहीं हो पाया, मानो खामगाँव पाकिस्तान का अंश हो। उसे बनाए रखने का काम महाराष्ट्र सरकार कर रही है।

विजयादशमी, १९६४

संघ का काम अपनी पुनीत परंपरा के यथार्थ स्वाभिमान के जागरण का कार्य है। व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय में मातृभूमि के प्रति प्रबल भक्ति भरने, राष्ट्रजीवन के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन के समर्पण के विशुद्ध भाव निर्माण करने का यह कार्य है। राष्ट्र की, मातृभूमि की पूजा करते समय व्यक्तिगत जीवन अशुद्ध नहीं रहना चाहिए। भगवान की पूजा करते समय हम लोग उसे जो पुष्प चढाते हैं, वे अशुद्ध नहीं होने चाहिए, वैसे ही उसके लिए प्रयत्न करते समय व्यक्तिगत जीवन किसी भी प्रकार से हीन नहीं होना चाहिए, अशुद्ध नहीं रहना चाहिए। इसलिए चारित्र्यसंपन्नता का अपने अंदर आह्वान करने का यह कार्य है।

कार्य करते समय इस बात का ध्यान रहे कि 'अपने कार्य को एक पृथक् संस्था के रूप में रखने की इच्छा न रहे।' संघ, समाज के साथ एकरूप होकर पूर्ण समाज एक है — इस प्रकार का पवित्र भाव लेकर संगठित शक्ति के रूप में खडा हो कि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' नाम से दिन-प्रतिदिन अपना परिचय देने की आवश्यकता न रहे।

इस प्रकार से समाज-जीवन में विलीन होकर, उसको ही संपूर्ण रूप से संघबद्ध कर जीवन परिवर्तन करने की अपनी अभिलाषा, अपेक्षा व आकांक्षा रहे। संघ ने प्रारंभ से ही बार-बार अपने लोगों के सामने असंदिग्ध रूप से यह कहा है और आज तक के अपने व्यवहार में भी यह

सिद्ध कर दिखाया है।

समाज की भलाई के वहुत सारे काम होते हैं। कई वार लोग पूछते है कि 'सघ ने अव तक क्या किया है? कहीं मारपीट हो गई, कहीं पर बाढ आ गई, वगाल आदि में लाखों लोग बेघरवार होकर आए, तव सघ ने क्या किया?' इसका उत्तर देना मेरे लिए उचित नहीं है, क्योंकि सघ का सिद्धात है कि समाज के साथ घुल-मिलकर काम करना चाहिए। अपना अलग अस्तित्व बताना अथवा किये गए कार्य का श्रेय लेना उचित नहीं है। वह अपने सिद्धात के प्रतिकूल हो जाएगा। इसलिए मैं उसका वर्णन नहीं करना चाहता। अनेक कामों में सघ क्या करना चाहता है, क्या करता है, यह हम लोग किसी को दिखाना नहीं चाहते। दिखाने की अपनी इच्छा भी नहीं है, परतु प्रसिद्धि से अलग रहकर काम करने की जो पद्धति है, उसको आजकल बडे-बडे लोग भी समझने की इच्छा नहीं रखते। इसलिए लोग हमपर ऐसा आरोप लगाते हैं कि यह एक गुप्त सगठन है।

एक और आरोप सघ पर लगाया जाता है कि यह विध्वसक है। अब अक्साई चीन का हिस्सा दे दो, अन्य प्रदेश दे दो, फिर भी उसका विरोध न करें तो ठीक है। याने मातृभूमि की एकात्मता भग करनेवाली बातें पीकिंग या मास्को के समर्थक बोलेंगे, वे विध्वसक नहीं हैं। हमारी समग्र जीवन-परपराओं को भ्रष्ट करने का प्रयत्न करें, वह विध्वसक नहीं होता। परतु हम लोग कहें कि मातृभूमि के प्रति नितात श्रद्धा रखो, उसके प्रति प्रबल निष्ठा रखो, तो हम विध्वसक माने जाते हैं। यह अपने देश का दुर्भाग्य है कि मातृभूमि के कण-कण की रक्षा हेतु प्राण भी समर्पित करने के लिए नित्य सिद्ध रहना चाहिए — यह कहना और सिखाना विध्वसक माना जाने लगा है।

इस प्रकार की मानसिकता जहाँ हो, उस अपने देश के बारे में यही कहना पडेगा कि आज वह बडे सकट में है। प्रसिद्धि पराड्मुख रहकर केवल सेवावृत्ति से समग्र राष्ट्र के भिन्न-भिन्न अग-प्रत्यग में घुसकर काम करने की इच्छा रखने को यदि कोई राष्ट्रविरोधी माने, तो कहना पडेगा कि ऐसा वायुमडल राष्ट्रजीवन के लिए बहुत ही विनाशकारी है। यह अपने देश को डुबानेवाला है। इस वायुमडल को बदलना पडेगा।

अग्रेजों का राज्य गया और स्वराज्य प्राप्त हुआ, उसे १७ वर्ष हो चुके हैं। किंतु क्या इन वर्षों में समग्र देश की एकता का भाव उत्पन्न हुआ

है? इस दृष्टि से देखने पर अनुभव आएगा कि ऐसा हुआ नहीं। एकात्मता की अनुभूति की भावना का अभाव ही दिखाई देगा। इस अनुभूति को मन में रखते हुए, संस्थाभिमान, व्यक्तिगत मान-सम्मान को राष्ट्र की भलाई के लिए छोडना होगा। क्योंकि संस्थागत व व्यक्तिगत अहंकार ही हमारी बडी समस्या है।

लोग व्यक्तिशः अच्छे हैं, परंतु सत्तापिपासा और उसका लोभ, अपनी संस्था के प्रति प्रेम तथा अपना प्रभुत्व अबाधित रखने के लिए सब प्रकार की हीन प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं। तब उनके व्यक्तिशः अच्छे रहने का कोई मतलब नहीं होता।

यदि एक बार कुछ कह दिया, भले ही वह गलत हो, फिर भी उसी पर डटे रहना, क्योंकि वह अहंकार का, सम्मान का विषय बन जाता है। कश्मीर के विषय में भी ऐसा ही हुआ है। चूँकि एक बार कह चुके हैं कि हम 'बातचीत' करेंगे, इसलिए अब बातचीत छोडकर अन्य कुछ नहीं करेंगे। फिर चाहे कुछ हो जाए।

एक सज्जन ने मुझे कहा 'आप लोग शक्ति का उपयोग करने की बात करते हो। हम सोचते हैं कि बातचीत द्वारा हल करेंगे।'

मैंने पूछा— 'कब तक बातचीत करेंगे?'

उन्होंने कहा— 'हम अंत तक बातचीत करेंगे।'

किसका अंत होने तक बात करेंगे? भारत का अंत होने तक, राष्ट्र का अंत होने तक अथवा समाज का अंत होने तक, जिसे देखकर आपको प्रसन्नता होगी। क्योंकि सब समाप्त होने पर बातचीत का मुद्दा ही खत्म हो जाएगा। झंझट पूरी तरह से समाप्त हो जाएगा।

आखिर शक्ति का प्रयोग करना कोई बुरी बात तो है नहीं। संसार में सभी करते हैं। अपने भारत की परंपरा विजय की रही है। यह विजयादशमी पर्व भी उसी का प्रतीक है। शक्ति का प्रयोग करना अन्याय नहीं है, अनिष्टकारी भी नहीं है। लेकिन अगर कोई कहे कि चाहे जिस समय शक्ति का प्रयोग करो और दूसरा कुछ मत करो, तो उसे मनुष्य नहीं, हिंस्र पशु कहना पडेगा।

हम लोग देखते हैं लोगों को खाने को नही मिलता। क्यों नहीं मिलता? मिलावट क्यों करते हैं? औषधि जैसी वस्तु में भी मिलावट क्यों

होती है? लोग यह सब क्यों करते हैं? ये सब बातें केवल इसलिए होती हैं, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य यह अनुभव ही नहीं करता कि वह मेरी भारतमाता का पुत्र है, मेरा भाई है, मेरे ही राष्ट्र के इस विराट शरीर का, मेरे समान एक अवयव है। इस अवयव में यत्किंचित भी बुराई आ गई या दु ख हुआ तो सारे राष्ट्र-शरीर में विष भर जाएगा। अतत उस विष का परिणाम मुझ पर भी होगा और मेरा भी अत होगा। इस प्रकार की एकात्मता की, एकरस राष्ट्रजीवन की अनुभूति न होने के कारण, सब लोग अपने-अपने स्वार्थ के कारण, सभी प्रकार की अनीति करते हुए दिखाई देते हैं।

शासन सर्व-सत्तासपन्न नहीं होना चाहिए। उसने अन्न-धान्य का व्यापार अपने हाथ में ले लिया है। कल सत्तारूढ दल कह सकता है कि हमें मत (Vote) दो, नहीं तो भूखा रखेंगे। क्या करोगे? इससे बढकर तानाशाही हो नहीं सकेगी। ऐसी किसी बात का समर्थन नहीं होना चाहिए। परतु समर्थन कर दिया गया है। अब उसी नीति पर चलेंगे, क्योंकि वह प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुकी है। इस प्रकार सब बातों में लोगों ने प्रतिष्ठा के प्रश्न बना लिए हैं। लोग मरे तो मरें, लेकिन उनकी प्रतिष्ठा बचनी चाहिए।

प्रात, जो आजकल 'राज्य' कहे जाते हैं, अपने को लगभग स्वतत्र मानने लगे हैं। कुछ थोडी-सी आवश्यक बातों के लिए केंद्र के साथ अपना सबध रखना चाहते हैं, बाकी के लिए अपने को स्वतत्र मानते हैं। उत्तरप्रदेश सरकार ने पजाब सरकार से प्रार्थना की कि हमको ५० हजार टन गेहूँ चाहिए। वह बहुत मिन्नत करने के बाद जैसे-तैसे दस हजार टन गेहूँ देने को तैयार हुए। वह भी कब? जब उत्तरप्रदेश ने कहा — 'अच्छा, तुम गेहूँ नहीं दोगे तो हम आपको शक्कर और शराब नहीं देंगे।' यह है अपनी एकात्मता का निदर्शन? अभी कुछ दिनों पूर्व की बात है। एक वृत्त-पत्र में छपा था कि महाराष्ट्र में मुबई के बदरगाह पर अमरीका का गेहूँ आना तो सरल है, परतु वहाँ से मध्यप्रदेश में लाना अधिक कठिन है। यह है अपनी एकात्मता का प्रत्यक्ष प्रमाण।

इस प्रकार पिछले वर्षो में बडे-बडे लोगों ने राष्ट्रीय एकात्मता जैसे प्रचड नाम लेकर जो काम किया है, उसके ये फल अपने सामने हैं। इसका अर्थ यही है कि केवल यह कहने भर से कि एक-दूसरे के साथ मिलकर चलो, एकात्मता उत्पन्न नहीं होती। बडी औद्योगिक प्रगति, बडे-बडे

कारखाने खड़े कर देने से भी एकात्मता निर्माण नहीं होती। कोई एक दल कुछ समय के लिए सपूर्ण देशभर में शासन सँभाले, इससे भी एकात्मता उत्पन्न नहीं होगी।

एकात्मता तो मातृभूमि की अखडता, अभगता, उसकी भक्ति, उसके साथ अपना जो माता-पुत्र का नाता है, उस नाते को पहचानने और उस नाते के कारण कश्मीर से कन्याकुमारी तक हम सब लोग एक परिवार के हैं, एक ही रक्त अपने नसों में बहता है, अपने महापुरुषों की मालिका सामने रखकर, उनकी पूजा करते हुए अपने भविष्य के सबध में एक ही आकाक्षा लेकर प्रेरणा प्राप्त करने से होती है। इस प्रकार की अनुभूति से और प्राचीन काल से अपना एक राष्ट्रजीवन है, इस साक्षात्कार के ज्ञान से, एकात्मता उत्पन्न होती है। ऐसे लोगों का ही एक राष्ट्र-जीवन बनता है। उसके लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

वह भी तब, जब शतकानुशतक तक ऐसी भावना बनी रहे। तब जाकर समाज उसमें गूँथा जाता है और तभी उनका राष्ट्र-जीवन बनता है। प्राचीनकाल से भारत की पवित्र भूमि के पुत्र के नाते अपना यह हिंदू-समाज अतर्बाह्य एकात्मता से एक-दूसरे के साथ सुसबद्ध राष्ट्र के रूप में उपस्थित है। इस प्रकार की सुस्पष्ट जानकारी और उस सत्य का प्रत्यक्ष में साक्षात्कार हृदय में किए बिना इस राष्ट्र की एकात्मता का बोध होने की सभावना नहीं है। और उस एकात्मता का बोध न हुआ तो चारों ओर से सकटग्रस्त अपने जीवन में सकटों से मुक्ति पाकर स्वाभिमानयुक्त, सम्मान-सपन्न, अपने पराक्रम के कारण समृद्धि से भरा हुआ जीवन प्राप्त होना असभव है।

卐 卐 卐

शस्त्रपूजन, १९६५

यह बात तो सब लोग जानते हैं कि अपनी इस पवित्र भूमि में इसके पुत्ररूप में अपना यह हिंदू-समाज रहता आया है, जिसका इतिहास पता नहीं, कितना पुराना है। यहाँ पर इसकी जीवन-प्रणाली का विकास हुआ है, जिसका लक्ष्य धर्म व सस्कृति का विकास करना है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस समाज के सभी व्यक्ति, छोटे-छोटे व्यक्ति-समुदाय तथा समाजों के हित-सबध एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। उनको

अलग-अलग करने का प्रयत्न सदैव विनाशकारी सिद्ध हुआ है।

भविष्यकाल में अपने राष्ट्र के, समाज के सामने कौन सी आकाक्षा है— इसका उद्घोष अति प्राचीनकाल से अपने पूर्वजों ने कर रखा है। वह यह कि समग्र ससार में केवल मानव ही नहीं, अन्यान्य प्राणी भी सुख-शाति व परस्पर स्नेह से रहें, कोई किसी को कष्ट न दे। समस्त ससार में इस प्रकार की उत्तम व्यवस्था निर्माण करने का जीवन-लक्ष्य अपने सामने रखकर हिदू-समाज आगे बढते आया हे।

पिछली कुछ शताब्दियों से पश्चिमी देशों में राष्ट्र-जीवन का उदय हुआ। राष्ट्र-जीवन क्या है? इसका विश्लेषण करने का प्रयत्न वहाँ के विद्वानों ने किया है। अत्यत प्रदीर्घ ऐसे बौद्धिक प्रयत्न के उपरात वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक मातृभूमि, विशिष्ट भूप्रदेश, उसके प्रति नितात श्रद्धा रखकर अपने को उसका पुत्र कहकर उसमें गोरव का अनुभव करनेवाला मनुष्य-समुदाय ओर उसकी अतर्बाह्य एकरूपता जहाँ देखने को मिले, उसे 'राष्ट्र' मानना चाहिए।

इसके भी कई शताब्दियों पूर्व अपने मनीषियों ने इसका विचार किया था। जब ससार के 'प्रगतिशील' कहलानेवाले लोग साधारण जगली जीवन जी रहे थे, उसके बहुत पूर्व ऐसा एक सभ्य, सुसस्कृत, विकसित तथा वैभवसपन्न राष्ट्र-जीवन अपने यहाँ था। इतिहास अपने को यह भी बताता है कि एक समय अत्युच्च वैभव की स्थिति रही। वह स्थिति बहुत काल टिकी भी, परतु आज नहीं है।

अपनी आज की स्थिति देखकर कई लोग — इसमें कौन-कौन सी बुराईयाँ हैं, उन्हें खोजकर दूर करने का प्रयत्न करते हें। कोई विद्या की, कोई व्यायाम की, कोई सपत्ति के असमान वितरण आदि अन्यान्य प्रकार की त्रुटियों को देखकर, उनको दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। कुछ ने परकीय राज्य को यहाँ से हटाना, यही उद्देश्य अपने सामने रखा था। अब भी न्यूनताएँ दूर करने के विविध प्रकार के प्रयत्न ईमानदारी से चल रहे हैं।

सघ-निर्माण के पहले सघ-निर्माता के ध्यान में आया कि एक अन्य लेकिन महत्त्वपूर्ण कडी विचार करने लायक है। वह यह कि 'परकीय राज्य अपने यहाँ हुआ ही क्यों?' वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आत्मविस्मरण होने के परिणामस्वरूप अपने यहाँ पर जो एक भूमि, एक समाज, एक राष्ट्र,

एक सार्वभौम सत्ता रहनी चाहिए, उसके स्थान पर अनेक छोटे-बडे राजा और राज्य उत्पन्न हुए। उनके आपस में लड़ाई-झगडे हुए और उसमें से शक्ति का क्षय होने के कारण परकीय आक्रमणकारी को रोकने के लिए अपने पास सामर्थ्य बचा ही नहीं। इसलिए परकीय लोग यहाँ पर अपना आसन जमा सके। यद्यपि आज दिखनेवाली अनेक प्रकार की त्रुटियाँ अपने सामने हैं, परंतु उसके लिए मूल कारण परकीय सत्ता न होकर अपना आत्मविस्मरण व असंगठित जीवन है, जिसके कारण अपनी शक्ति का क्षय हुआ और दुर्बलता निर्माण हुई। हमें अपने राष्ट्र-जीवन का अभ्युदय करना है, संसार में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करना है तो उसके लिए इस विस्मृति को दूर कर, फिर से एक बार सुसंगठित शक्ति बनकर खडा होना होगा। इस भूमि का पुत्र होने के नाते अपना यह सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य भी है।

विचार की जो एक कडी बची थी, उसे समझकर आत्मविस्मृति को दूर करने के लिए प्रत्येक के हृदय में अपनी मातृभूमि का बोध जगाने का आवश्यक काम संघ-निर्माता ने अपने सामने रखा। अपने समाज के संगठन कार्य के लिए शक्तिसंचय के कार्य के लिए ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जन्म हुआ है।

हम विचार करेंगे तो अपने को दिखाई देगा कि किसी समय अति दूर-दूर तक फैले हुए अपने भारत का एक-एक अंग नोच-नोचकर शत्रुओं ने हमसे अलग कर दिया। अभी-अभी २० वर्ष पहले अपनी पूर्व और पश्चिम दिशा में शत्रु राज्य का निर्माण हुआ। इस पर भी कोई-कोई कहते हैं कि 'भाई, जाने दो। शत्रु ने अपना थोडा-बहुत प्रदेश ले लिया, तो क्या बडी बात है। वहाँ पर तो घास भी नहीं उगती थी।' कोइ कहता है कि 'वहाँ तो मरुस्थल है, ऐसी जगह शत्रु के पास गई तो बिगडा क्या?'

अपनी मातृभूमि के संबध में, उसके किसी अंग के संबध में इस प्रकार की घृणा, इस प्रकार की तिरस्कार की भावना होने को मातृभक्ति का लक्षण तो नहीं कहा जा सकता।

राजनैतिक संस्थाओं के नेता ऐसा बोलते हैं कि 'कश्मीर को लेकर हम लोग क्यों लडते हैं? जैसे हैदराबाद में हिंदू बहुसंख्य थे, इसलिए अपने को यह युक्तियुक्त लगा कि हैदराबाद भारत में रहे। जूनागढ में हिंदू बहुसंख्य थे, इसलिए उसको भी भारत में शामिल करना हमें युक्तियुक्त लगा, वैसे ही कश्मीर में मुसलमान बहुसंख्य हैं तब उसे मुसलमानों के

राज्य, अर्थात् पाकिस्तान में जाने देने का विचार हम लोग क्यों नहीं करते?'

इस प्रकार का विचार करने का साहस जिन लोगों को होता है, क्या वे मातृभूमि के भक्त कहलाने के पात्र हैं? वास्तव में तो उनका विचार ही युक्तियुक्त नहीं है। जैसे हैदराबाद और जूनागढ की जनता ने भारत में रहने की इच्छा व्यक्त की थी, वैसे ही कश्मीर की जनता ने भी सर्वमत से निर्णय करके कहा था कि हम भारत के साथ रहेंगे। समस्त कश्मीरी जनता की प्रतिनिधि बनी नेशनल कार्फ्रेस के नेताओं ने भी उस पर हस्ताक्षर किए थे। केवल वहाँ के महाराजा ने ही भारत के साथ अपना राज्य जोडने के कागज पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। इन दोनों की तुलना कश्मीर के साथ कैसे कर सकते हैं, यह समझ में नहीं आता?

विचार करने की बात तो यह है कि वह अपनी मातृभूमि का अग है कि नहीं। फिर वहॉ हिदू अधिक हैं या मुसलमान, यह विचारणीय प्रश्न ही नहीं है। अब यदि वह अपना अग है तो उसकी रक्षा करनी ही चाहिए। आज किसी कारण से वहॉ मुसलमानों की सख्या अधिक होगी, उससे क्या होता है? कल हिंदुस्थान के अन्य किसी स्थान पर मुसलमान अथवा ईसाई बहुसख्या में रहे अथवा हो गए, तब क्या इसी आधार पर वह भाग उन्हें दे दिया जाएगा? अपनी मातृभूमि का एक अभिन्न अग होने के कारण मन में ऐसी बात कैसे पैदा हो सकती है कि वह हमसे भिन्न है, अब हमारा अग नहीं रहा?

यदि मातृभूमि के प्रति उत्कट भक्ति न रहे तो अपने अदर उसके प्रति पुत्रत्व का अभिमान कैसे रहेगा? यदि पुत्रत्व का अभिमान नहीं रहा तो हम एक माता के पुत्र के रूप में एक परिवार हैं, इस प्रकार की एकात्मता की धारणा कैसे रहेगी? आज इस प्रकार की धारणा का अभाव होने के कारण कोई भाषा के लिए, कोई पथ के लिए, तो कोई जाति के लिए लडते हैं। यह सब देखने के उपरात कहना पडता हे कि हम अपनी मातृभूमि के पुत्र हैं, इस बारे में बहुत अधिक आत्मविस्मरण है।

हिदू-समाज से बना हुआ प्राचीन काल से विद्यमान राष्ट्र हे— इसलिए इसे हिदू-राष्ट्र कहना चाहिए। यह हिन्दू-राष्ट्र है, यह ऐतिहासिक सत्य है, फिर भी ऐसा कहना एक प्रकार से त्याज्य तथा हेय हो गया है। ऐसी बात यदि किसी ने कही तो लोग कहते हैं— 'कितनी

दी। ऐसा करने वाले बडे साप्रदायिक हैं।' याने हजार-बारह सौ वर्ष पहले अपने पराभव के लिए कारणीभूत हुआ आत्मविस्मरण आज भी विद्यमान है। इस वादातीत सत्य को छोडकर हम विजयी हो सकेंगे क्या?

स्वतत्र भारत का घोष-वाक्य तय किया गया है— 'सत्यमेव जयते'। लेकिन अपने जीवन का जो वास्तविक सत्य है, उस राष्ट्र को अपने अत करण से हटाकर, उसके स्थान पर कोई गलत-सलत धारणा मन में लेकर चलेंगे, अथवा यह सत्य नहीं है— इस विचार का आश्रय लेकर चलेंगे, तब 'सत्यमेव जयते' बोलने का क्या अर्थ है। यह घोष-वाक्य अपनी कोई सहायता कर सकेगा क्या?

ससार की दृष्टि से एक महान लक्ष्य को अपने जीवन में पूर्ण करने का विचार लेकर चलने व उसके विकास के सबध में प्रयत्नशील होने को सकुचितता नहीं कहते। यदि कोई मनुष्य व्यायाम कर अपने शरीर को बलवान बनाता है, अध्ययन कर बुद्धि को सब प्रकार से विकसित करते हुए उसका राष्ट्र के विकास के लिए उपयोग करता है, तो उसे 'स्वार्थ' नहीं कह सकते। उसी प्रकार राष्ट्रपुरुष को सुदृढ, सबल, शुद्ध कर सर्वत सक्षम बनाकर ससार की प्रगति में योगदान करने की पात्रता उत्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील होने को भी सकुचितता नहीं कहा जा सकता। यदि कोई कहता है तो उसे अपनी विचारशक्ति की जाँच-पडताल कर, उसे दुरुस्त करना चाहिए। अतएव इस दृष्टि से सुस्पष्ट कल्पना लेकर चलने की आवश्यकता है।

यह भी विचार करें कि जब-जब किसी समाज या राष्ट्र पर सकट आते हैं, उस समय कौन-सी प्रेरणा काम करती है? यदि कोई कहे कि हम तो आधुनिक काल के नारे ही लगाएँगे भले ही लगाएँ, परतु उससे कोई लाभ नहीं होगा। पिछले महायुद्ध के समय अनुभव में आया था, जिसका स्टालिन के जीवन-चरित्र में भी उल्लेख है, कि जब रूस पर जर्मनी ने अपनी भीषण सहारक शक्ति से आक्रमण किया, तब रूसी सेनाएँ पराभूत हो पीछे हटने लगीं थीं। तब जागतिक साम्यवाद का नारा बुलद करते हुए युद्ध के लिए आह्वान किया गया था, परतु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। किसी प्रकार की चेतना लोगों के अदर नहीं जगी। इधर जर्मन सेना आगे बढती ही जा रही थी। रूसी जीवन का सर्वेसर्वा मार्शल स्टालिन विवेकी व कर्तृत्वसपन्न मनुष्य था। उसने विचार किया तब उसके ध्यान में

आया कि अपनी राष्ट्रीय परपराओं का आह्वान किए बिना इस समय अपना समाज सकट का सामना करने खडा नहीं होगा। इसलिए उसने 'पितृभूमि' का नारा लगाया। जनता का आह्वान करते हुए उसने कहा 'रूस हमारी पितृभूमि है, इसके लिए खडे हो जाओ, इसके चप्पे-चप्पे की, कण-कण की हमें रक्षा करनी है। अपनी इस भूमि से शत्रु को खदेडना है। जो आगे बढने का प्रयास करेगा, उसकी कब्र यहीं पर बनानी है।'

साम्यवाद में मातृभूमि, पितृभूमि आदि के लिए स्थान तो है नहीं, फिर भी उसने प्राचीन काल से चलती आई अपनी राष्ट्र-परपरा का उल्लेख किया। अपनी सेना से महारानी कैथराइन व सम्राट पीटर के नाम का उद्घोष करवाया। उस समय सारे गिरजाघर, जो बद कर रखे थे, उन्हें खुलवाया और अर्चना करने के लिए लोगों को बुलवाया। गाँव-गाँव और घर-घर में नियमपूर्वक विजय के लिए प्रार्थना प्रारभ करवाई। राष्ट्र की परपरा का अभिमान, उसके प्रति प्रखर भक्ति का आह्वान कर रूस के लोगों को युद्ध के लिए प्रवृत्त किया और जर्मनी की आगे बढती सेना को परास्त कर विजय दिलवाई। आह्वान राष्ट्र की परपरा का ही विजयी हुआ, अतरराष्ट्रीय साम्यवाद का कोई असर नहीं हुआ था। उसके कारण विजय तो दूर, रूस का रक्षण करना भी कठिन हो गया था।

अब जरूरत पडने पर हमारे यहाँ कहें कि 'चलो भाई, प्रजातत्र के लिए युद्ध करो।' कौन जानता है प्रजातत्र को? कितने लोग समझते हैं प्रजातत्र को? प्रजातत्र बडा जटिल विषय है, उसके लिए अत करण की बडी श्रेष्ठ उदारता चाहिए, अन्यथा प्रजातत्र नहीं रह सकता। कोई अपने विरोध में बोले और अपने अदर कोई प्रक्षोभ उत्पन्न न होने देते हुए उसका बोलना समझने का ईमानदारी से प्रयत्न करना, उसे बोलने से तीसरा कोई रोके नहीं, इसलिए उसके बोलने के अधिकार की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध रहना। जहाँ अत करण की इतनी उदारता प्रत्येक मनुष्य में रहेगी, वहाँ प्रजातत्र चल सकता है। ऐसा अपने यहाँ है क्या? छोटी-छोटी बात पर तो लोग उत्तेजित हो जाते हैं। अब जहाँ प्रजातत्र की समझ और उसके अनुसार चलने की क्षमता ही न हो, वहाँ उसकी रक्षा के लिए कौन खडा होगा।

इसी प्रकार अपने यहाँ धर्मनिरपेक्षता का नारा लगाया जाता है। कहा जाता है कि हम इसकी रक्षा के लिए लडें। वास्तव में तो धर्मनिरपेक्षता

किसी राष्ट्र का गुण नहीं है। यह तो अनेक प्रकार की अभावात्मक बातों का सम्मुचय मात्र है। किसी धर्म को न मानना 'धर्मनिरपेक्षता' कहा जाता है, अर्थात् न मानने के गुण को 'धर्मनिरपेक्षता' कहते हैं। 'अभावात्मक विचार माने धर्मनिरपेक्षता'। अभाव से किसी को प्रेरणा मिल सकेगी क्या? कम्युनिस्टों को भी धर्म का आह्वान करना पड़ा था, चर्च खुलवाकर प्रार्थनाएँ करनी पड़ी थीं, क्योंकि उसमें जीवन का भाव है।

समाज को प्रेरणा देनेवाली एक ही बात है, वह याने यह मेरी मातृभूमि। अति प्राचीनकाल से, परपरा से रहता आया मेरा समाज, इसकी सुख-समृद्धि, वैभव, स्वतत्र सार्वभौम सत्ता प्रस्थापित कर समग्र सकटों का निवारण करते हुए विजयशाली रूप में खड़ा करूँगा, यह एक ही आह्वान प्रत्येक व्यक्ति के अतकरण को पुलकित करनेवाला है।

इसके लिए दिन-प्रतिदिन एकत्र होकर मातृभूमि का चितन करें, उसकी वदना के रूप में एक स्वर व एक हृदय से उच्चारण करें और अनेकविध कार्यक्रम भी इस प्रकार से करें कि जिसके कारण पौरुष की, आत्मनिर्भरता की, पराक्रम इत्यादि की श्रेष्ठ गुणसपदा अपने जीवन में प्रबल सस्कार के रूप में प्रस्थापित होकर वास्तविक रीति से एक-दूसरे के साथ अपने मन, बुद्धि और शरीर की शक्तियों को एकसूत्र में गूँथकर आपस में मेल करते हुए उनका उपयोग करने की क्षमता, तत्परता, पात्रता अपने अदर आ सके।

विजयादशमी, १९६५

भारत के लबे इतिहास पर दृष्टिपात करने से हमें यह बात स्पष्ट दिखाई देगी कि १५ अगस्त १९४७ को अपनी पवित्र माता का अग-भग देश की सबसे बडी पराजय थी। महाराणा प्रताप छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविद सिह, महाराजा छत्रसाल आदि वीर पुरुषों ने अपनी देशभक्ति, वीरता और कार्यकुशलता के बल पर भारत में इस्लामी राज्य की जडें जमने नहीं दीं। अग्रेजी सत्ता को भी उखाड फेंकने के लिए देश में सन् १८५७ से १९४७ तक सतत सघर्ष होता रहा। परतु अग्रेजों की कुटिल नीति के आगे हमारे नेतागण परास्त हो गए और हमने स्वय होकर अपनी छाती पर पाकिस्तानी राज्य का शूल गाड लिया।

आक्रमणकारी मुसलमान क्या इतनी बडी सख्या में आए थे कि हमें पराजित कर सकें? उनकी सख्या तो बहुत कम थी। उन लोगों के दवाव में आकर जिन भीरु लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया है, उन सामर्थ्यहीन, पौरुपहीन, दुर्वल, स्वार्थी एव भीरु पूर्वजों के वशज आज इस्लामी राज्य को लेकर खडे हैं। लेकिन धैर्यशाली और साहसी पूर्वजों के हमारे जैसे वशजों ने उन भीरु लोगों से डरकर उन्हें अवाधित राज्य खडा करने दिया। यह कितनी लज्जा की वात है। वे भीरु होकर भी सगठित थे, इसलिए जीते और हम वीरों के वशज असगठित रहने के कारण हार गए। उस पराभूत मनोवृत्ति को हमने अभी भी कायम रखा है। यह हमारे लिए लज्जास्पद वात है।

इस वर्ष चित्र कुछ वदला है। हमारे नेताओं ने सहनशीलता की 'अति' को समाप्त कर कुछ दृढता दिखाई, जिसके परिणामस्वरूप हमें इस वर्ष आनद देने वाला अनुभव प्राप्त हुआ है।

सन् १९६२ में चीन के आक्रमण के समय हमारे आत्मसम्मान को ठेस पहुँचानेवाली पराजय का सामना करना पडा था, परतु इस वार 'अजेय' कहे जानेवाले विदेशी शस्त्र भी जब हमारे द्वारा नष्ट किए जाने लगे तो विदेशियों को आश्चर्य हुआ। उन्हें यह चमत्कार लगा। विदेशियों ने पाकिस्तान को शस्त्र तो दिए, परतु उन शस्त्रों के पीछे खडे मनुष्य का विचार नहीं किया। शस्त्र का उपयोग करनेवाले व्यक्ति में उनका प्रयोग करने का साहस व पराक्रम चाहिए।

हमारी सेना ने प्राणों की वाजी लगाकर कार्य किया। वीर सैनिकों की मृत्यु का हमें दु ख नहीं है, उन्होंने शत्रु का धैर्य के साथ सामना कर विजय पाई उसपर हमें गर्व है।

सीमा के रक्षार्थ अपनी भूमि पर रहने से ही उसकी रक्षा नहीं होती बल्कि अपनी हानि होती है। यदि रक्षा करनी हो तो अपनी सीमा पार करके ही हो सकती है। हमने अपनी सीमा का उल्लघन कर जो विजय प्राप्त की है, वह विदेशियों को धक्का देनेवाली घटना है। परतु यह किचित मात्र है। हमारी सेना आगे वढी और लाहौर, स्यालकोट तक पहुँची, परतु हमारे प्रगतिशील नेताओं की शातिप्रियता के कारण वह रुक गई। उधर पाकिस्तान की करारी हार देखकर सयुक्त राष्ट्र सघ वीच में कूद पडा। यदि इस सघर्ष में पाकिस्तान जीतता, तो वे कभी नहीं आते। सयुक्त राष्ट्र सघ

करने दिया गया, तो सप्ताह-दो सप्ताह में वह उसे समाप्त कर देगी।

शक्ति के बारे में भ्रम नहीं रहना चाहिए। जब सामान्य व्यक्ति भी जीवन में शक्ति की आवश्यकता अनुभव करता है तो राष्ट्रजीवन में तो उसकी आवश्यकता बहुत अधिक है। हमारे ऋषि-मुनियों ने कहा है कि 'ससार में सुख भोगना हो, विजयी रहना हो तो अपनी शक्ति नित्य सिद्ध रहनी चाहिए।'

प्राचीनकाल से शक्ति की महत्ता मानी गई है। उसी के अनुरूप यह उत्सव हम मनाते हैं। अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि 'अब जब परकीय राज्य नहीं है, क्या आज हिंदू-समाज की सगठित शक्ति आवश्यक है? स्वकीय लोगों के हाथों में ही राज्य है, तब इसकी क्या आवश्यकता है?' हमें इसका भी विचार करना चाहिए।

अग्रेजों के राज्य को हटाने के लिए भिन्न-भिन्न आदोलन चलाने पड़े थे। उनके चलाने के पीछे एक ही विचार था कि अग्रेज को हटाना है। नागपुर में ही सघ के उत्सव में एक नेता ने अपने भाषण में कहा था— 'ए नवजवानों, कुछ भी करो इस अग्रेज को खदेड दो।' इस भावना के ही कारण 'अग्रेज के विरोध में जो है, वह अपना मित्र है'— यह मान कर चला गया। जर्मनी व जापान से भी मैत्री के प्रयास हुए।

वास्तव में जापान से हमारे पूर्वापार के परपरागत सबधों के कारण निकटता आती तो अधिक उचित होता। आज भी उचित होगा। किंतु अग्रेजों से विरोध के कारण उनका साथ लिया गया। उसी प्रकार देश में ईसाई व मुसलमान को भी इसी आधार पर जोडने का प्रयास हुआ। लोग यहाँ तक सोचते थे कि यदि मुसलमान हमारे साथ नहीं आएँगे तो अग्रेजों को हटाना सभव नहीं होगा। यह भावना इतनी बढ़ी कि उसे स्वराज्य से भी अधिक महत्त्व दिया गया।

मुसलमान इस देश में आक्रामक रहे हैं। सैंकडों वर्षों से उन्होंने इस देश में आक्रमण के सिवा कुछ नहीं किया। अपना राज्य स्थापित करने तक ही वे नहीं रुके, स्थापित सत्ता स्थायी बनाने के प्रयास भी किए। हिंदुओं का मनोबल तोडने के लिए उन्होंने हमारे श्रद्धास्थलों, मान-बिंदुओं पर भी आघात किए। गौहत्या की उनके धर्म में कोई व्यवस्था न रहने पर भी उसे जारी रखा। अग्रेजों के आने के बाद उनका राज्य गया, परतु उनकी अभिलाषा नहीं गई।

व कॉमन वेल्थ हमेशा हमारे विरुद्ध ही रहे हैं।

वास्तव में तो पाकिस्तान अपनी ही भूमि है, उसको स्वतत्र कराने की कामना करना अनुचित नहीं है। भारत पुन अखड हो, यह हमारी न्यायपूर्ण आकाक्षा है। इससे भिन्न विचार करते रहना हमारी जनता के सम्मान के लिए अनुचित वात है। वर्तमान स्थिति में पाक की आक्रमणकारी भावना नष्ट नहीं होगी। अमरीका, ब्रिटेन उसे शस्त्रास्त्र सामग्री देते ही रहेंगे। पाकिस्तान की आक्रमणकारी मनोवृत्ति उसी समय नष्ट होगी, जव उसका जीवन नष्ट होगा। यह मनोवृत्ति केवल कहने से नष्ट होती तो प्रभु रामचद्र को रावण का वध करने की आवश्यकता नहीं पडती।

पाकिस्तान नष्ट होने के वाद भी उसके भाई-वद जिस तरह भारत में रहते हैं, उसी तरह रहेंगे। वे ईमानदारी से रहें यही हमारी इच्छा है। वे जब तक हमसे अलग हैं, तव तक झगडे निर्माण होते रहेंगे, यह सिरदर्द बना रहेगा। झगडे कायम रहकर भारत वलशाली न वने, इसीलिए विदेशियों की यह नीति है कि पाकिस्तान का अस्तित्व कायम रहे। पाकिस्तान से सघर्ष चल रहा था, उस समय चीन ने हमें युद्ध की धमकी दी थी। उसकी धमकी पाक को इस सघर्ष में सहायक होने तथा दहशत उत्पन्न करने की दृष्टि से थी।

शस्त्रपूजन, १९६६

नागा पहाडियों में परिवर्तित ईसाइयों द्वारा किए गए विद्रोह को रोकने के लिए समझौते के अनेक प्रयत्न पिछले कई वर्षो से किए जा रहे हैं। इस समझौते के लिए विदेशी नागरिकों को वहॉ रहने की अनुमति दी गई है। यदि भ्रमवश कुछ लोगों में विद्रोह की भावना जाग उठी हो तो भी विदेशी व्यक्ति को वहॉ मध्यस्थ के रूप में रखा जाना मेरी समझ में नहीं आता। वह भी ऐसा विदेशी, जिसने अपने घर में विद्रोही नेता को प्रश्रय दिया हो। उससे वात भी कैसे की जाती है यह समझ से परे है।

उस क्षेत्र में हमारी सेना है, परतु उसे अपना सामर्थ्य प्रकट करने की अनुमति नहीं है। कभी-कभी विद्रोहियों द्वारा सेना पर गोली भी चलाई जाती है, किंतु उसे प्रतिकार करने का अधिकार नहीं दिया गया। यह विद्रोह इतना वडा नहीं है कि वर्षानुवर्ष चलता रहे। यदि सेना को काम

करने दिया गया, तो सप्ताह-दो सप्ताह में वह उसे समाप्त कर देगी।

शक्ति के बारे में भ्रम नहीं रहना चाहिए। जब सामान्य व्यक्ति भी जीवन में शक्ति की आवश्यकता अनुभव करता है तो राष्ट्रजीवन में तो उसकी आवश्यकता बहुत अधिक है। हमारे ऋषि-मुनियों ने कहा है कि 'ससार में सुख भोगना हो, विजयी रहना हो तो अपनी शक्ति नित्य सिद्ध रहनी चाहिए।'

प्राचीनकाल से शक्ति की महत्ता मानी गई है। उसी के अनुरूप यह उत्सव हम मनाते हैं। अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि 'अब जब परकीय राज्य नहीं है, क्या आज हिंदू-समाज की सगठित शक्ति आवश्यक है? स्वकीय लोगों के हाथों में ही राज्य है, तब इसकी क्या आवश्यकता है?' हमें इसका भी विचार करना चाहिए।

अग्रेजों के राज्य को हटाने के लिए भिन्न-भिन्न आदोलन चलाने पडे थे। उनके चलाने के पीछे एक ही विचार था कि अग्रेज को हटाना है। नागपुर में ही सघ के उत्सव में एक नेता ने अपने भाषण में कहा था- 'ए नवजवानों, कुछ भी करो इस अग्रेज को खदेड दो।' इस भावना के ही कारण 'अग्रेज के विरोध में जो है, वह अपना मित्र है'- यह मान कर चला गया। जर्मनी व जापान से भी मैत्री के प्रयास हुए।

वास्तव में जापान से हमारे पूर्वापार के परपरागत सबधों के कारण निकटता आती तो अधिक उचित होता। आज भी उचित होगा। किंतु अग्रेजों से विरोध के कारण उनका साथ लिया गया। उसी प्रकार देश में ईसाई व मुसलमान को भी इसी आधार पर जोडने का प्रयास हुआ। लोग यहाँ तक सोचते थे कि यदि मुसलमान हमारे साथ नहीं आएँगे तो अग्रेजों को हटाना सभव नहीं होगा। यह भावना इतनी बढी कि उसे स्वराज्य से भी अधिक महत्त्व दिया गया।

मुसलमान इस देश में आक्रामक रहे हैं। सैंकडों वर्षों से उन्होंने इस देश में आक्रमण के सिवा कुछ नहीं किया। अपना राज्य स्थापित करने तक ही वे नहीं रुके, स्थापित सत्ता स्थायी बनाने के प्रयास भी किए। हिंदुओं का मनोबल तोडने के लिए उन्होंने हमारे श्रद्धास्थलों, मान-बिंदुओं पर भी आघात किए। गौहत्या की उनके धर्म में कोई व्यवस्था न रहने पर भी उसे जारी रखा। अग्रेजों के आने के बाद उनका राज्य गया परतु उनकी अभिलाषा नहीं गई।

उन्हें प्रसन्न करने के लिए हिंदुओं के सम्मान-बिंदुओं पर होने वाले आघात सहन करने की सिद्धता दिखाई और गोहत्या को उनका धार्मिक अधिकार माना। हमारे प्रधानमंत्री ने तो लिखकर दिया था कि यह धार्मिक अधिकार स्वराज्य मिलने पर भी कायम रहेगा।

आखिर यह राज्य किसका है? राष्ट्र याने क्या? अंग्रेजों को हटाकर किसका शासन स्थापित करना है, इस पर विचार ही नहीं हुआ। यह जो आदत पड़ी, वह इतनी बढ़ गई कि भिन्न-भिन्न समाजों को प्रसन्न करने को ही सब कुछ समझा गया और अब भी समझा जा रहा है। इस वातावरण के कारण लोगों को सत्य भावात्मक ध्येय नहीं समझाया जा रहा है। इस विचार के कारण ही स्वतंत्र होने पर भी स्वराज्य में 'स्व' का अभाव है। वास्तव में राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करना है, स्वाभिमानयुक्त व विजयशाली रखना है, तो प्रखर राष्ट्रभक्तिसंपन्न, निःस्वार्थ, अनुशासनबद्ध, शक्तिसंपन्न समाज का संगठन करना होगा। इसके अलावा अन्य कोई मार्ग नहीं है। यह होता न देख संघ-निर्माता ने संघ की स्थापना की है।

विजयादशमी, १९६६

गत वर्ष हम लोगों ने यह उत्सव यहाँ पर मनाया था उस समय सारे देश में एक विशिष्ट प्रकार की भावना थी। पाकिस्तान के साथ जो लड़ाई हुई थी, उसमें प्राप्त यश के कारण सबके अंतःकरण में संतोष व स्वाभिमान था। अपने स्वत्व के संबंध में आत्मविश्वास व गौरव की भावना अनुभव की थी। प्रत्येक को अनुभव हुआ कि मैं इसका एक घटक हूँ।

परंतु आनंद के साथ-साथ हृदय में चिंता भी उत्पन्न हुई थी। मैंने इसका संकेत उसी समय अनेक बार किया था कि 'युद्ध के क्षेत्र में जो यश प्राप्त हुआ था, वह अपने सैनिकों के पराक्रम के कारण हुआ है, परंतु कूटनीति, याने राजनैतिक क्षेत्र में काम करनेवाले इस यश को अपयश में परिवर्तित न कर दें।' दुर्भाग्य से वह भय आगे चल कर सत्य सिद्ध हुआ।

उन दिनों सब भेद भुलाकर आसेतु हिमाचल एक अभेद्य समाज के रूप में हम खड़े हैं — ऐसा दृश्य दिखने लगा था। जो छोटे-बड़े भेद हैं,

ऊपर उठते नहीं थे। आदोलनकारी नेताओं ने सुस्पष्ट और असदिग्ध शब्दों में घोषित किया था कि देश के सामने सकट है, इस समय हमारी कोई मॉग नहीं है। हम सब एक दूसरे के साथ कधे से कधा मिलाकर शत्रु पर विजय प्राप्त करने के सकल्प के साथ आगे बढेंगे। ऐसी बातें अपने को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में देखने को मिली थीं। परतु अपने समाज का दुर्भाग्य है कि समय-समय पर जो सद्बुद्धि जागृत होती है और उस सद्बुद्धि के कारण कुछ सद्वृत्ति निर्माण होती है, वह सामने का विशिष्ट प्रसग पूरा हो जाने या उसके कारण उत्पन्न हुई परिस्थिति मद पड जाने पर फिर से सो जाती है। चीन के आक्रमण के समय भी ऐसा ही हुआ था। यह एक प्रकार से प्राप्त यश को अपयश में परिवर्तित करने वाली स्थिति है।

कुछ गॉव महाराष्ट्र में रहें या कर्नाटक में रहें, इसको लेकर झगडा चलता है। पता नहीं, इस प्रकार का झगडा वे लोग क्यों करते हैं? अपने देश के हिस्सों पर शत्रुओं ने स्वामित्व प्रस्थापित किया, उसका लोगों को इतना दु ख नहीं रहता, जितना किसी नगर या ग्राम का इस प्रात से उस प्रात में जाने पर होता है। यह कैसी विचित्र मानसिकता है। यह देशभक्ति तो नहीं है, राष्ट्रभक्ति तो विल्कुल ही नहीं है। छोटे-छोटे क्षुद्र भावों को अपने अत करण में लेकर राष्ट्र के अदर विच्छिन्नता उत्पन्न करनेवाली अत्यत जघन्य वृत्ति है। यह वृत्ति न जाने कहॉ तक बढेगी?

आप लोगों ने सुना होगा कि एक बडे श्रेष्ठ नेता ने कहा कि 'पाकिस्तान से लडते समय जितनी बडी फोज अपने देश में खडी की थी, उससे बडी फौज हम सीमा-विवाद हल करने के लिए खडी करेंगे।' याने शत्रु से लडने के लिए तो छोटी सेना चल सकती है, मगर आपस में लडने के लिए बहुत बडी सेना चाहिए। इसको क्या कहेंगे? दुर्भाग्य से अपने देश में इन्हें भी 'देशभक्त' माना जाता है और इनका कीर्तिगान करने के लिए लोग भी खडे हो जाते हैं।

दूसरा भी एक समाचार आप लोगों को मालूम होगा। गोदावरी कृष्णा ऐसी बडी नदियॉ हैं, जो पश्चिम से शुरू होकर पूर्व महासागर में मिलती हैं। वे महाराष्ट्र और आध्र से भी गुजरती हैं। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि इनके पानी का सदुपयोग होना चाहिए, परतु मैंने ऐसा सुना है और वृत्त-पत्र में भी आया है कि कुछ नेताओं ने कहा कि नदियों पर बॉध बनाकर, उसकी नहरों का पानी यदि आध्र को देने की योजना हो,

तो यह बेहतर मानेंगे कि नदियों के पानी का प्रवाह बदलकर सारा पानी समुद्र में फेंक दिया जाए। यह है इनकी देशभक्ति का नमूना। दुर्भाग्य से ये अपने ही समाज के लोग हैं और हमारे कर्णधार बने हुए हैं।

यह सब देखकर ही मैंने भय प्रकट किया था कि युद्ध में प्राप्त यश कूटनीति के क्षेत्र में कहीं अपयश में परिवर्तित न हो जाए। यह सब भी तब हो रहा है जब सीमा पर परिस्थिति अच्छी नहीं है। इम्फाल में इधर-उधर जाकर परिस्थिति का आकलन करने का मैंने प्रयत्न किया है। वहाँ देखा कि बहुत से पाकिस्तानी घुसपैठिए अपनी सीमा में प्रवेश कर चुके हैं। बहुत लोगों ने कहा कि ज्यादा तो नहीं हैं, फिर भी दो-ढाई लाख आए हैं। उनमें से लाख-सवा लाख हमने वापस भेज दिए, अब थोडे से ही बाकी हैं। उसके लिए न्यायाधिकरण वगैरह लगाए हैं, जिससे किसी के प्रति अन्याय न हो। परतु वह इतनी मामूली बात नहीं है। काफी गभीर प्रश्न है। दूसरे दिन असम की प्रदेश सरकार का ही वक्तव्य था कि घुसपैठिए इतनी बडी सख्या में आ रहे हैं कि असम का सपूर्ण जीवन असुरक्षित हो गया है।

एक बात और देखने में आई कि पूर्व की अपनी सीमा, जो पूर्व और पश्चिम बगाल के बीच पडती है, पर पाकिस्तान ने बहुत बडी मात्रा में शस्त्रास्त्र से सुसज्जित सेना के अड्डे खडे कर लिए हैं। यह भी पता चला है कि उनका मार्गदर्शन करने के लिए चीन के अधिकारी मौजूद हैं। याने चीन और पाकिस्तान की सॉठ-गॉठ का प्रत्यक्ष प्रमाण यदि कोई देखना चाहे, तो वहॉ देखने को मिल सकता है। इसके साथ ही भूटान में जो गडबड चल रही है वह हम लोग ध्यान में लें तो यह कहना पडेगा कि भूटान और पूर्व बगाल की ओर से असम को भारत से काटने की पूर्व पीठिका चीन और पाकिस्तान मिलकर तैयार कर रहे हैं। इस सकट की ओर तो किसी का ध्यान ही नहीं है, मगर आपस में एक-दूसरे को अपना शत्रु मानकर लडने में पीछे नहीं हैं।

इसलिए अपने को बहुत अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। सतर्क इस दृष्टि से कि एकात्मता का अपना भाव स्थायी बने। किसी भी दु ख-सुख की स्थिति में वह भग्न न हो और हर परिस्थिति में हर समस्या को सुलझाने के लिए कधे से कधा मिलाकर आसेतु हिमाचल अपना समग्र समाज खडा है, इस प्रकार का चित्र सारे ससार के सामने प्रस्तुत हो। इसके लिए सतर्कता से प्रयत्न करने की आवश्यकता है क्योंकि प्रत्येक नागरिक विद्रोह करने की प्रवृत्ति लेकर चल रहा है। जरा कहीं रेलगाडी देरी से

पहुँची तो उसे लूट लिया, कहीं अनाज अच्छा नहीं मिला तो दुकान लूट ली, अनाज मिलने में एक-दो दिन का विलब हो गया तो दुकानों को आग लगा दी। विद्रोह की पूर्व सिद्धता की मनोवृत्ति चारों ओर फैलती हुई दिखाई देती है। वाहरी सकटों का तो मनुष्य मुकावला कर सकता है, परतु अदर ही अदर अपनी शक्ति इस प्रकार से छिन्न-विच्छिन्न हो जाती है, वह समाज का समग्र तेज, शौर्य और पौरुष को खोखला कर देती है। तव उसमें मामूली सकट के सामने खडे होने की भी क्षमता नहीं रह जाती।

इसका ठीक-ठीक विचार कर अपने समाज को सुव्यवस्थित वनाकर सब प्रकार की अस्थिरता को दूर करने का प्रयत्न कर, सवको एक सूत्र में परिपूर्ण राष्ट्रभक्ति के साथ अनुशासन के ढाँचे में ढाल कर, एक प्रचड शक्ति के रूप में खडा करना अपना अनिवार्य कर्तव्य है। उस कर्तव्य को करने के लिए ही अपना राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ प्रयत्नशील है। आप सब वधुओं के प्रेम व सहयोग से वह अपने कार्य में परिपूर्ण सफलता प्राप्त किए विना नहीं रहेगा और वह भी वहुत दीर्घकाल में नहीं तो अल्पकाल मे ही अपेक्षित यश हमें देखने को मिलेगा।

शस्त्रपूजन, १९६७

'भूलना' एक स्वभाव है, किंतु हिंदू-समाज में इसने विकृति का रूप धारण कर लिया है। हम कितने विस्मरणशील हो गए हैं, इसका उदाहरण है अपने देश के विभाजन का। उस समय लोगों को जितना दु ख, जितनी व्यथा हुई थी, अब दिखाई नहीं देती। अपने कुछ बधु पश्चिम पजाव के मूल निवासी हैं, उनसे उनका मूलस्थान पूछो तो पाकिस्तान वताते हैं, जबकि उनके जन्म के समय पाकिस्तान था भी नहीं, किंतु उन्होंने उसे पाकिस्तान मान लिया है।

उत्तरप्रदेश व कुछ अन्य राज्यों में उर्दू को हिंदी की वरावरी का स्थान देने की मॉग की जा रही है। इसके लिए आदोलन किए जा रहे हैं। विस्मरणशील लोग इसका समर्थन करते हैं। देश के विभाजन की माँग उर्दू से ही प्रारभ हुई थी। फिर पृथक अधिकारों की मॉग और पृथक राज्य की मॉग हुई। उर्दू की मॉग का समर्थन कर एक प्रकार से दूसरे विभाजन की नींव डाल रहे हैं।

विजयादशमी, १९६७

कभी-कभी मन में विचार आता है कि हम जिस सगठित सामर्थ्यपूर्ण जीवन की वात करते हैं, उसकी आवश्यकता है क्या? कहना पडेगा कि नितात आवश्यकता है। सीमा पर शत्रु खडा है, जो प्रहार कर सकता है। छोटे-वडे प्रयास उसने किए भी हैं। चीन ने सिक्किम पर गोलावारी की है, उसे भावी दुर्घटना की पूर्व सूचना मानना चाहिए। कश्मीर में जो कृत्रिम सीमा वनी है, उस पर भी अशाति है। आगे चलकर यह उग्र रूप धारण करेगी। इन दोनों शक्तियों के समर्थक अपने देश में विद्यमान हैं। जो साम्यवादी हैं, वे चीन के समर्थक हैं और उसके आगमन के लिए लालायित हैं।

पूर्व वगाल से असम व आसपास के अन्य प्रदेशों में वडी सख्या में घुसपैठ हो रही है। उन्हें अविलव देश के वाहर निकालना चाहिए, यह विचार हमारे सत्ताधारियों के मन में आता नहीं है, ऐसी वात नहीं। एक वार मैं एक शासकीय अधिकारी से मिला, तव उनसे पूछा– 'निकालना चाहते हो तो निकालते क्यों नहीं?'

इस पर उन्होंने कहा कि 'उन्हें पहचानना वडा मुश्किल है। अपने देश के मुसलमान उन्हें अपना रिश्तेदार बताकर छिपा देते हैं। इस कारण यह काम वडा कठिन है।' शत्रु को आश्रय देनेवाला भी शत्रु ही है। अत 'इद्राय स्वाहा तक्षकाय स्वाहा' मानकर दोनों को निकाल देना चाहिए।

ऐसा अतर्वाह्य सकट किसी भी समय उग्ररूप धारण कर सकता है। अपना समाज यदि शक्तिशाली रहा तो वह उस सकट का सफलतापूर्वक सामना कर सकेगा। किंतु वास्तविकता यह है कि मनुष्य स्वार्थ में डूबा हुआ है। यह केवल जाति-उपजाति, गुट, दल, भाषा तक ही सीमित रह जाता है। जव स्वार्थ अधिक हो जाता है, तब शील और चरित्र्य नष्ट हो जाता है और वह आसानी से शत्रु के हाथ का खिलौना बन जाता है। स्वार्थ के लिए तस्करी करने, गोहत्या कर गोमास विदेशों में भेजने तक में उसे लज्जा नहीं आती। कुछ दिन पूर्व एक समाचार प्रकाशित हुआ था कि वडे-वडे उच्चपदस्थ अधिकारियों ने अपनी सेना के वारे में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ शत्रु के हाथ वेच दीं। ऐसी अपनी आतरिक स्थिति है।

पुराने जाति-पथ तो थे ही, अब नए भी बनते जा रहे हैं। हर राजनीतिक दल, एक नया पथ खडा कर दूसरे को कुचलने की कामना रखता है। सरकारी कर्मचारियों की भी एक अलग जाति बनी हुई है। बाकी लोगों की उन्हें कोई चिंता नहीं रहती।

पूर्वकाल की जातियाँ परस्पर पूरक थीं। उनमें भेद नहीं था, मगर इन नई जातियों में परस्पर पूरकता तो है ही नहीं, इसके विपरीत दूसरे के लिए अनिष्ट भाव रखते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के आंदोलन होते हैं। उसमें अविचार के कारण अपरिमित संपत्ति नष्ट की जाती है। आंदोलनों के कारण उत्पादन घटता है। फिर भी वेतन वृद्धि होती रहती है। जनता पर तिहरी मार पडती है। आंदोलन-हडताल के कारण असुविधा होती है, उत्पादन घटने के कारण वस्तुओं के भाव बढते है और वेतनवृद्धि के कारण कर का बोझ बढता है— यह सब उसे ही सहना पडता है। उत्पीडित-दु खी आदमी का रक्त चूसकर अपना स्वार्थसिद्ध करने को 'जागृति' कहा जा रहा है।

ऐसी ही एक जाति छात्रों की है। वह तो ऐसा समझती है कि बाकी समाज से अपना कोई लेना-देना नहीं है। तोड-फोड करना वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। परंतु हमारे प्रधानमंत्री का कहना है कि उनके मन की यह उमंग, शक्ति की परिचायक है। लेकिन यह भी सोचना चाहिए कि छात्रों ने आंदोलन करके नुकसान किसका किया? वह तो उनका अपना ही होता है। वे पढाई-लिखाई कर ज्ञान के द्वारा योग्यता प्राप्त करने का अवसर खो देते हैं। ऐसे दुर्बल कंधे राष्ट्र का बोझ कैसे सँभाल सकेंगे? परीक्षा में तो उत्तीर्ण हो जाते हैं। उसके कई मार्ग हैं, पर उससे ज्ञान तो नहीं बढता।

एक विदेशी परीक्षक ने एक बार मुझसे कहा कि 'आपके यहाँ डॉक्टरेट की उपाधि बडी सस्ती है। मैं जिसे ग्रेज्युएट होने के योग्य भी नहीं मानता, उसे यहाँ के लोगों के आग्रह के कारण डॉक्टरेट देनी पडेगी।'

ऐसी अव्यवस्था से कालांतर में अराजकता उत्पन्न होती है। जो शत्रु को अनुकूल अवसर प्रदान करती है।

यह शक्ति जो आज दिखाई देती है, वह तो बीमार मनुष्य को हुए सन्निपात के समान है। कोई पूछे कि क्या राष्ट्रभक्ति का भाव है, तो उत्तर 'नहीं' में देना होगा। जागतिक भाव कहें, तो जो परिश्रम कर

अपना पेट तक नहीं भर सकता, वह दुनिया की बात क्या करेगा? यही स्थिति पढे-लिखे तरुणों की भी है। न राष्ट्रभक्ति रही, न धर्मभक्ति, न नीतिमत्ता, न एकात्मता। नीति-अनीति से परे निम्नकोटि का पशु-जीवन आ गया है।

एक विराट राष्ट्र-पुरुष के हम अवयव हैं, इस नाते अनुशासित व सगठित रूप में जुटें, इसमें किसी प्रकार के सदेह की गुजाइश नहीं है। मगर इसके लिए हमें बहुत परिश्रम करना पडेगा।

अपनी त्यागमय परपरा के अनुसार यदि किसी युवक से सघकार्य के लिए प्रचारक बनने को कहा जाए, तो वह साहस नहीं करता। यदि वह साहस करता भी है तो घर के लोग रोकते हैं, जबकि विदेशों में जो युवक अन्य स्थानों के वनवासी व बीहड क्षेत्र में काम करने के लिए निकलते हैं, तब उनके परिवारवाले उन्हें समारोहपूर्वक विदा करते हैं।

शस्त्रपूजन, १९६८

लोग पूछते हैं कि 'अपना यह कार्य कब तक करना होगा? कब पूरा होगा?' इस सदर्भ में मुझे प्रसिद्ध कवि व लेखक गोल्ड स्मिथ का कथन याद आता है। अन्य विद्वानों से चर्चा करते समय उन्होंने एक प्रश्न पूछा- 'पृथ्वी से चद्रमा तक एक के ऊपर एक मछली रखनी हो, तो कितनी मछलियाँ लगेंगी?' उनका प्रश्न सुनकर विद्वान लोग भौंचक्के रह गए। अतत प्रश्न का उत्तर गोल्डस्मिथ को ही देने के लिए कहा गया तो उसने कहा 'इसमें कठिन क्या है? पूरी लबाई की मिल गई तो एक ही मछली पर्याप्त होगी।' अपने काम का भी ऐसा ही है।

कई करोड की जनसख्या का विशाल हिंदू-समाज, कई कारणों से छिन्न-विच्छिन्न होने से शक्तिहीन हो गया है। स्वय के दुर्बल रहने का अर्थ है पडोसी को आक्रमण करने का अवसर देना। इस दुर्बलता के ही कारण हम परकीय आक्रमणों के भक्ष्य बने थे। शक्तिहीन होने पर शत्रु तो आक्रमण करता ही है, मित्र कहलाने वाले रूस जैसे देश भी अपना अपमान करते हैं। आत्मनिर्भरता न होने के कारण हमारे साथ उद्दडता का व्यवहार होता है। वहीं तटस्थता की बातें करते हुए भी हम रूस के आश्रित होते जा रहे हैं। इस कारण से अमेरिका व इग्लैंड भी हमारी ओर आशकित

नजरों से देखते हैं।

हमने अपने राष्ट्र-जीवन के चैतन्यरूप हिंदू-समाज की जो उपेक्षा की है, उसकी सुप्त शक्ति को जागृत करने का प्रयत्न नहीं किया, सब उसी का दुष्परिणाम है। दुर्बलता के कारण ही आतरिक हिसा, पृथकता आदि की भावना निर्माण होती है। उसके हम लोग भुक्तभोगी हैं। लेकिन इन समस्याओं के प्रति केवल चिता प्रकट करने या रोते रहने से काम नहीं होगा? समाज में स्वत्व और एकात्मता का जागरण कर पीडितों की सेवा करने के लिए यदि हम लोग आगे आएँ, तो दूसरों को अपने समाज-बधुओं की सहायता करने का बहाना नहीं मिल सकेगा। समाज-सगठन द्वारा समस्याओं के निराकरण का अपना यह मार्ग लबा भले ही लगे, परतु इसके अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं है।

विजयादशमी १९६८

जब अग्रेज यहाँ राज्य करते थे, उन्होंने स्वातत्र्यप्रिय लोगों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किए। सभ्य समाज के लिए कलकभूत दमन अपने लोगों का किया गया। उसका इतिहास हम लोगों को भली प्रकार से ज्ञात है। उस समय किसी कवि ने लिखा था– 'देखो कैसी स्थिति है, परवशता की रस्सी अपने गले में बधी हुई है, हम घर के मालिक हैं और हमको ही ये लोग चोर कहते हैं। दुर्भाग्य से आज भी वैसी ही स्थिति है, बहुत बदली नहीं है।

अग्रेजों की विचार-प्रणाली से चलनेवाले लोग कहते हैं– 'अरे हिंदू, यह तो पिछडा हुआ है।' हिंदू कहना प्रतिगामिता का, सकीर्ण मनोवृत्ति का, साप्रदायिक होने का लक्षण माना जाता है। अपने को हिंदू कहने या मानने पर यह सब सुनना पडता है। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को बदलने का प्रयत्न करना आवश्यक है।

इसलिए प्रत्येक के अत करण में यह भाव जागृत होना चाहिए कि सब जाति-पथ आदि मिलकर बनने वाला यह विशाल हिंदू-समाज मेरा परिवार है। इस परिवार में मेरे लिए कोई छोटा-बडा, कोई ऊँचा-नीचा नहीं है। सबके सुख-दु ख में सम्मिलित होकर, सबके सुख-दु ख को समझकर, सुख-वृद्धि और दु ख-निवृत्ति के लिए चाहे जितने परिश्रम करने पडें, करने

की सिद्धता अपने अदर लाते हुए, एकता का परिपोषण करते हुए, सपूर्ण समाज को अनुशासन के एक सूत्र में गूँथकर सगठित करना मेरा धर्म है। मैं इसे अनिवार्य कर्तव्य मानकर करूँगा। ऐसा निश्चय प्रत्येक अत करण में जागृत करने की आवश्यकता है।

स्वत्व का जागरण व सुव्यवस्थित समाज-जीवन खडा करना है तो एक-दो दिन के प्रवचनों अथवा बीच-बीच में कोई उत्सव कर लेने या कोई बहुत बडा सम्मेलन करने से नहीं होगा? ऐसे कार्यक्रम तो अपने देश में होते ही रहते हैं। साधु-महात्माओं के प्रवचन-कीर्तन लगातार चार-चार महीने होते हैं। यह सब होने के उपरात भी हिंदुत्व का प्रबल जागरण हुआ दिखता नहीं।

कहने का अर्थ यह है कि सब कुछ होता है। लोग सुनते भी हैं। उसमें से कुछ कथाएँ लोग स्वय बता भी सकेंगे परतु प्रत्यक्ष आचरण में उसमें से कुछ उतारते नहीं। स्वार्थ बना ही रहता है। स्वार्थ के कारण धर्म के अत्यत पवित्र श्रद्धा-स्थानों के साथ खिलवाड, अपने समाज का सब प्रकार से विनाश कर उनको दु ख पहुँचाना, समाज की एकात्मता को क्षत-विक्षत करना चलता ही रहता है। इस प्रकार के प्रवचन पुराण इत्यादि होते हैं। उनका कितना लाभ हुआ, ऐसा विचार किया, तो अपने को कहना पडेगा कि लाभ तो कुछ दिखता नहीं। अर्थात् वह सर्वथा बेकार जाता है, ऐसा मैं नहीं कहूँगा, परतु लाभ जैसा दिखना चाहिए, वैसा दिखता नहीं।

सब कुछ सुनने के पश्चात् मन के अदर विचार आते होंगे, भाव जागृत होते होंगे, हृदय पर थोडा-बहुत ही क्यों न हो, सस्कार बैठता होगा। उस सस्कार को पक्का कर, ऐसे सब व्यक्तियों का स्नेहपूर्ण जीवन निर्माण करने के लिए कोई व्यवस्था करने की आवश्यकता रहती है। पहाड की चोटी पर हुइ वर्षा का पानी बह जाता है। जो कुछ बचता भी है, वह हवा व धूप लगने पर उड जाता है। उसका कुछ लाभ नहीं हो पाता। उसी प्रकार उन आयोजनों का हश्र होता है।

सस्कार को ग्रहण और सग्रह करने के साथ-साथ सब लोग मिलकर चलें, एक शक्ति के रूप में जगत् में खडे हों। ऐसा हो सके, इसके लिए ऐसी रचना व्यवस्था व कार्य पद्धति बनाने की आवश्यकता रहती है। उसकी पूर्ति के लिए ही हम लोग अपनी शाखा चलाते हैं। अपने अत करण के सस्कारों को सग्रहीत कर अपने सपूर्ण समाज को सूत्रबद्ध शक्तिशाली

बनाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी एक अनोखी कार्य पद्धति जिसके समान फलदायी दूसरी कोई पद्धति अपने को मिलने की आशा नहीं। संघ के इस वैशिष्ट्य को समझें और समझकर दिन-प्रतिदिन के कार्य को काया-वाचा-मनसा अंतःकरणपूर्वक करें।

卐 卐 卐

शस्त्रपूजन, १९६९

अपना यह जो हिंदू-समाज है, उसमें अनेक प्रकार के भेद घर कर बैठे हैं। बहुत पुराने समय से चार वर्णों की व्यवस्था थी। उसमें जाति के भेद उत्पन्न होकर परस्पर स्पर्धा करनेवाले अनेक छोटे-छोटे गुट उत्पन्न हो गए और लोग केवल अपनी जाति का अभिमान रखने लगे। ऐसी विपरीत स्थिति उत्पन्न हो गई है।

कोई यह नहीं सोचता कि किसी भी जाति का होने पर भी वह अपने ही समाज का एक अंग है। यदि पूर्ण समाज का पोषण, रक्षण, संवर्धन करेंगे तो उसके एक अंग के नाते रहनेवाली अपनी जाति का संरक्षण पोषण, संवर्धन अपने-आप हो जाएगा। इस सरल सीधी बात का कोई विचार नहीं करता।

अपने बडे-बडे महापुरुषों ने भेद के कारण उत्पन्न होनेवाली विच्छिन्नता दूर करने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किए किंतु अपना दुर्भाग्य है कि जो भी कार्य खडा किया जाता है, वह जल्दी ही एक जाति या पंथ बन जाता है। यह अनिष्ट विचार इतनी गहराई तक पहुँचा है कि उसका उपाय केवल ऊपर-ऊपर की बातों से होने की संभावना नहीं है।

अपने समाज की जीवन-रचना एक आध्यात्मिक उद्देश्य को लेकर हुई है। उस आध्यात्मिक ध्येय को प्राप्त करने के लिए सभी मनुष्य समान मार्ग से जाने में असमर्थ होते हैं। इसीलिए भिन्न-भिन्न प्रकृति, रुचि, गुणावगुणों के लोगों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के मार्ग निर्माण करने की आवश्यकता रहती है। वास्तव में ये एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। परंतु वस्तुस्थिति क्या है?

मैंने तो यहाँ तक सुना है कि वैष्णव पंथ में कुछ मंदिर ऐसे हैं जिनमें दूसरा वैष्णव नहीं जा सकता। दोनो वैष्णव ही हैं, भगवान की एक ही मूर्ति को सामने रखकर पूजा करते हैं, सभी श्रीमद्‌भागवत को अपना

आधार-ग्रथ मानते हैं। परन्तु उपासना-पद्धति का थोडा-थोडा भेद उत्पन्न हो जाने के कारण अपने मंदिर में दूसरे वैष्णव को प्रवेश तक नहीं करने देते।

अपने यहॉं पर समाज में भेद उत्पन्न करने का कारण अस्पृश्यता भी बना है। कुछ लोग अपने को सवथा अलग मानकर रहते हैं। दूसरे के हाथ का पानी भी नहीं पीते। अपनी पवित्रता बनाए रखना अलग बात हे, पर मनुष्य होकर मनुष्य से घृणा करना कहॉं तक उचित हे? यह तो सभ्य समाज के लिए रोग है।

अपने विशाल देश में एक ही बोली चलेगी— यह आशा करना ठीक नहीं। कहा जाता है कि हर १० कोस पर बोली बदलती है। तब इतने बडे लबे-चौडे देश में अनेक बोलियॉं होना स्वाभविक ही हे। वैसे देखा जाए तो अतरग की दृष्टि से सारी भापा व बोलियॉं एक ही हैं यानी उनमें कोई भेद नहीं है। उनमें रचे गए साहित्य को देखेंगे तो सबकी विपयवस्तु एक ही हे। वही हिदू-दर्शन सबके साहित्य में वर्णित है। शब्द व वाक्य-रचना का कुछ हेरफेर मात्र होता हे। फिर भी उसे समाज के भेद का एक कारण बनाया हुआ हे। भापा के आधार पर एक-दूसरे से स्पर्धा व ईर्ष्या करने में लगे हुए हैं। राज्यों के निर्माण का उसे आधार बनाया जाता हे। ऐसे अनेक प्रकार के भेदों से अपना समाज जीवन जर्जर हो गया हे।

यह बात स्पप्ट हे कि जो समाज ऐसे भेदों से जर्जर होगा, वह शक्तिहीन रहेगा और जो समाज शक्तिहीन होगा, उसको इस ससार में अपना अस्तित्व बनाकर रखना असभव होगा। जहॉं अस्तित्व ही नहीं रहेगा, वहॉं जगत् में मान सम्मान, समृद्धि ऐश्वर्य केसे प्राप्त हो सकेगा? इसलिए यह कहना पडता है कि अपने समाज की इस भेद-जर्जर अवस्था को दूर कर, इसमें एकरसता उत्पन्न करना और समाज को सूत्रबद्ध सगठित करना अपने लिए आवश्यक है।

इन सबमें सबसे बडा सकट यह है कि स्वय को हिदू कहना पाप हो गया है। एक प्रकार से अहिदू जीवन, अहिदू विचार, अहिदुत्व का प्रभुत्व हो गया हे। बडे-बडे नेता भी कहते हैं कि 'इस देश का व्यक्ति हिदू है और हिदू का यह देश है— ऐसा कहना बडी जहरीली बात है।' यानी इस देश को अहिदू कहना, इस भूमि के साथ अपना माता-पुत्र का नाता है उसे अमान्य करना यही आज अपने जीवन की प्रगति का सार-सर्वस्व हो गया है।

फिलिस्तीनी क्षेत्र में उत्पन्न हुए सम्प्रदायों को 'सेमेटिक' बोला जाता है। वे बडे असहिष्णु हैं। दूसरे के अस्तित्व को मान्यता देने के लिए तैयार नहीं और दूसरे के अस्तित्व को नष्ट करने में ही अपनी शक्ति लगाने को वह उचित मानते हैं। ईसाई मत वहीं उत्पन्न हुआ है। अगर किसी ईसाई से पूछो कि 'भाई, यदि कोई आदमी ईसाई नहीं बना, तब उसका कोई भविष्य है कि नहीं? उसे भगवान की प्राप्ति होगी की नहीं?' वह कहेगा – नहीं होगी। उसे सृष्टि के अंत तक घोर नरक में सडना पडेगा।

आगे चलकर उसी वंश में इस्लाम का भी उदय हुआ। वह कितना असहिष्णु है, यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं, सब लोग जानते हैं। पूर्ण इतिहास ही उसकी असहिष्णुता, घोर आक्रमण और रक्तपात से भरा हुआ है। वह धर्म के सिद्धांत को विकृत कर मानव-वंश का घोर संहार करनेवाला है।

आजकल जगत् में भौतिकतावाद का बोलबाला है। समाजवाद व साम्यवाद उसके पुरस्कर्ता हैं। वह भी इसी वंश के एक यहूदी व्यक्ति की देन है। वंश-परंपरा के असहिष्णु गुण के अनुसार वह भी अत्यंत असहिष्णु हैं। बात तो सह-अस्तित्व की करते हैं, परंतु बाकी के विचारों का अस्तित्व मिटाकर, अपना अस्तित्व प्रस्थापित करने की उनकी रीति-नीति है। आज ये सारे असहिष्णु विचार अपने देश में सक्रिय हैं और अत्यंत सहिष्णु, उदारमतवादी, सबको अपने समान माननेवाले हिंदू को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। इसका अपने को प्रत्यक्ष अनुभव आ ही रहा है।

सैंकडों वर्षो से अपने हिंदू-समाज का संबंध इन सम्प्रदायों से रहा है। देखादेखी इनका कुछ परिणाम अपने यहाँ भी हुआ है। कुछ हिंदू भी असहिष्णु होते जा रहे हैं। असहिष्णु हिंदू के रूप में चौथे प्रकार का आक्रमण अपने यहाँ हो रहा है।

इन सब आक्रमणों का विचार करके, हम लोगों को सोचना चाहिए कि क्या हम अपने छिन्न-विच्छिन्न दुर्बल समाज-जीवन से इन आक्रमणों से टक्कर लेते हुए, अपने अस्तित्व को बचाए रख सकेंगे? कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि 'यदि इस विच्छिन्न हिंदू-समाज को संगठित नहीं किया और वह अहिंदू बन गया तो दुनिया का क्या नुकसान होगा?' इसका विचार करना अपने लिए लाभदायक होगा।

इस विषय में पश्चिम के विचारकों का कथन मुझे स्मरण आता है।

उन्होंने कहा कि 'यह जो हिंदू धर्म है, वह सर्वव्यापी और सर्वसंग्राहक है। यदि यह जीवित न रहा तो अखिल जगत् का मनुष्य-समाज दानव बनकर एक-दूसरे का विनाश कर देगा। मानव को विनाश से बचाने के लिए श्रेष्ठ हिंदू-दर्शन और उसे जीवन में परिणित करने वाला हिंदू-समाज अपने सामर्थ्य से सब लोगों को सन्मार्ग का उपदेश देने के लिए विद्यमान रहे, तो मानव को परस्पर संघर्ष तथा दुष्कृत्य से परावृत कर सकेगा।' यह मेरे विचार नहीं हैं। अनेक विदेशी विचारक इस बात को कहते हैं। इसपर विचार करेंगे तो अपने धर्म का सब प्रकार का संवर्धन करने का औचित्य क्या है– अपने ध्यान में आ सकेगा।

इसके लिए यदि एक लक्ष्य सबके सामने रहे कि अपना यह सर्वव्यापी धर्म एक सत्य है और जिस पवित्र भूमि में वह विकसित हुआ, उस मातृभूमि के प्रति प्राचीनकाल से अपनी जो भक्ति रही है, वह भी सत्य है। हमें इस सत्य को फिर से जगाना है कि–

- एक माता के पुत्र के रूप में हम सबका एक परिवार है।
- एक परिवार में कोई ऊँचा, कोइ नीचा नहीं रहता।
- एक परिवार में एक-दूसरे के प्रति छुआछूत नहीं रहनी चाहिए।
- एक परिवार में कोई अपना, कोई पराया– इस प्रकार की घृणास्पद भावना नहीं रहती।
- ऐसा परिवारभाव जगाना होगा।

वह भी कुछ समय के लिए न होकर दिन-प्रतिदिन के संस्कार के रूप में प्रत्येक के अंतःकरण में अंकित करते हुए सबको सूत्रबद्ध जीवन चलाने का अभ्यास हो, इसके लिए अनुशासनपूर्वक शरीर व मन को ठीक प्रकार से एक प्रवाह में लाकर खड़ा करना होगा। ऐसा कार्य खड़ा किया तो हम इस हिंदू-समाज को सुसंगठित बनाकर संपूर्ण जगत् का कल्याण करने की दृष्टि से खड़ा कर सकेंगे।

ॐ ॐ ॐ

विजयादशमी, १९६९

सभी लोगों के अंतःकरण में पूज्य विनोबा जी के प्रति श्रद्धा है। कुछ दिन पहले उनके एक भाषण का सारांश मुझे पढ़ने को मिला। उसमें

उन्होंने असम व बगाल का जो सीमावर्ती प्रदेश है, उसकी गभीर स्थिति का सकेत किया था। वे इतना कहकर ही रुके नहीं। अपने कथन को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने यह भी कहा है कि अपनी पूर्व सीमा पर जिसको 'पाकिस्तान' (सप्रति बॉंग्लादेश) कहा जाता है, अपने साथ मित्रता न रखनेवाला, अर्थात् शत्रुता करनेवाला राज्य है। असम के उत्तर में हम पर आक्रमण करने की इच्छा रख, मित्रता का व्यवहार न करनेवाला चीन भी है। ये दोनों इन प्रातों में घुसे हैं। अब दोनों ओर से आक्रमण होने की सभावना बढ रही है। इस कारण आतरिक विद्रोह और बाह्य आक्रमण का भीषण सकट अपने सामने खडा है। उन्होंने उसके निराकरण का उपाय भी बताया है।

'भूदान-आदोलन' के अन्तर्गत केवल भूमि का दान देने से सारी समस्याओं का निराकरण हो जाएगा, ऐसा वे भी नहीं मानते। भूदान के पीछे की मानसिक अवस्था के द्वारा सकट का निराकरण हो सकेगा, क्योंकि मानसिक अवस्था ही महत्त्व की होती है— ऐसा उनका मत है।

मनुष्य अपने पास की सपूर्ण सपत्ति देश के लिए देता है, इसी का अर्थ है कि वह अपने स्वार्थ को जीतकर राष्ट्रचितन करता है। राष्ट्र की रक्षा व सवर्धन तथा सबके सुख के लिए अपने व्यक्तिगत ऐशो-आराम को छोड देना, यह शुद्ध राष्ट्रभावसपन्न व्यक्ति का जीवन है। उस गुण के एक प्रतीक के रूप में उन्होंने भूदान का आह्वान किया हुआ है। ऐसा स्वार्थशून्य राष्ट्रप्रेम व्यक्ति-व्यक्ति में जागृत कर हम लोग सारे सकटों का सामना कर उसमें यश पा सकेंगे। उन्होंने यही बात दूसरे शब्दों में अपने सामने रखी है।

इन सकटों की ओर पिछले १८-१६ वर्ष से मैं सब लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ। सन् १६६२ में चीन और १६६५ में पाकिस्तान के साथ हुए सघर्ष से मेरे कथन की सत्यता का सभी को थोडा-बहुत स्मरण और बोध हुआ होगा। अब फिर से हम लोगों को उसी विस्मरण ने ग्रस लिया है, जो पहले से अपने अत करण में था।

शाति के सर्वश्रेष्ठ उद्गाता पूज्य विनोबा जी ने यही चेतावनी सब लोगों को दी है। उनकी चेतावनी को ग्रहण कर सच्चे अर्थ में राष्ट्रप्रेम का, राष्ट्रार्पण का सस्कार जागृत करने के कार्य के लिए आगे बढेंगे, ऐसी एक आशा अपने अत करण में धारण कर, मैं चल रहा हूँ।

सुनने में आया है कि अपने देश के बहुत प्रसिद्ध और आजकल

विनोबा जी के साथ सर्वोदय का काम करने वाले जयप्रकाश बाबू कभी-कभी हिंदू साप्रदायिकता वगैरह के संबध में बोलते हैं। कहीं पर दगा या मार-पीट होने पर कभी संघ को अथवा किसी अन्य हिंदू संस्था को दोष देना, यह उनके लिए एक सामान्य-सी बात हो गई है।

दगा होने पर सामान्य व्यक्ति के मन में व्यथा उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। जयप्रकाश बाबू जैसे व्यक्ति के मन में व्यथा हो, यह तो पूर्णतया अपेक्षित है। उन्होंने अपने लेख में लिखा है कि 'जो दगे होते हैं, उसके पीछे कोई ना कोई योजना होती है। हो सकता है विदेशी, याने पाकिस्तानी हाथ हो। देशभर में दगे करवाकर दहशत का वातावरण उत्पन्न कर देश के नेताओं को भारत का विभाजन स्वीकार करने को बाध्य किया गया था। उसी की पुनरावृत्ति हो रही है। फिर से एक नया पाकिस्तान बनाने की इच्छा उत्पन्न हो रही है। इसीलिए देश में भिन्न-भिन्न स्थानों पर दगे करवाए जा रहे हैं।'

जयप्रकाश बाबू को कोई साप्रदायिक कहेगा, ऐसा मैं नहीं मानता। वे प्रारभ से समाजवादी विचारधारा के काग्रेसी कार्यकर्ता रहे हैं। सर्वोदय की दृष्टि से बहुत परिश्रम करनेवालों में से हैं। सकट की स्थिति आने पर समाजसेवा का कोई भी अवसर नहीं छोडते। दत्तचित होकर काम करने वाले जयप्रकाश जी ने यह चेतावनी दी है कि इधर-उधर मारपीट हो रही है, वह छुटपुट नहीं है। उसके पीछे कोई ना कोई सुनियोजित योजना, बडा षड्यन्त्र होगा। उसका परिणाम सब लोगों के लिए घातक और भारतमाता के पुनर्विभाजन तक हो सकता है। उनकी इस चेतावनी को हम लोगों ने अच्छी प्रकार से ध्यान में रखना और ध्यान में रखकर अपना कर्तव्य निर्धारित करना उचित होगा, ऐसा मैं समझता हूँ।

इसके साथ ही मुझे एक अन्य बहुत गभीर, अति भयावह सकट दिखाई दे रहा है। वह यह कि अपने गृह मत्रालय की ओर से घोषणा की गई है कि पुलिस, सेना इत्यादि मे पर्याप्त मात्रा में मुसलमानों को लेने का आदेश सभी राज्य सरकारों को दिया गया है। यह अग्रेजों के स्वतत्रता-पूर्व निकाले आदेश की पुनरावृत्ति ही है, जिसको उन्होंने मुसलमानों को अपनी ओर करने लिए नोकरियों में उनको लेने की मॉग स्वीकार करने के लिए निकाला था। हम उस आदेश का परिणाम विभाजन के रूप में भुगत चुके हैं। अग्रेजो ने जो किया, वही हमारे

गृहमंत्री करें, कितने आश्चर्य की बात है।

मैं समझता हूँ कि इस प्रकार की अनिष्टकारी प्रवृत्तियाँ, जो चारों और फैल रही हैं, उनका निराकरण करने और उन प्रवृत्तियों से सावधान रहने की जो चेतावनी विनोबा जी और जयप्रकाश जी ने दी है, वह बडे सकट का पूर्वाभास है। उन सकटों का निराकरण करने के लिए किसी की खुशामद या किसी को अधिकार देने से तो केवल उसकी उद्दडता ही बढेगी, देश में शाति व सब प्रकार के उत्कर्ष के लिए अपेक्षित वायुमडल कदापि उत्पन्न नहीं होगा। जहाँ शासन ही इस प्रकार के उपाय कर पृथकतावाद को आश्रय दे रहा हो, वहाँ समाज को अपनी शक्ति के बल पर खडा रहने के सिवाय अन्य कोई चारा नहीं है।

उक्त परिस्थिति में हम लोगों को अपने व्यक्तिगत जीवन की सीमाओं से बाहर आकर, सीमोल्लघन कर इस राष्ट्रव्यापी सगठित शक्ति के कार्य को करने के लिए आगे बढना होगा। यही प्रेरणा आज यह पवित्र दिन हम सब लोगों को दे, इसके लिए भगवान से प्रार्थना कर, अपनी बात समाप्त करता हूँ।

शस्त्रपूजन, १९७०

४५ वर्ष से भिन्न-भिन्न प्रसगों पर सघ का प्रत्यक्ष दर्शन और विचारों का परिचय करा देने का प्रयत्न अपनी ओर से हो रहा है। यह भी किसी एक स्थान पर नहीं तो सारे देशभर में हो रहा है। उस कारण जो समझदार लोग हैं, उनको सघकार्य का पर्याप्त मात्रा में बोध व परिचय हो चुका है, ऐसा हमारा विश्वास है। इसके बाद भी कुछ लोग सघ के सबध में कुछ भ्रमपूर्ण धारणाएँ अपने मन में रखते हैं। इसके कई कारण होते हैं। एक प्रमुख कारण यह है कि कार्य से निकट सपर्क न आने के कारण कार्य को समझ लेने में कुछ कठिनाई होती है। वैसी कठिनाई अपने कार्य के बारे में भी अनेक लोगों को होती होगी।

अपने सब बधुओं को सघ के सबध में सुव्यवस्थित जानकारी देने का दायित्व स्वयसेवकों पर होता है। अपने कार्यक्रम लोगों के विचारों को सुव्यवस्थित करने के अच्छे प्रसग होते हैं। वैसे भी हम अपने दैनदिन जीवन के व्यवहार व आचरण से लोगों के विचार को सघ के सबध में सुस्पष्ट

और सुस्थिर करने के लिए प्रयत्न करते हैं। उसका असाधारण महत्त्व अपने यहाँ माना गया है।

कभी-कभी लोग ऐसा प्रश्न पूछते हैं कि प्रत्येक देश में सुव्यवस्था रखने के लिए एक शासन-प्रणाली ग्रहण की जाती है। जैसे अपने देश में हम लोगों ने जनतान्त्रिक पद्धति को स्वीकार किया हुआ हैं। कई देशों ने तानाशाही स्वीकार की हुई है। फिर वह चाहे एक व्यक्ति की हो या एक दल की। कहीं-कहीं पर राजतत्र की व्यवस्था भी है। प्रजातत्र के भी अनेक प्रकार हैं। ऐसे भिन्न-भिन्न और अनत प्रकार हैं कि अच्छा-भला आदमी भ्रमित हो जाए। फिर मेरे जैसे राजनीति के अनाडी आदमी से लोग पूछते हैं कि 'आप प्रजातत्र को पसद करते हैं या तानाशाही को?

हमारा तो विचार यह है कि व्यवस्था किस प्रकार की है, इसका जितना महत्त्व होगा, उससे अधिक महत्त्व इस बात का है कि उस व्यवस्था को चलाने वाले लोग कैसे हैं? पद्धति अत्यत उत्तम रही, परतु उसे चलानेवाला यदि ठीक न रहा, तो वह व्यवस्था जनसाधारण के सुख का कारण न बनते हुए दु ख का कारण बन सकती है। जैसे एक उत्तम मोटर हो, उसमें जरूरत का तेल-पानी सब विद्यमान हो, परतु उसका चालक ठीक न हुआ, तो उसमें बैठे हुए यात्रियों की जान खतरे में रहेगी। व्यवस्था उत्तम है, पर चलानेवाला ठीक न होने पर खतरा हो सकता है। वैसे ही देश की शासन-व्यवस्था कैसी भी रही तो भी उसे चलानेवाला अच्छा चाहिए। हमारे देश के एक महापुरुष ने कहा कि 'हम लोगों ने प्रजातत्र इसलिए स्वीकार किया, क्योंकि हमको अच्छा, सहृदय, करुणावान, तानाशाह नहीं मिला।

किसी भी देश, राष्ट्र या समाज की उन्नति के लिए सर्वप्रथम आवश्यक बात है कि प्रत्येक व्यक्ति के अत करण में अपने देश, राष्ट्र व समाज के प्रति, उसकी परपराओं के प्रति उत्कट भक्ति और उसके सवर्धन के लिए परिश्रम तथा सर्वस्व समर्पण की सिद्धता होनी चाहिए। उसके लिए मन में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। परतु आज ऐसे कितने बधु मिलेंगे?

देखने में यह आता है कि पदलिप्सा, सत्ताप्राप्ति के मोह तथा मानसम्मान की चाह में लोग ऐसे काम करते हैं, या करने की इच्छा रखते हैं, जिससे देश का भला होना तो दूर, उसका अस्तित्व ही सकट में पडने

की सभावना रहती है। बडे-बडे नेता अथवा सामाजिक कार्यकर्ता भी इससे अछूते नहीं हैं। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति में बाधा आने पर जाति, पथ या अन्य आधार पर छोटे-छोटे गुट बनाकर उसकी पूर्ति का प्रयास करते हैं। तब सपूर्ण समाज, राष्ट्र, देश की एकात्मता की धारणा एक ओर रह जाती है। ऐसे में उत्कर्ष, सुरक्षितता या सुव्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती। दुर्भाग्य से ऐसे चरित्रहीन मनुष्यों का समुदाय अपने यहाँ बढता जा रहा है। अब गलत काम करने में किसी को कोई हिचकिचाहट नहीं होती।

इससे निराश होने की बात नहीं है, परतु जो वस्तुस्थिति है, उसको समझ लेना चाहिए। किस प्रकार की पद्धति चाहिए— इसकी चर्चा करते समय उन पद्धतियों को चलानेवाला मनुष्य सुसस्कारित बने, सद्गुणी बने, राष्ट्रभक्त बने, देशभक्त बने, इसकी चिता करते रहना और उसके लिए कुछ ना कुछ प्रबध करने की आवश्यकता है। सघ शुद्ध सस्कार निर्माण करने के लिए बनी हुई एक विशाल देशव्यापी योजना है। इसमें से देश का प्रत्येक नागरिक देशभक्त बनकर खडा हो, ऐसी स्थिति अपने को निर्माण करनी है।

सघ-निर्माता डाक्टर हेडगेवार जी कहते थे कि जब किसी व्यक्तिविशेष के सामने देशभक्त उपाधि लगाई जाती है तो मुझे अच्छा नहीं लगता। क्योंकि कुछ व्यक्तियों को देशभक्त कहा तब देश के बाकी बचे हुए कोटि-कोटि लोग कौन हैं? वे देशभक्त नहीं हैं— ऐसा अनुमान करने की गुजाइश रहती है। ऐसी स्थिति किसी देश में रहे, अर्थात् कुछ इने-गिने लोग देशभक्त कहलाने योग्य रहें, बाकी लोग देशभक्त नहीं हैं, तो वह देश प्रगति नहीं कर सकेगा। वे कहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति शुद्ध व प्रखर राष्ट्रभक्ति लेकर खडा हो, ऐसे प्रबल सस्कार देने और जागृत करने की व्यवस्था अपने को खडी करनी है। उस दृष्टि से सघकार्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अपने कार्य को चलाते समय भिन्न-भिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं। कोई-कोई नासमझी के कारण सघ को दोष देने का प्रयत्न करता है। यह सब अपने पिछले ४५ वर्ष के जीवन में अनुभव में आया है। उसके सबध में चिता करते बैठना अपना काम नहीं। ऐसा प्रचार तो लोग करेंगे ही। वृत्त-पत्र में भी छपता है। वृत्त-पत्र में आजकल एक नया प्रचार चल रहा है कि 'सघ के सरसघचालक मरणासन्न अवस्था में हैं। उनके उत्तराधिकार के लिए आपस में बडी खींचा-तानी मची हुई है।

सरसघचालक मरणासन्न भले हो, परतु उत्तराधिकार के लिए

खींचा-तानी नहीं हैं। कोई स्वार्थ हो तो खींचा-तानी हो। सरसघचालक बनने से सपत्ति मिलती, पैसा मिलता, बडे महल बना सकते, तो थोडी-बहुत खींचा-तानी होती। कितु यहाँ तो कुछ मिलता नहीं। ऐसा होते हुए भी जानबूझकर प्रचार करते हैं। ऐसे कुप्रचार चलेंगे, दोष मढने का प्रयत्न होगा, परतु उधर ध्यान न देते हुए राष्ट्र- निर्माण, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का शुद्ध चारित्र्य सपन्न जीवन बनाने का कार्य दृढता व अविरत परिश्रम से करते रहना है। उससे ही राष्ट्र का भला होगा, केवल उसका ही विचार करना चाहिए।

अत करण की क्षुद्र स्पर्धाविहीन प्रवृत्ति होने पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच ही नहीं, व्यक्तियों के समूहों के बीच भी झगडे होने का कोई कारण नहीं रहेगा। दुर्भाग्य से आज कहीं भी एकता का सूत्र अबाधित रूप से विद्यमान दिखता नहीं। जो छोटी-बडी सस्थाएँ हैं, वे टूट गई हैं अथवा विभाजित हो चुकी हैं। सबसे पुराने दल काग्रेस में बुरी तरह टूट हुई है, तब बाकी दलों का क्या कहना। समाजवादी दल के कितने टुकडे हुए हो चुके हैं, भगवान ही जाने। परकीय देशों से स्फूर्ति लेकर चलनेवाले साम्यवादी दल भी खड-खड हो गए हैं।

मैं समझता हूँ कि जहाँ राष्ट्र का विचार गौण होकर स्वार्थ, मान-सम्मान अथवा प्रतिष्ठा का विचार अधिक प्रबल हो जाता है, वहाँ इस प्रकार के विभाजन या झगडे होते हैं। अलग होने के लिए नाम भले ही सैद्धातिक मतभेद का दिया जाता हो, पर मूल कारण अलग ही रहता है।

आतरिक परिस्थिति ठीक नहीं, सकट चारों ओर से घेरे हों, अराजकता बढाने का प्रयास हो रहा हो, ऐसे समय में समाज तथा राष्ट्र को विभक्त करने वाली अनिष्टकारी दुष्ट प्रवृत्ति को रोकने के लिए, विशुद्ध राष्ट्रभक्ति का प्रबल सस्कार व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय के अदर जागृत करने के अलावा अन्य दूसरा मार्ग नहीं है। इसीलिए इस कार्य को हमें पूरी शक्ति से करना चाहिए।

ॐ ॐ ॐ

विजयादशमी, १९७०

अपने देश में समस्याएँ बहुत हैं। देश के अदर का विचार करेंगे तो दिखाई देगा कि कोई एक-दूसरे के साथ बैठकर सोचने या काम करने

के लिए तैयार नहीं होता। वर्षों के साथी एक दूसरे के विरोध में खड़े हो जाते हैं। स्थान-स्थान पर ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं। संस्थाओं के विभक्तिकरण का सिलसिला इतना चल रहा है कि पता नहीं चलता कि कौन, कब किधर हो। एक ध्येय, एक लक्ष्य अपने सामने है– सब मिलकर इसका विचार करने को तैयार नहीं हैं। लोग कहते हैं कि हम लोग स्वतंत्र हो गए हैं। किंतु राष्ट्र की सब प्रकार से उन्नति कर, उसको सबल बनाकर, उसका सम्मान जगत् में प्रस्थापित करने की दृष्टि से स्वतंत्रता का जो उपयोग होना चाहिए, वह दिखाई नहीं देता।

जैसे दल विभक्त हुए उसी तरह अपना समाज अनेक कारणों से विभक्त होता जा रहा है। विभक्तिकरण का अत्यंत दूषित वायुमंडल चारों ओर फैलता जा रहा है। स्वार्थ ही उसकी मूल प्रेरणा है। स्वार्थ पूर्ण करते समय राष्ट्रहित को धक्का लगता हो, उसकी किसी प्रकार की चिंता न करने की मनोवृत्ति अपने को दिखाई दे रही है। जो राष्ट्र के शत्रु हैं, उन्हें गले लगाकर पूरे राष्ट्र को संकट में ढकेल देने का कार्य करनेवाले भी कम नहीं हैं। स्वतंत्रता के इतने वर्षों में देशभक्ति की दृष्टि से हमने कोई विशेष प्रगति की है– ऐसा दिखाई नहीं देता। भौतिक प्रगति के ऊपरी चिह्न तो काफी दिखाई देंगे परंतु अंतःकरण के गुणों का, राष्ट्रभक्ति का, देशभक्ति का विकसन हुआ है इसके दर्शन बड़ी कठिनाई से और वह भी बहुत खोजने पर होते हैं।

राष्ट्र की भक्ति न रही हृदय में उसका साक्षात्कार न रहा तो पराई विचार-प्रणाली, पराए लोग, पराया नेतृत्व प्रिय लगने लगता है। उन्हीं को अपना स्वामी मानने की कुप्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति अनेक स्थानों पर प्रकट होती हुई दिखाई देती है। कोई रूस को स्वामी मानता है, तो कोई चीन को।

ऐसे सारे लोगों को अपने मार्ग की बाधा हिंदू ही लगता है। इसलिए इनके सारे आघात हिंदू पर ही होते हैं। कभी किसी अन्य मत अथवा संप्रदायवालों पर आघात किया हो अथवा आघात करने की हिम्मत हुई हो, ऐसा अपने अनुभव में नहीं आता। परकीय विचार-प्रणाली से प्रेरित होकर काम करनेवालों की सारी कृति हिंदूविरोधी ही होती है। हिंदू जीवन-प्रणाली को नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। उनकी धारणा है कि एक दिन भारतीय राष्ट्र नष्ट होगा और परकीय सत्ता यहाँ पर

अबाधित रूप से अपना शासन चला सकेगी। उनके प्रयत्न भी इसी दृष्टि से होते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि हम पर आघात करनेवाले, अपने आघात के द्वारा ही क्यों न हो, हमें सिखाते हैं कि अपने राष्ट्रस्वरूप को ठीक प्रकार से पहचानो। किंतु अपने यहाँ सीखने की प्रवृत्ति जरा कम ही है।

अपने समाज की यह दुभाग्यपूर्ण स्थिति है कि यदि अपने पर कहीं से आघात न हो रहा हो तो हम बडे सुरक्षित हैं-- ऐसा मानकर बडे आराम से खर्राटे लेते हुए सो जाते हैं। यह कभी समझते नहीं कि आज नहीं तो कल अपने पर आघात होगा। शत्रु तो नित्य सचेत रहता है। सचेत शत्रु के सामने निश्चित होकर सोए पडे रहे तो आत्मघात के अलावा अन्य कुछ नहीं होगा। लेकिन देखने में ऐसा ही आता है।

जो काम सरकार को करने के हैं, वह सरकार करेगी। उसको करने ही चाहिए। परतु देश का दायित्व प्रत्येक व्यक्ति पर भी होता है। इस दायित्व को पूर्ण करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने अंतःकरण में यह बात निश्चयपूर्वक रखनी चाहिए कि चाहे जैसी परिस्थिति हो, मैं अपने स्वार्थ को एक ओर रखकर 'सन्नद्ध बहुसिद्धम्' और वह भी अकेला नहीं तो सब को साथ लेकर सिद्ध रहूँगा। सब लोग यह दायित्व समझकर अपना हिस्सा बँटाए तो जगत् में सम्मानित होकर खडे हो सकेंगे।

शस्त्रपूजन, १९७१

जब हम अपने हिंदू-समाज का विचार करते हैं, तब अनेक ऐसी बातें दिखाई देती हैं, जिन्हें शीघ्र ही दूर किया जाना आवश्यक है। उनमें से एक है दरिद्रता। विगत चुनाव में देश में व्याप्त भीषण गरीबी को हटाने का सकल्प व घोषणाएँ की गई थीं। खूब नारे लगाए गए थे। लेकिन इतनी बडी समस्या दूर कैसे होगी? कौन करेगा? यह किसी ने नहीं बताया। अब घोषणा करने मात्र से अथवा जादुई चमत्कार से तो गरीबी दूर होगी नहीं। क्या घोषणा करनेवालों के मन में इसे दूर करने का सच्चा भाव था। समस्या की विकरालता को देखते हुए हम शासन अथवा किसी दल को दोष नहीं दे सकते। उन्हें जो प्रयत्न करना चाहिए, वह वे करें। मगर इस समस्या का हल तभी सम्भव है, जब देश का प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ को नियंत्रित कर, देश की संपत्ति बढाने के लिए ईमानदारी से कठोर परिश्रम करेगा।

एक दल ने नारा दिया— 'गरीबी हटाओ'। वहीं साम्यवादी दल द्वारा एक नया नारा 'अमीरी हटाओ' शुरू किया गया है। यह तो दस्यु-परपरा का पुनरुज्जीवन ही है। अमीरों को लूटने से न तो गरीबी दूर हुई है और न कभी होगी। बस, इतना होगा कि अमीर भी गरीब की श्रेणी में आ जाएँगे। इससे गरीबी अधिक बढेगी ही।

एक ओर देश में गरीबी बढ रही है और दूसरी ओर प्रत्येक व्यक्ति में काम से जी-चुराने, अधिक वेतन प्राप्त करने, ऐश करने की प्रवृत्ति बढ रही है। अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का, समाज का जीवन दु खी करने में किसी को सकोच नहीं होता। जब तक समाज की इस प्रकार की वृत्ति रहेगी, तब तक ये नारे, नारे ही रहेंगे। समाज में कुछ नेता ऐसे भी हैं, जो व्यक्ति को काम करने से रोकते हैं। वेतन ज्यादा माँगने की प्रेरणा देते हैं। जब देखो, तब 'काम बद, नगर बद' की भाषा बोली जाती है। यह सब अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए किया जाता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि बद-बद की इस भाषा से कभी राष्ट्रजीवन ही बद न पड जाए। इसमें किसी गुट का लाभ भले ही होता हो, पर राष्ट्र का भला कभी नहीं होगा। अत यह 'बद की भाषा' बद हो जानी चाहिए।

व्यक्ति-व्यक्ति में यह दृढ भाव जगाना होगा कि यह देश मेरा है। मैं इसकी दरिद्रता देख नहीं सकता। इसे दूर करने के लिए मैं स्वार्थरहित होकर प्राथमिकता से कठोर परिश्रम करूँगा, इसकी सपत्ति बढाऊँगा। इसके लिए यह मेरी भूमि है, यह मेरा समाज है, यह मेरी गौरवशाली परपरा है— यह धारणा प्रत्येक व्यक्ति में जागृत करनी होगी। आज यह भावना सभी में है— ऐसा विश्वासपूर्वक नहीं कह सकते। अगर समाज के प्रति आत्मीयता जागृत रहती, तो सारा समाज हजार वर्षो से इतनी दुरवस्था में न रहता। अत प्रयत्नपूर्वक हमें व्यक्ति-व्यक्ति में समाज की एकात्मता का, मातृभूमि की भक्ति का भाव जगाना होगा।

ॐ ॐ ॐ

शस्त्रपूजन, १९७२

विजयादशमी विजय का प्रतीक है। समग्र राष्ट्र के अत करण में विजय की आकाक्षा जगाने और उसे पूर्ण करने के लिए समाज की सुसगठित शक्ति खडी करने तथा उसके लिए कटिबद्ध होकर खडे होने का

संदेश देनेवाला यह दिवस है। इसका अपना पौराणिक महत्त्व भी है। जिस समय दैत्य मदोन्मत्त हो गए थे और जनता उनसे बडी त्रस्त हो गई, तब वह अपनी गुहार लेकर ब्रह्मा के पास पहुँची। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पुंजीभूत शक्ति ने उन दैत्यों का विनाश कर जनता को सुखी किया था।

अपने देश में दानवी शक्तियाँ सक्रिय हैं। इन शक्तियों का विनाश करने के लिए, प्रत्येक को अपने अदर की बुद्धि, भावना एव शक्ति को केंद्रित करना होगा, ताकि अपने समाज और देश को सुखी, वैभवशाली, विजयी जीवन प्राप्त हो सके। पुंजीभूत शक्ति, शीलसपन्न, चरित्रवान व्यक्तियों की होनी चाहिए। इसके विपरीत गुणों वाली शक्ति तो जगत् के लिए विनाशकारी सिद्ध होगी। यह सद्प्रवृत्ति अपनी पवित्र मातृभूमि के प्रति परम श्रद्धा और भक्ति से निमाण होती है।

भारत की सीमाएँ कितनी विस्तृत थीं, इसकी कल्पना आज के मानचित्र से नहीं हो सकती। यह तो पराभूत भारत का खडित मानचित्र है। वास्तव में भारत की सीमा में कैलास मानसरोवर, त्रिविष्टप (तिब्वत), अफगनिस्तान और कथित पाकिस्तान भी अतर्भूत है। अपने देश की सीमाएँ इतनी विस्तृत थीं। इसके विस्तार का विचार तो वे ही कर सकते हैं, जिनमें पौरुष, पराक्रम निर्भयता और विजय प्राप्त करने की इच्छा हो।

लेकिन यह सब तो तब हो, जब आपसी झगडों से फुरसत मिले। सारा पराक्रम ओर पौरुष आपसी झगडों में ही प्रकट होता है। वास्तव में परस्पर सौहार्द-स्नेह का प्रदर्शन और जागतिक मैदान में पौरुष-पराक्रम प्रकट करने में सच्चा लाभ है।

भारत के पुत्ररूप समाज से हिंदू-समाज का ही बोध होता है। इस भूमि के साथ जुडी हुई कला, स्थापत्य दर्शन आदि सभी हिंदू-समाज के कारण विकसित हुए हैं। भारत का प्रत्येक पहलू हिंदुत्व से परिपूर्ण है। हिंदू जीवन-प्रणाली ही भारत के जीवन-वैशिष्ट्य को बनाए रखनेवाली है। किंतु दुर्भाग्य से आजकल इसी को निंदनीय समझा जाने लगा है। जगत् में अपने स्वत्व के अस्तित्व का निषेध करनेवाला पापी यदि कोई होगा, तो वह अपने हिंदू-समाज में ही मिलेगा।

जो समाज इस प्रकार की मानसिकता से ग्रस्त हो, उसे जगत् में किसी प्रकार का सम्मान क्यों प्राप्त होगा? जगत् की घटनाओं का नि करने से हमें दिखाई देगा कि विदेशों में जहाँ-जहाँ हमारे लोग,

वहाँ-वहाँ उनका रहना मुश्किल हो गया है। दुनिया के छोटे-छोटे देश के लोग भी उन्हें ठोकरें मारें तो आश्चर्य नहीं। इससे यदि हमें कोई शिक्षा ग्रहण करनी है तो यही कि हम अपने स्वाभिमान को अपने आचरण में उतारें।

धर्म से ही समाज का परिष्कृत स्वरूप प्रकट होगा। धर्म से ही अनाचार, भ्रष्टाचार मिट सकता है। हिंदू संस्कृति ने सदा ही पहले धर्म का विचार किया। किंतु इसे न समझनेवाले लोग भ्रमवश हिंदू जीवन-पद्धति के वैशिष्ट्य पर यदा-कदा कीचड़ उछालते रहते हैं।

विदेशों के कथित समृद्धि की चरमसीमा तक पहुँचने का दावा किया जाता है। परतु वे सब प्रकार के सुखोपभोग से ऊब रहे हैं। परिणामस्वरूप वहाँ के लोगों में उद्दडता और नीतिभ्रष्टता से युक्त 'हिप्पी-सस्कृति' का आकर्षण बढ़ रहा है। हमारे देश में भी समृद्धि रही है और उससे ऊबनेवाले लोग भी रहे हैं किंतु उनमें अनीति, भ्रष्टाचार नहीं देखा गया, बल्कि समाज के हित के लिए अपनी सुख-समृद्धि को ठोकर मारकर अपना उत्सर्ग करने की भावना ही उनमें रही।

भगवान बुद्ध व महावीर का श्रेष्ठ विचार जनकल्याण की चिता से ही प्रेरित था, स्वार्थ से नहीं। भगवान महावीर ने समाजसेवी, राष्ट्रसेवी बनने में ही अपने जीवन की धन्यता समझी।

आज अपने देश में शक्ति का नाम लेने पर उसे दुष्टता तथा हिसा की प्रवृत्ति माना जाता है। बात-बात में भगवान बुद्ध की दुहाई दी जाती है, किंतु स्वय भगवान बुद्ध ने अपने सेनापति पर राष्ट्र की रक्षा करने का काम सौंपते हुए यह आदेश दिया था कि वह अपना काम निर्भीकता से करे। किसी प्रकार की दुर्बलता का प्रदर्शन न करे, क्योंकि ऐसा करने पर देश की होनेवाली दुर्दशा व हिसा का पातक उसे ही लगेगा।

दुष्टता का नियमन करने के कारण ही शक्ति सपूर्ण जगत् के लिए हितकारी सिद्ध हुई है। इस इतिहास-सिद्ध तथ्य का हमें स्मरण रखना चाहिए। हम किसी के साथ लडाई-झगडा नहीं करेंगे, यह विचार तो उदात्त है। किंतु ससार इसे समझता व मानता नहीं। एक बार एक सज्जन अपने किसी मित्र के यहाँ गए। द्वार खोलते ही मित्र का कुत्ता भौंकने लगा। उस सज्जन ने अपने मित्र से कहा, पहले कुत्ते को बाँधो, फिर दरवाजा खोलो। उस मित्र ने कहा, 'क्या तुम्हें नहीं मालूम कि भौंकने वाले कुत्ते काटते नहीं? घबराने की कोई बात नहीं है।' उस सज्जन ने बडा ही मार्मिक उत्तर दिया।

वे बोले 'भाई, मुझे तो मालूम है, किंतु यह बात इस भौंकनेवाले कुत्ते को मालूम है क्या?'

व्यावहारिक जगत् की भी यही पद्धति है। हम भले ही किसी से झगडा न करें, किंतु विगत इतिहास दर्शाता है कि जिसकी मित्रता के लिए हमने अपनी पवित्र मातृभूमि का दुर्भाग्यशाली विभाजन भी स्वीकार किया, क्या उसकी मित्रता हमें प्राप्त हुई? विभाजन के तुरत बाद उसने कश्मीर पर आक्रमण कर फिर से काफी बडा भू-भाग अपने कब्जे में कर लिया। वह आज भी उसके कब्जे में है। हम लोग मित्रता का ही राग अलापते रहे।

दुनिया के लोग नहीं चाहते कि भारत आत्मनिर्भर बने, अपने पैरों पर खडा हो, बलशाली राष्ट्र बने। इसी दृष्टि से अंग्रेजों के जमाने से ही इस देश की जनता में बुद्धिभेद पैदा कर पृथकत्व और फूट डालने के प्रयास किए गए। उनकी नीति थी कि समाज को नष्ट करना हो तो बुद्धि भ्रष्ट करो। इसी सिद्धांत को अपनाकर आज भी विदेशी शक्तियाँ हमारे स्वाभिमान को नष्ट करने में लगी हुई हैं। हमारे दुर्भाग्य से देश का नेतृत्व करनेवाला वर्ग भी उन्हीं का अनुकरण कर स्वत का निषेध करने के लिए आगे बढ रहा है।

समाज को एक सूत्र में गूँथनेवाली भावनाशक्ति कि 'मैं भारतमाता के पुत्ररूप हिंदू-समाज का अग हूँ, भाषा रहन-सहन की विभिन्नता के बावजूद सपूर्ण समाज के साथ एकरस, एकात्म हूँ', को प्रत्येक अत करण मे जगाने से ही यह दुरवस्था समाप्त होकर स्वाभिमानपूर्ण जीवन का निर्माण होगा। बडे-बडे सकटों से जूझने की शक्ति उत्पन्न करने के लिए, अपनी परपरा, सस्कृति, दर्शन आदि का साक्षात्कार करना होगा। इसी में जीवन की सफलता है।

卐 卐 卐

> कोई भी राष्ट्र उन्नत नही हो सकता जिसका औसत व्यक्ति बौना हो और जिनके बीच कुछ ही विशालकाय असामान्य व्यक्तित्व खडे हो।
>
> — श्री

उत्सव

संघ की कार्यपद्धति मे विशेष रूप से छ उत्सव- विजयादशमी मकर संक्रमण, हिंदू साम्राज्य दिनोत्सव, गुरुपूर्णिमा, रक्षाबंधन- मनाए जाते हैं जिनका ऐतिहासिक व सामाजिक महत्त्व है। इस अवसर पर दिए गए श्री गुरुजी के बौद्धिक वर्गों मे से उत्सव का महत्त्व बताने वाले भाग का सारांश।

मकर-संक्रमण

मुंबई, १६४८

मकर-संक्रमण उत्सव को हम बहुत महत्त्व का मानते हैं, क्योंकि आज के दिन से ही प्रकाश, अर्थात् ज्ञान व जीवन की उष्णता का क्रम बदलता है। सृष्टि पुन अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा निर्जीवता से जीवन की ओर क्रमण करती है। इसीलिए प्राचीनकाल से ज्ञानरूपी प्रकाश की उपासना करनेवाले भारतीय जीवन में इस दिन का महत्त्व है। अपना कार्य भी आत्मविस्मृति रूपी अंधकार को नष्ट कर आत्मस्मृति तथा आत्मजागरण करने का है। हमारे कार्य के अस्तित्व से ही देश की मुरझाई हुई श्रद्धा पुलकित हो, राष्ट्रजीवन-विषयक अनेकों भ्रमों का निराकरण हुआ है एव दुर्बलता की आत्मविश्वास-शून्य भावना के स्थान पर सामर्थ्य की अनुभूति राष्ट्र को होने लगी है। भ्रम को दूर कर ज्ञान प्रदान करनेवाले राष्ट्र के सत्यस्वरूप का साक्षात्कार करनेवाले तथा चैतन्यहीन अवस्था में चैतन्य का संचार करानेवाले इस श्रेष्ठ कार्य का निर्माण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के रूप में राष्ट्र-जीवन को योग्य दिशा में प्रवाहित करने के लिए ही हुआ है।

सक्रमण का दौर

सक्रमण-काल प्रतिवर्ष निसर्ग में आता है, परतु मनुष्य-जीवन में नहीं आता। यदि मनुष्य के जीवन में सक्रमण आया तो आगे के जीवन में आगामी काल के प्रति ठीक-ठीक दृष्टि रखकर निश्चय से चलना सुकर होता है। आज भारतीय जीवन में महत्त्वपूर्ण और सोभाग्यपूर्ण सक्रमण हुआ है। अत करण पर जो एक बोझ था, वह कम हुआ है और परकीय सत्ता का जो विष दिखता था, वह कम प्रमाण में क्यो न हो, दूर हुआ है। राष्ट्र-शरीर निर्विष होकर अपना समाज आगामी सुख-समृद्धि के जीवन की ओर देखता हुआ खडा है। ऐसे एक अत्युत्कृष्ट सक्रमण-काल में हम उपस्थित हैं।

सक्रमण का काल अनेक अनुभवों से भरा हुआ है। यह अपेक्षा गलत है कि सारा सुख ही मिलेगा। सारे राष्ट्र-जीवन में अनेकानेक सकट, आपत्तियाँ और सहस्रावधि समस्याएँ सामने दिखाई देती हैं। कुछ काल तक चारों ओर शायद अधेरा ही दिखता होगा। ऐसा लगता होगा कि प्रगति के अवसर नहीं हैं, अच्छा होने के स्थान पर बुरा हो रहा है और एक सकट के बदले दस सकट आ रहे हैं। वहीं जो दूर का देख नहीं सकते और देखना भी नहीं चाहते, वे समझते हैं कि सब कुछ हो गया है, अब करने को कुछ रहा नहीं। परतु धैर्य, कुशलता, सोच-समझकर कुछ करने और बुद्धिमता का उपयोग करने का यह समय है।

हम शात चित्त से विचार करें कि मनुष्य-जीवन में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोग होते हैं, उनमें यश-अपयश, सुख-दु ख, हार-जीत होनेवाली ही है। तात्कालिक परिस्थिति देखकर क्षुब्ध होना और अपने ही बाधवों को पीडा देना ठीक नहीं। प्रयोग के लिए कुछ समय तो देना ही चाहिए, अन्यथा प्रयत्न करने के लिए बद्धपरिकर लोगों के प्रति अन्याय होगा। जो होता है, वह ठीक या गलत, अकारण क्षुब्ध न होते हुए समस्याओं की जड तक पहुँचते हुए, किसी भी प्रकार की अपकारक भावना न रखते हुए, इस तरह शातता से चले कि परस्पर वैमनस्य न हो।

अविचल रहे

अपने अत करण की प्रवृत्ति ठीक रखना सघ को सुलभ है क्योंकि उसने आरभ से ही यह दृष्टि रखी है। एक विशिष्ट ध्येय रखकर चलने के कारण प्रत्येक स्वयसेवक को शात, सयमित होकर तथा अपने कार्य पर

दृष्टि केंद्रित कर चलना चाहिए। हमने व्रतस्थ जीवन स्वीकार किया है। एक जिम्मेदार व्यक्ति की तरह अपना आचार-व्यवहार रहता है। हमें अन्यत्र देखने का अवकाश ही नहीं है। क्षोभ देनेवाली सभी बातों को हजम कर चलें। अपने हृदय के अमृत में क्रोध के विष को न आने दें। सब अपने ही लोग हैं, अपने राष्ट्र-जीवन के घटक हैं, अपने समाज के हैं। उनकी विचार-प्रणाली कैसी भी क्यों न हो, उन्होंने भी कुछ अच्छे काम किए हैं, त्याग किया है, इसलिए अपनी स्नेहपूर्ण उदारता और बधुत्व की भावना उनके प्रति प्रकट करें और इस प्रक्षोभक वातावरण में अपने को सयमित रखें। ससार में ऐसा कौन है, जिसने काया-वाचा-मनसा किसी प्रकार के बुरे कर्म या पाप न किए हों? मन से बुरा सोचना भी पाप होता है। जैसा गीता में कहा है–

कर्मेन्द्रियाणि सयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचार स उच्यते।।

(गीता ३,६)

हृदय की अमृतमयी पवित्रता लेकर, चारों ओर के लोगों को अपने ही समझकर और दुनिया भर की प्रक्षोभक बातें देखते हुए भी अपने विचारों पर स्थिर रहकर स्वयसेवकों को सोचना चाहिए कि वे पवित्रतम जीवन को प्राप्त करेंगे। प्रत्येक स्वयसेवक अपने लक्ष्य से दृष्टि हटने नहीं देगा। दुनिया के साम्राज्य के लिए भी उस महान साक्षात्कार को न छोड़ते हुए भारतीय जीवन को पुनरपि वैभवसपन्न व शक्तिशाली करने के लिए हमें ध्येय-साधना के निश्चित, नियोजित रास्ते से चलते रहना आवश्यक है।

इस सक्रमण में अव्यवस्था, दुरवस्था देखकर त्वेष की भावना उठती है कि यह क्या हो रहा है? परतु दुर्बलता से त्वेष के अधीन होने से काम नहीं होता। सब कुछ रहते हुए भी अतकरण की क्षमावृत्ति चाहिए अपने लोगों के प्रति अपनेपन की भावना किचित मात्र कम नहीं होनी चाहिए।

सगठनशास्त्र का आदर्श

सघ के प्रणेता ने आदर्श के रूप में युधिष्ठिर को हमारे सामने रखा हे। युधिष्ठिर ने त्वेष द्वेष, क्षोभ, वेमनस्य की विपरीत भावनाओं को अपने मन में तनिक भी स्थान नहीं दिया। युधिष्ठिर ने तो सारी कठिनाइयाँ, सकट और वनवास देने वाले दुर्योधन के प्रति भी कभी क्रोध नहीं किया। जब पाँचों पाडव वल्कल पहनकर वनवास भोग रहे थे, तब

दुर्योधन सारे कौरवों के साथ अपने वैभव का प्रदर्शन करने वन में पहुँचा। उनके उच्छृंखल व्यवहार के कारण गधर्वो ने युद्ध में परास्त कर उन्हें पकड लिया। यह समाचार पाडवों को मिला। तव युधिष्ठिर के अतिरिक्त चारों पाडवों ने कहा, 'चलो, अपने मार्ग के कॉटे निकल गए।' लेकिन युधिष्ठिर ने कहा, 'जब हम आपस में लडते हैं, तब हम पॉच और सौ हैं। लेकिन कोई पराया सामने खडा हो, तव हम एक-सौ पॉच हैं– 'वय पचाधिक शतम्'। उन्होंने कौरवों को मुक्त कराया। सगठनशास्त्र में किस प्रकार की मधुर वाणी और हृदय की प्रवृत्ति रहनी चाहिए। ऐसे युधिष्ठिर हमारे आदर्श हैं।

मकर-सक्रमण का सदेश

ऐसी निकृष्ट परिस्थिति में इधर-उधर देखने की हमें आवश्यकता नहीं है। यह मकर-सक्रमण हमें आदेश दे रहा है कि भारतवर्ष की सारी छिन्न-विच्छिन्नता की भावना नष्ट कर, पुनरपि एक महान अखड, सुसगठित सुसज्ज राष्ट्र वनाने के लिए प्रत्येक स्वयसेवक अपनी सपूर्ण शक्ति लगाकर खडा हो। भले ही हमारा जीवन क्यों न वर्वाद हो जाए, परतु किसी के करने या कहने से उत्पन्न होनेवाले क्षोभ को हृदय में प्रवेश न देते हुए और जो पुराने भेद फिर से सिर उठा रहे हैं, उन्हें 'वय पचाधिक शतम्' की भावना से कुचलकर, एकसूत्र राष्ट्र-निर्माण करने के लिए सारी ताकत लगा देंगे।

गगा-प्रवाह को लाने के लिए भगीरथ के समान तपस्या, महान प्रयत्न, अत करण की प्रेरणा और अपने ध्येय के प्रति चिरतन दृष्टि चाहिए। ऐसा एक महान भगीरथ हमें प्राप्त हुआ, जिसने भारतमाता के साक्षात्कार की प्रेरणा हमारे सामने रखी और भारतीय आत्मा को पहचान कर उसे जगाने का मत्र दिया। मत्र के पात्र वनने के लिए उसे जीवन में लाना चाहिए। प्रत्येक स्वयसेवक को सकल्प करना होगा कि मैं अपने जीवन में सोच-समझकर परिवर्तन करूँगा। मैं व्यक्तिगत बडप्पन, सुख और पारिवारिक मोह में नहीं पडूँगा। जीवन में एकमात्र लक्ष्य रखूँगा कि चाहे जीवन मिट जाए, परतु एकता का शक्तिशाली जीवन फिर से निर्माण कर भारत को अमर वैभव प्राप्त करा दूँगा।

सच्चा राष्ट्रभक्त

इतना प्रयास करने के पश्चात् व्यक्तिगत लाभ ५

केवल चार मीठे शब्द मिल सकते हैं। मैं तो कहूँगा कि उसकी आशा भी नहीं रखनी चाहिए। सच्चा राष्ट्रभक्त वह है, जो सन्यस्त रहकर राष्ट्र के लिए दिन-रात छटपटाता रहता है। सघनिर्माता ने हमें यह ज्ञान दिया है कि मधुर शब्द नहीं मिले तो भी कोई बात नहीं, लोगों के भले-बुरे कहने पर ध्यान न देते हुए काम करना चाहिए।

卐卐卐

नागपुर, १९५७

कविहृदय के लोग इस सक्रमण पर्व में अनेक श्रेष्ठ बातें देखते हैं। अपने राष्ट्रजीवन की अति प्राचीन अवस्था में भी जो क्रातदर्शी महापुरुष हुए हैं, उन्होंने इस मकर-सक्रमण पर्व का अधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर तथा अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जानेवाले पुण्यपर्व के रूप में गौरव किया है। हम कल्पना की इतनी ऊँची उडान नहीं भर सकते हों तब भी व्यावहारिक दृष्टि से आज के दिन के अनुरूप विचार करें।

एक विचार मन में आता है कि साधारणत प्रत्येक मनुष्य या मनुष्य-समूह को लगता है कि उसका उत्कर्ष हो। अपने जीवन में उत्कर्ष की दिशा में सक्रमण हो। इसी दृष्टि से हमें विचार करना है, पर व्यक्ति की दृष्टि से नहीं, क्योंकि व्यक्ति कभी अकेला नहीं रहता। व्यक्ति स्वातत्र्य की अनेक भ्रामक धारणाएँ हो सकती हैं। परतु मनुष्य समाज में रहता है, इसलिए उसकी स्वतत्रता की मर्यादाएँ होती हैं। इन मर्यादाओं को समझकर व्यवहार करना, यही व्यक्ति-स्वातत्र्य की परिसीमा है। इसकी स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए। उच्छृखल या उद्दड रीति से रहना अथवा मन में जो लहर उठे उसके पीछे दौडने को व्यक्ति-स्वातत्र्य समझना गलत है। व्यक्ति-स्वातत्र्य की वास्तविक कसौटी तो यह है कि मनुष्य में सयम कितने प्रमाण में है, मन को नियन्त्रित रखकर, बुद्धि के आदेशानुसार उसे दिशा देने का सामर्थ्य कितना विकसित हुआ है।

व्यक्ति की अपनी इच्छा या कामना की पूर्ति के लिए समाज की आवश्यकता होती है। उस समाज के प्रति अपने कर्तव्य को भुलाया नहीं जा सकता। समाज से उसे सुरक्षा और उत्कर्ष का विश्वास मिलता है। इस प्रकार व्यक्ति, परिवार और समाज का परस्परावलबित नाता होता है। इसलिए सक्रमण की दृष्टि से व्यक्ति का विचार न करते हुए समाज का

विचार करना ही योग्य और अतत लाभ का होगा।

एकात्म जीवन का साक्षात्कार

अपने समाज-जीवन की ओर इस दृष्टि से देखेंगे तो सभी प्रकार के समान भाव का अनुभव होगा, अन्यथा एकात्मता, स्नेहबद्धता जीवन की सूत्रबद्धता इत्यादि बातों का भारी अभाव नजर आता है। इसके अभाव में ही वह समाज की एकता के ज्ञान को भूल गया है। परिणामस्वरूप स्नेहमयता के व्यवहार के स्थान पर सद्य-स्वार्थ, स्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष का प्राबल्य है। जहॉं साधारण स्नेह का व्यवहार नहीं, वहॉं सूत्रबद्धता एव अनुशासनपूर्ण जीवन कहॉं होगा?

मातृभूमि के प्रति भक्ति एव शुद्ध सद्गुणों का सस्कार कर एक ही सुदृढ समाज-रचना के अतर्गत सृष्टि के अतिम सत्य तक पहुॅंचने की प्रेरणा देनेवाले इस सत्य को किसी भी नाम से सबोधित किया जाए, पर उन्नत सस्कार, एक धर्म, एक सस्कृति, समान गुण, भावना व आकाक्षा से यहॉं का राष्ट्र-जीवन बना है। मकर-सक्रमण जैसे पर्व अपनी उसी पुरातन भावना व सस्कार को दृढ करनेवाले हैं। इसलिए इस उत्सव को सघ न केवल महत्त्व के साथ मनाता है, बल्कि वास्तविकता में चरितार्थ भी करता है।

ऽ ऽ ऽ

नागपुर, १९६१

राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ में जो उत्सव मनाते है, उनमें मकर-सक्रमणोत्सव का महत्त्व बहुत है। दक्षिणायन समाप्त होकर उत्तरायण का प्रारभ इस सक्रमण-दिन पर होता है। अब दिन-प्रतिदिन प्रकाश बढता जाएगा। प्रकाश और ज्ञान एक समान होने के कारण अब ज्ञा की वृद्धि, याने प्रसार का पर्व आया है। इस कारण इसका महत्त्व मानना उचित ही है। अपने विदर्भ प्रात में, विशेषत नागपुर और उसके निकटवर्ती क्षेत्र में इसे 'तिल-सक्रात' कहते हैं। स्नेह का निर्माण करनेवाले तिल और माधुर्य देनेवाले गुड का आदान-प्रदान करने का यह दिन है। प्रेम, भक्ति, माधुर्य और स्नेह– ये सब चीजें ज्ञान के लिए अत्यत आवश्यक हैं। इसका परस्पर आदान-प्रदान कर अटूट स्नेह और व्यवहार में नितात माधुर्य भरने का यह पर्व होने के कारण अपने सघ में इसको मनाने का कारण स्पष्ट है। हमें हिंदू-समाज को जगाकर सत्य स्वरूप का ज्ञान कराना है। जो लोग अपने ... न के

व्यवहार में, पारिवारिक सुख में डूबे हुए हैं, चौबीसों घंटे उसमें ही मग्न रहते हैं, उनको उस जीवन से कुछ क्षण के लिए अलग निकालकर, देश के प्रति सोचने के लिए, उसकी अपने पर जो कुछ जिम्मेदारियाँ हैं, उस दृष्टि से प्रकाशमय जीवन जीने के लिए उत्साहित करना हमारा कार्य है।

आज एक-दूसरे से मिलकर चलने की प्रवृत्ति का नितात अभाव है। इस प्रकार की वृत्ति को नष्ट कर आसेतु हिमालय सगठन कर समाज में जागृति करना सघ का लक्ष्य रहा है। इसकी पूर्ति के लिए हम सघ में कुछ उत्सव मनाते हैं। इन उत्सवों से स्फूर्ति लेकर मातृभूमि के प्रति नितात श्रद्धा, आदर और भक्ति को अपने मन में दृढ करना है।

ॐ ॐ ॐ

नागपुर १९६४

मानव-समाज उत्सव-प्रिय होता है। इसलिए जीवन में उत्सवों का एक महत्त्व है। यदि उत्सव नहीं रहे तो यह जीवन रुक्षता में दब जाएगा। जिनमें कुछ चेतना है, ऐसे लोग मनमानी करने लगेंगे तथा अपने स्वत के एव समाज के जीवन को भी हानि पहुँचाएँगे। मनुष्य के उत्साह को सुयोग्य रीति से प्रकट होने का अवसर योग्य उत्सवों द्वारा देने की व्यवस्था प्रत्येक समाज में होती है। इसी कारण प्रत्येक समाज में सुयोग्य रीति से उत्सवों का सचालन किया जाता है।

मनुष्य की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को योग्य दिशा देने की दृष्टि से राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ ने अपने समाज-जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण उत्सवों को चुना है। जीवनदर्शक सिद्धातों का प्रामाणिकता से पालन करने तथा पवित्र ध्येय के लिए सर्वस्वार्पण करने का निश्चय दृढ करने के उद्देश्य से गुरुपूर्णिमा उत्सव, बधुभाव बढाने, परस्पर के सारे भेद भुलाकर सारे लोगों को एक स्नेह-सूत्र में गूँथने के लिए रक्षाबधन तथा ऐहिक एव आध्यात्मिक जीवन में उन्नति कर जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुँचने की आकाक्षा, सफल विजिगीषु-वृत्ति और अत करण में स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए विजयादशमी उत्सव हम मनाते हैं। उसी प्रकार दक्षिणायन की स्थिति समाप्त होकर, अधकार का बाहुल्य कम होकर प्रकाश से अधिकाधिक आनद, शीतकाल का पर्व समाप्त होकर सूर्य से अधिक जीवन प्राप्त करने की अनुकूलता प्रदान करनेवाला यह मकर-सक्रमण का पर्व है। सक्रमण, याने अधकार पर

[illegible] के [illegible] के [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस दिन से प्रारम्भ होता है। अंधकार पर प्रकाश की [illegible] विजय सूचित करनेवाला, [illegible] पर देवता के [illegible] [illegible] होने से इस पर्व को अनन्य असाधारण महत्त्व है। [illegible] मन में उठनेवाली घोर निराशा की तमिस्रा का अंत [illegible] [illegible] आशा का आलोक जिसके स्मरण से हृदय में प्रज्वलित होता है, जिस आलोक में जीवन सार्थक होने का विश्वास दृढ़तर होता है, [illegible] सद्भाव निर्माण का अटल निश्चय अंतःकरण में प्रस्थापित होकर [illegible] को सदुद्योग में रत होने की जिससे प्रेरणा प्राप्त होती है, वह पुनीत पर्व अपने हिंदू-समाज के सर्वांगीण पुनरुत्थान की [illegible] स्वयंसेवक संघ के लिए अति महत्त्व का प्रतीत होना स्वाभाविक है।

[illegible]

> हमारे दर्शन के अनुसार विश्व का यह द्वैतस्वरूप, तीन गुणों के असंतुलन के कारण है। यदि इनमें पूर्ण संतुलन हो जाए तो यह विश्व अपनी अव्यक्त अवस्था में विलीन हो जाएगा। इस प्रकार असमानता प्रकृति का एक अविभाज्य अंग है और हमें उसके साथ रहना पड़ेगा। उसे केवल सीमाओं में बनाए रखने तथा असमानता से उत्पन्न कटुता को निकाल देने के लिए हमारे प्रयास होने चाहिए।
>
> श्री गुरुजी

वर्षप्रतिपदा

(चैत्र शुक्ल प्रतिपदा)

नूतन वर्ष के दिन बहुत से सज्जन आगामी वर्ष में कार्य करने की कुछ योजना बनाते हैं, बडे अच्छे-अच्छे निश्चय किया करते हैं और समझते हैं कि उन निश्चयों को लेकर अपना नया वर्ष बिताएँगे। पर अधिकाश के विचार केवल विचार ही रह जाते हैं, कृति से उनका कोई सबध नहीं रहता। मनुष्य-जीवन बहुत छोटा है। अतएव जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ गँवाना अनुचित है। साधारणत प्रत्येक मनुष्य सोचता है कि वह अपने जीवन का प्रत्येक पल उत्तम रीति से सत्कार्य में लगाए पर यह सब कृति में होता हुआ बहुत कम दिखाई देता है।

नूतन वर्ष में प्रवेश करते समय मनुष्य आगामी वर्ष की सुखद कल्पना से आनदित होता है। मन में नई-नई उमगें उठती हैं। उसकी आयु एक वर्ष बढ गई है, इसका खोटा अभिमान भी होता है। लेकिन यह बात ध्यान में नहीं आती कि उसकी मृत्यु एक वर्ष समीप आ गई है। यथार्थ में इस दृष्टि को सामने रखते हुए बचा हुआ कार्य और भी अधिक शक्ति, गति तथा बुद्धि लगाकर करना चाहिए जिससे वह अपनी पिछली कमी को पूरा कर आगे बढ सके। परतु वह अपनी उमग में यह भूल जाता है कि बीते हुए समय में उसने कुछ भी नहीं किया। उसे अपने ऊँचे विचारों और कार्य की विषमता का ज्ञान तक नहीं होता। यह बात केवल साधारण लोगों के जीवन और आचरण में ही नहीं, वरन् बडे कहलानेवाले अनेक लोगों में भी मिलती है। ऊँचे से ऊँचा निश्चय करने के पश्चात् मनुष्य का काय साधारण ही रह जाता है, उसका जीवन यों ही बीत जाता है। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के प्रत्येक स्वयसेवक को ध्यान में रखना चाहिए कि एक बार किए हुए विचार पर दृढ रहे और उसे अवश्य पूरा करे।

आजीवन कार्य

संघ ने अपने जीवन के प्रारंभिक काल में ही निश्चय किया हुआ है कि हमारे अंतःकरण के ऊँचे विचार केवल अपने अंतर्गत ही न रहें, उनका विकास अन्य लोगों में भी होना चाहिए। जब संघ की स्थापना हुई, तब की और हिंदू-समाज की अब की अवस्था में आज भी कोई विशेष अंतर दिखाई नहीं देता। इसलिए हमारे कार्य और विचारों में भी फेरफार की कोई आवश्यकता नहीं है। हमने निश्चय किया हुआ है कि संघकार्य आजीवन करेंगे। स्वयंसेवक ऐसा विचार नहीं करता कि मैं केवल अमुक समय तक ही हिंदू-राष्ट्र की सेवा करूँगा और फिर विश्राम करूँगा।

तन-मन-धनपूर्वक आजीवन कार्य करने के अपने व्रत के विषय में कुछ लोगों का आक्षेप भी है। एक सज्जन कहने लगे कि यह तो बड़ा भारी बंधन है। मैं भी नहीं चाहता कि कोई मनुष्य बंधन में रहे। बंधनमुक्त होने से अच्छी दूसरी कोई बात हो ही नहीं सकती। पर प्रश्न यह है कि जब मनुष्य कहता है कि मैं बंधन में नहीं रहूँगा, तब क्या वह सचमुच में यह विचार हृदय से करता है? क्या उस बंधन के प्रति उसे तीव्र घृणा है? उसका कहना विचारयुक्त है? यथार्थ में मनुष्य बंधन से मुक्ति नहीं चाहता, वह तो केवल समाज के बंधन से, समाज के प्रति उसके कर्तव्य से मुक्ति चाहता है। लेकिन वह भूल जाता है कि जब तक मनुष्य जीवित है, तब तक वह समाज से कदापि अलग नहीं हो सकता।

हिंदू-समाज व हिंदू-राष्ट्र की उन्नति करने की भाषा अनेक लोग बोलते हैं, परंतु हमें देखना है कि उन्नति के विषय में उचित विचार किया जाता है अथवा नहीं, उस विचार के अनुरूप कृति भी होती है या नहीं? हमें ज्ञात होगा कि विचार और कृति में कोई ताल-मेल नहीं है। हमें हमारे भाइयों की भलाई करनी चाहिए— ऐसी जागृति जहाँ-तहाँ दिखाई जरूर देती है, पर ये विचार इसीलिए प्रकट किए जाते हैं कि उन उत्तम विचारों के अनुसार कोई अन्य व्यक्ति काम करे। उसके अनुसार स्वतः काम करने की प्रवृत्ति विचार प्रकट करनेवालों में नहीं रहती। परंतु जहाँ कर्तव्यबोध नहीं, केवल उच्च विचार ही हैं, उसे 'जागृति' का नाम देना गलत होगा। यों तो मनुष्य स्वप्न में बड़े-बड़े महल बनाया करता है, कभी-कभी [illegible] भी बन जाता है, मगर इससे उसे वास्तविक लाभ कुछ नहीं [illegible] अवस्था में यदि वह किसी एक कुटिया का मालिक भी बन [illegible] लाभ कहा जाएगा।

वर्षप्रतिपदा

(चैत्र शुक्ल प्रतिपदा)

नूतन वर्ष के दिन बहुत से सज्जन आगामी वर्ष में कार्य करने की कुछ योजना बनाते हैं, बडे अच्छे-अच्छे निश्चय किया करते हैं और समझते हैं कि उन निश्चयों को लेकर अपना नया वर्ष बिताएँगे। पर अधिकाश के विचार केवल विचार ही रह जाते हैं, कृति से उनका कोई सबध नहीं रहता। मनुष्य-जीवन बहुत छोटा है। अतएव जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ गँवाना अनुचित है। साधारणत प्रत्येक मनुष्य सोचता है कि वह अपने जीवन का प्रत्येक पल उत्तम रीति से सत्कार्य में लगाए, पर यह सब कृति में होता हुआ बहुत कम दिखाई देता है।

नूतन वर्ष में प्रवेश करते समय मनुष्य आगामी वर्ष की सुखद कल्पना से आनदित होता है। मन में नई-नई उमगें उठती हैं। उसकी आयु एक वर्ष बढ गई है, इसका खोटा अभिमान भी होता है। लेकिन यह बात ध्यान में नहीं आती कि उसकी मृत्यु एक वष समीप आ गई है। यथार्थ में इस दृष्टि को सामने रखते हुए बचा हुआ कार्य ओर भी अधिक शक्ति, गति तथा बुद्धि लगाकर करना चाहिए जिससे वह अपनी पिछली कमी को पूरा कर आगे बढ सके। परतु वह अपनी उमग में यह भूल जाता हे कि बीते हुए समय में उसने कुछ भी नहीं किया। उसे अपने ऊँचे विचारों ओर कार्य की विषमता का ज्ञान तक नहीं होता। यह बात केवल साधारण लोगों के जीवन और आचरण में ही नहीं, वरन् बडे कहलानेवाले अनेक लोगों में भी मिलती है। ऊँचे से ऊँचा निश्चय करने के पश्चात् मनुष्य का कार्य साधारण ही रह जाता है, उसका जीवन यों ही बीत जाता है। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के प्रत्येक स्वयसेवक को ध्यान में रखना चाहिए कि एक बार किए हुए विचार पर दृढ रहे और उसे अवश्य पूरा करे।

समाज की उन्नति स्वत करेंगे, उसकी
पुरुष परकीय सहायता की याचना
सूखी रोटी खाकर अपना जीवन व्यतीत
। हमारे पूजनीय नेता ने ये विचार समाज
और हम लोग उन विचारों को समाज
कर दिया है कि समाज की उन्नति
। इस बारे में कोई संदेह न रखते हुए

से अनभिज्ञ नहीं हैं। परतु हमारा
का हमें अभ्यास भी है। हमें अपनी
सपूर्ण शक्ति सघकार्य में लगानी
हो हमें सघकार्य को अवश्यमेव आगे

सुख की लालसा करना व्यर्थ है।
करना किसी काम का नहीं।
है कि आगे काम आएगी। अत
उपयोग वह स्वय नहीं कर पाता।

कोई चिरजीव नहीं रह सकता।
ही उसका साफल्य है। शरीर का
महत्त्व समाज-हित में कार्य
जलाने में है। एक अग्रेज कवि

ındred year
sere

सघ-कार्य मे योगदान

आज इस मगल-प्रसग पर हम अपने निश्चय को दोहराते हुए आगे बढने का सकल्प करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व पूजनीय डा हेडगेवार जी ने कार्य की मर्यादा शहरों में तीन प्रतिशत और ग्रामों में एक प्रतिशत बतलाई थी। उस मयादा तक पहुँचने के लिए हमें कार्य करना है।

आज का दिन अपने लिए एक दूसरी दृष्टि से भी महत्त्व का है। सघ की कल्पना को मूत रूप देनेवाले आद्य सरसघचालक पूजनीय डा हेडगेवार जी का जन्म आज के ही दिन हुआ था। ऐसे कई महात्मा और ईश्वरावतार, जो हमारी इस भूमि में हो चुके हैं, उनमें से अधिकाश के जन्मोत्सव हमारे समाज में मनाए जाते हैं, परतु इन त्यौहारों को मनाते समय उन महापुरुषों के जीवन को आदर्श मानकर उसके अनुरूप अपना जीवन बिताने का निश्चय कितने लोग करते हैं?

पूजनीय डाक्टर जी की जन्मतिथि मनाते हुए हम लोग इस सस्मरणीय प्रसग पर जो कुछ विचार करते हैं और कहते हैं, उसे अक्षरश अधिक तीव्रता से कृति में उतारें। कठिनाइयों पर ध्यान न देते हुए आगे बढें ओर विश्राति की कल्पना छोडें। सघ-प्रवर्तक ने सघकार्य को विस्तार देने में कितना कष्ट झेला, किस प्रकार अपना खून-पसीना एक किया, उसका स्मरण करें। उस महापुरुष ने जिस महान कार्य को बीजरूप से विशाल वृक्ष बनाया, जिसके लिए उन्होने भगीरथ प्रयत्न किया और अत मे अपने आपको उसी में मिलाया, उस महान यज्ञ में हम अपना अपना पूर्ण योग दे।

सघकार्य केवल घर बैठे रहने और विचारमग्न रहने से नहीं होगा। हमें स्वत परिश्रम करना होगा। जब आवश्यकता होगी, तब हमें बुला लिया जाएगा, इस प्रकार के पराएपन के भाव से विचार तथा निश्चय करने से कोई लाभ नहीं। लाभ तो सघकार्य से एकत्व होने में है, सघ-कार्य को जीवन-कार्य बनाने में हे।

सपूर्ण शक्ति कार्य मे लगाएँ

सघकार्य में केवल एक मूलगामी सिद्धात सामने रखा गया है कि पराए लोग हमारे सहायक नहीं हो सकते। उनसे सहायता की अपेक्षा करना हमारे हित में नहीं है। प्रत्येक समाज को अपनी आवश्यकताएँ स्वय ही पूरी

करनी पडती हैं। हम अपने समाज की उन्नति स्वत करेंगे, उसकी कमजोरियों को दूर करेंगे। स्वाभिमानी पुरुष परकीय सहायता की याचना कर वैभव प्राप्त करने की अपेक्षा सूखी रोटी खाकर अपना जीवन व्यतीत करना अधिक अच्छा समझता है। हमारे पूजनीय नेता ने ये विचार समाज के सामने बडी तेजस्वी वाणी में रखे और हम लोग उन विचारों को समाज के सामने दुहराते हैं। इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि समाज की उन्नति के लिए सगठन ही एकमेव मार्ग है। इस बारे में कोई सदेह न रखते हुए आगे बढने में ही पुरुषार्थ है।

हम आज की विकट परिस्थिति से अनभिज्ञ नहीं हैं। परतु हमारा मार्ग निश्चित है और उस पर चलने का हमें अभ्यास भी है। हमें अपनी सारी अन्य बातों को स्थगित कर अपनी सपूर्ण शक्ति सघकार्य में लगानी चाहिए। चाहे जितना भी कष्ट क्यों न हो हमें सघकार्य को अवश्यमेव आगे बढाना है।

शरीर नश्वर है अत शरीर-सुख की लालसा करना व्यर्थ है। कजूस के समान अपने शरीर का सरक्षण करना किसी काम का नहीं। कजूस सपत्ति-सचय इस आशा से करता है कि आगे काम आएगी। अत में सपत्ति छोडकर मर जाता है। उसका उपयोग वह स्वय नहीं कर पाता। इस प्रकार का जीवन किस काम का?

इच्छा होने पर भी इस ससार में कोई चिरजीव नहीं रह सकता। अतएव यह शरीर सत्कार्य में लगे, इसमें ही उसका साफल्य है। शरीर का उपयोग चिता पर जलने में नहीं, वरन् उसका महत्त्व समाज-हित में कार्य करने, उसके लिए अपने आपको क्रमश जलाने मे है। एक अग्रेज कवि ने कहा है—

It is not growing like a tree
In bulk doth make Man better be
Or standing long an oak three hundred year
To fall a log at last dry, bald and sere
A lily of a day
Is fairer far in May
Although it fall and die that night
It was the plant and flower of light

In small proportions we just beauties see,
And in short measures life may perfect be

(वृक्ष के समान भारी-भरकम बढने से या तीन सौ वर्षों तक जीने के बाद अंत में शुष्क, पर्णहीन और म्लान होनेवाले ओक के वृक्ष के समान जीवन बिताने से मानव श्रेष्ठ नहीं बनता। लिली का फूल मई में एक दिन के लिए खिलकर शाम को झर जाता है। फिर भी उस पौधे और पुष्प का जीवन उज्ज्वल है। हम छोटे से विस्तार में भी सौंदर्य की झलक पाते हैं। अल्पायु में भी जीवन सार्थक हो सकता है।)

डाक्टर जी का ऐसा जीवन अपने सामने है। यही हमारा आदर्श है। हम अपने शरीर, बुद्धि धन की ओर दुर्लक्ष्य कर आज के दिन यह निश्चय करें कि हम अपने पूजनीय नेता डाक्टर जी के जीवन के अनुसार जीवन बिताएँगे।

सकट काल मे परख

सघ पर प्रतिबध लगने के पश्चात् दो वर्ष वर्ष-प्रतिपदा का यह पवित्र एव श्रेष्ठ दिन कारागृह में व्यतीत करना पडा। अपने दिन-प्रतिदिन के कार्य से निवृत्त होकर कारावास के सौख्य का लाभ और अनुभव हमारे में से अनेकों को लेना पडा। परतु अच्छे-बुरे कैसे भी दिन हों, वे आते हैं और जाते हैं। ऐसी रात नहीं, जो व्यतीत होकर सूर्योदय न हो। वैसे ही वे दिन भी बीते। सकटों का सहवास मिला। जो सकट चले गए, उन्होंने कुछ सीख भी दी। अपनी दृष्टि से यह सीख महत्त्वपूर्ण रही। सघ का स्वयसेवक चारों ओर होनेवाली घटनाएँ देखता है, उस पर विचार करता है। अपने कार्य के अधिष्ठान-स्वरूप जो प्रणाली हमने मानी है, वह कितने महत्त्व की, उपयुक्त है या उसमें कितना ओर क्या न्यून है, उसे वह परख पाता है।

पिछले दो वर्षों में अपने देश में जो भिन्न-भिन्न घटनाएँ हुइ, उनपर विचार करें तो कहना होगा कि अपने इस अति प्राचीन राष्ट्र ने आज तक अपना चिरजीवित्व कायम रखा। प्राचीन परपरा की महान धारा अक्षुण्ण रखी। परतु अब इस राष्ट्र में कुछ ऐसी विचित्र भावनाओं एव विचारों को स्थान मिला है कि वह धारा पुन वेगवान चैतन्ययुक्त करने के प्रयास किए बगैर इस राष्ट्र को उन्नति का मार्ग दिखाई नहीं देगा। इस राष्ट्र की उन्नति के लिए उसमें प्रवेश कर गए दोष प्रयत्नपूर्वक दूर करना, यही अपरिहार्य उपाय है।

राष्ट्रीय चरित्र का महत्त्व

समाज में व्याप्त दोषों का विचार करने पर अपने को अनेक दोष दिखाई देंगे। उनकी सूची बनाने बैठे तो एक लंबी सूची बनेगी। पर मैं एक ही बात आपके सम्मुख रखता हूँ। उसमें दो प्रकार की कल्पनाओं का अंतर्भाव है। अपना आज का समाज-जीवन राष्ट्रीय चरित्र से समृद्ध नहीं है। इसका अर्थ यही है कि राष्ट्रीय चारित्र्य की महत्ता और व्यक्ति-जीवन के स्वार्थ से अधिक महत्त्व राष्ट्रसेवा को देने की भावना प्रकट नहीं होती।

राष्ट्रीय चरित्र से संपन्न अंतःकरण में ही ऐसा भाव निर्माण होता है कि हम इस महान राष्ट्रपुरुष के अंगप्रत्यंग हैं। इन अंगों से युक्त राष्ट्रीय चरित्र का परिपोष राष्ट्र-जीवन में नहीं हुआ तो इस राष्ट्र के सम्मान की आशा नहीं कर सकते। इतना प्राचीन देश, यहाँ इतना बुद्धिमान तथा विविध गुणसंपन्न विद्वान समाज है, पर दुनिया में उसे आज सम्मान नहीं है। वह सबके उपहास का विषय बना हुआ है। फिर भी उस राष्ट्रीय चरित्र की निर्मिति और राष्ट्र के आवश्यक जीवनतत्त्व के प्रति उसकी भावना दुर्लक्ष्य है।

आत्मविश्वास चाहिए

भेडिये और कुत्ते की एक छोटी-सी कथा है। एक पालतू कुत्ते का सारी आवश्यकताओं और विलासिता से पूर्ण भरा-पूरा जीवन देखकर भेडिये के मन में वैसा ही जीवन जीने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने कुत्ते से इस बारे में बात की। बात करते समय उसका ध्यान कुत्ते के गले में पडे पट्टे पर गया। उसने कुत्ते से इस बारे में पूछा। कुत्ते ने बताया कि मेरा मालिक कभी-कभी मुझे इससे बाँधकर रखता है। यह सुनते ही भेडिये का विचार बदल गया और उसे कुत्ते के सुखी जीवन के प्रति तिरस्कार उत्पन्न हुआ। वह यह कहकर जंगल में चला गया कि जंगल में स्वच्छंद घूमूँगा, खाने के लिए नहीं मिला तो वहीं मरूँगा, पर गले में पट्टा नहीं डालूँगा। ऐसा लगता है कि Freedom from wants के लिए चीखनेवालों में उस भेडिये से भी कम बुद्धिमत्ता है।

राष्ट्र के चरित्र के स्तर को उन्नत करने के लिए इसी भावना की आवश्यकता है। जीवन भले ही नष्ट हो पर यही लालसा रहे
सारी शक्ति, प्रतिष्ठा, बुद्धि, संपत्ति राष्ट्र की स्वतन्त्रता की
उन्नति के लिए न्योछावर करेंगे। प्रत्येक अंतःकरण में यह

एक अमिट संस्कार, इस नाते से निर्माण करना, उसे संगठन के सूत्र में गूँथकर एक महान राष्ट्रव्यापी सामर्थ्य का निर्माण करना है।

कई लोगों को लगता है कि समाज संघकार्य समझ नहीं सकेगा। पर अपना कार्य समझने की योग्यता समाज में नहीं होती, तो यह कार्य बढ़ता नहीं, इसे लोकमान्यता नहीं मिलती। हम स्पष्ट अनुभव करते हैं कि एक व्यक्ति द्वारा प्रारंभ किया गया कार्य सर्वत्र फैला। अपने समाज में कुछ परिवर्तन हुआ है या समाज की बुद्धि कुछ बदल गई है, ऐसी तो कोई बात है नहीं। परिस्थिति वही है, समाज भी वही है। लोग टीका-टिप्पणी करते हुए दोष निकालने का प्रयत्न जैसा पहले करते थे, आज भी करते हैं। मैं तो यही कहूँगा कि अपना स्वयं पर से ही विश्वास घटा है, इसी कारण ऐसी बातें की जाती हैं।

चारों ओर भाँति-भाँति के विचारों का शोर है। दलों की भरमार है। छोटे-छोटे गुट सक्रिय हैं। इन सभी का शोर मिलकर भारी कोलाहल सुनाई देता है। इसलिए ऐसा लगता होगा कि हम अपनी पद्धति से कार्य नहीं कर पाएँगे, लेकिन यह विचार योग्य नहीं। बाहर कितना भी कोलाहल हो, सफलता केवल अपने को ही मिलेगी, केवल आत्मविश्वास चाहिए। अभी तक आत्मविश्वास से कार्य करने के कारण ही कार्य हुआ है। अतः वह हो नहीं सकता, यह कहना उचित नहीं।

आत्मविश्वासपूर्ण शब्दों का सामर्थ्य

आत्मविश्वासपूर्वक उच्चारित शब्दों में क्या सामर्थ्य होता है इसकी एक घटना स्मरण आती है। एक बैठक में विद्वान, सुशिक्षित लोग उपस्थित थे। बैठक में सर्वसाधारण पद्धति के अनुसार संघ की विचार-प्रणाली रखी गई। जब कहा गया कि हिंदुस्थान हिंदुओं का देश है, इस देश की जिम्मेदारी सर्वथा हिंदुओं पर ही है, तब उपस्थित लोगों में से कुछ को भारी धक्का लगा। हिंदू कहा जाने पर उन्हें मरणप्राय दुःख हुआ। अपने समाज में कोई और गुण हो या न हो, वाक्पटुता का गुण बहुलता से है। वितंडावाद की प्रवृत्ति का शिकार होकर उन लोगों ने बैठक में भाँति-भाँति के संदेह प्रकट किए। यथासंभव, शांति से उन्हें उत्तर देने का प्रयत्न भी किया गया, पर वे कोई बात मानने को तैयार ही नहीं थे। कई लोगों को सामने वाले की किसी बात को न मानने [illegible] ...न [illegible] बौद्धिक कसरत में वे माहिर होते हैं। एक [illegible] में ...

कहता है, हिंदुस्थान हिंदुओं का है?' उनके इस प्रश्न पर अपने डाक्टर जी ने आत्मविश्वासपूर्वक कहा– 'मैं केशव बळिराम हेडगेवार कहता हूँ।' उनकी वाणी की पराकाष्ठा की प्रखरता से प्रश्नकर्ता चुप हो गया और सारा वितंडावाद वहीं समाप्त हो गया।

उस प्रतिकूल परिस्थिति में १०-१५ वर्ष पूर्व जो आत्मविश्वास कार्यवृद्धि में समर्थ रहा, क्या वह आज प्रभावी नहीं होगा? आत्मविश्वास के बल पर ही कार्य पूरे होते हैं। उसके अभाव में कार्य नहीं हो पाते। भले ही लोग आज न मानें, उसकी नाराजी नहीं, शोक भी नहीं, पर अपने अहर्निश प्रयत्नों से उन्हें सत्य का दर्शन कराएँगे, उनसे स्वीकृत कराएँगे, इसी आत्मविश्वास से काम होगा, अन्यथा नहीं।

आत्मार्पण से सफलता

कई लोगों को कार्य पूर्ण होने की, इधर-उधर भागने की जल्दी होती है। वे सोचते हैं कि चारों ओर आतंक है, ऐसी स्थिति में हम दक्ष-आरम क्यों करते रहें? इस पद्धति से काम करना उन्हें नीरस लगता है, उकताहट होती है। डाक्टर जी ने जिस काम में अपना पूरा जीवन लगा दिया, जिसका दिन-रात चिंतन किया। किसी भी प्रकार का परिश्रम करने से वे पीछे नहीं हटे। हृदय में ज्वालामुखी समान आग धारण कर कार्य किया। अपना आत्मविश्वास कभी घटने नहीं दिया। उसी प्रखर आत्मविश्वास से आत्मार्पण कर हमने कार्य किया तो सफलता मिलनी ही चाहिए। सब कुछ ठीक है, केवल आत्मविश्वासपूर्वक कार्य करनेवाले, आत्मार्पण करनेवालों की संख्या पर्याप्त नहीं है। इसे समझ लें और एकसूत्र, एकात्मभाव, एक हृदय के अनुशासित लाखों लोग जमा करें। हृदय की एकता समाविष्ट कर समष्टिरूप हृदय का निर्माण करें। उसी में सभी संदेहों का उत्तर है।

आज तक के आग्रहपूर्वक किए गए प्रयत्नों से परिस्थिति में कुछ अनुकूल परिवर्तन हम देख पाए हैं। जहाँ हिंदू कहलाने में लज्जा अनुभव होती थी, वहीं अब ऐसे लोग मिलते हैं जो हिंदू कहलाने में आनंद, प्रेम, अभिमान मानते हैं। हम व्यर्थ के संदेह छोड कर, संपूर्ण शक्ति से कार्य करें, यह भूमि पुनः एक बार दुनिया में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर सकेगी, अन्यथा क्या होगा, यह हमारे सामने है ही।

हिंदू-साम्राज्य दिन

(ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी)

हिंदू-साम्राज्य दिनोत्सव को अपने कार्य के सबध में प्रेरणा प्राप्त करने हेतु हम लोग विशेष पर्व मानते हैं। जब परकीय लोगों ने इस पवित्र देश में अपने राज्य प्रस्थापित करते हुए इस भूमि के पुत्रों को दासता का जीवन बिताने के लिए बाध्य किया, तब से निरतर पराभव के बीच यदा-कदा हमारा पौरुष प्रकट हुआ, पराक्रम की झलक दिखाई दी, कभी कुछ सफलता भी प्राप्त हुई, परतु उस सफलता को स्थायी रूप देकर जनसाधारण में उसके द्वारा आत्मविश्वास के निर्माण का कार्य नहीं हुआ।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी अपने इतिहास का अत्यत पवित्र दिवस है। इसी तिथि पर निकटतम भूतकाल में हिंदू-राष्ट्र के पुनरुत्थान का परिचायक एक भव्य प्रयास सपन्न हुआ था। मैं समझता हूँ कि इन तीन सौ वर्षों में उस पर्व की स्मृति को दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक उज्ज्वल बनाते रहने का श्रेय इसी दिवस को है। अत इस दिन के महत्त्व का भली-भाँति विचार करना हमारे लिए बडा लाभदायक होगा।

अपनी राष्ट्रीय जीवनधारा का साक्षात्कार एव परिचय शब्दों द्वारा नहीं कराया जा सकता, किंतु इस सास्कृतिक पुण्यधारा में जिन महापुरुषों ने अपना जीवन प्रकट किया, जिनके कारण यह प्रवाह अखडित रूप से बहता रहा, ऐसे श्रेष्ठ महापुरुषों के जीवन का हमें अभ्यास करना चाहिए। हम उनके गुणों का अनुसरण करें, जिसके कारण पूरे समाज-जीवन की उज्ज्वल आकाक्षाओं की साकार मूर्ति बन सके। अपने धर्म, सस्कृति, इतिहास व परपरा की उक्त महान आत्माओं की स्मृति हमारे हृदय में सदा जागृत रहना परम आवश्यक है। उनके स्मरण से हम स्वत के जीवन की सफलता का मार्ग व अपने कर्तव्य का पक्ष निर्धारित कर सकते हैं। इसी हेतु यह परिपाटी बनाई गई है।

अकर्मण्यता की मनोवृत्ति

स्वभावत हमारा हिंदू-समाज भक्तिप्रवण है। ईश्वर की उपासना करने और जिसमें श्रेष्ठता का अनुभव होता हो, वहाँ ईश्वरीय अश की कल्पना करते हुए भक्तिभाव के साथ मस्तक झुकाने की एक स्वाभाविक धारणा हमारे समाज में जड पकडी हुई है। सामान्य समाज की धारणा है कि महान आत्माएँ ईश्वराश होने के कारण उन्हें अलौकिकता प्राप्त होती है। यहाँ तक उक्त धारणा में कोई भूल नहीं है, परतु आगे बढकर इन सारे महापुरुषों को मानवता के परे समझकर ईश्वर की श्रेणी में ढकेल देने की भ्रमपूर्ण प्रवृत्ति समाज में विशेष रूप से पाई जाती है। इस प्रकार महापुरुषों को ईश्वर की श्रेणी में ढकेलकर हम एक तरह से छुटकारा पाने की चेष्टा करते हैं।

साधारण व्यक्ति स्वत को दीन-हीन, दुर्बल व लाचार समझता है और आशा करता है कि परमेश्वर अवतार लेकर सकट में उसकी रक्षा करे, सकट का सामना करते हुए आत्मरक्षा करने की जिम्मेदारी उसके सिर पर न पडे, वह आराम से घर बैठा रहे और भगवान की कृपा से सब कुछ ठीक-ठाक हो जाए। यह चेष्टा जीवन के प्राय सभी क्षेत्रों में पाई जाती है। योग्य परिश्रम कर, अपना कर्तव्य करते हुए, सुख अथवा दु ख की तनिक भी चिता न करते हुए सकटों का सामना करने की पुरुषार्थयुक्त भावना कम ही दिखाई देती है। अधिकतर कष्ट और सकट की बला टालने और सुख-चैन का जीवन बिताने की मनोवृत्ति का ही परिचय मिलता है। सर्वसाधारण की विचारधारा का यह भारी दोष है।

हम श्री रामचद्र जी को विष्णु का अवतार मानकर हजारों वर्षों से उनकी पूजा करते आए हैं, परतु पूजा करते समय मन में यह आकाक्षा कदापि नहीं रहती कि हम उनके जैसे बनने का प्रयास करेंगे, उनके दिव्य गुणों को अपनाएँगे और अपने जीवन में 'राम' पैदा करेंगे। आज भी यह भ्रममूलक भावना हमारे समाज के प्रत्येक व्यक्ति में ठूँस-ठूँस कर भरी हुई है।

इस भ्रमपूर्ण मनोवृत्ति का परिचय देनेवाला उदाहरण अभी-अभी लोकमान्य तिलक जी के सबध में आया है। तिलक जी न के एक अतिश्रेष्ठ कर्मयोगी महापुरुष तथा राष्ट्रीय नेता थे। के पश्चात् उनके अनुयायियों और जनता ने उनके

का अनुसरण करने का प्रयत्न कर उनकी राजनैतिक परपरा को स्थायी बनाने के स्थान पर उनके पुतले खडे किए, स्कूल खोले, चदा जमा किया, जयतियाँ मनाईं। यहाँ तक कि उनका 'चतुर्भुज' चित्र छापकर भगवान कहकर उनकी पूजा की और यह सूचित करने की चेष्टा की कि तिलक जी अवतारी पुरुष थे।

श्रेष्ठ पुरुषों को मानव श्रेणी के बाहर ढकेल देना मनुष्य की एक प्रकार की दुर्बलता ही है। मनुष्य को क्या हक है कि अपने मामूली व्यवहार में भी सहायता करने के लिए वह ईश्वर को बुलाए और स्वत अकर्मण्य बन हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहे, मानो भगवान को दूसरा कुछ काम-धधा है ही नहीं। जब भी हम पुकारें, वह तुरत दौडता चला आए।

हमें समाज की इस मनोवृत्ति को बदलकर पौरुष और प्रयत्नशीलता की मनोवृति निर्माण करनी है। समर्थ रामदास ने कहा है— 'प्रयत्न ही परमेश्वर है।' हम इसी प्रयत्नरूप परमेश्वर का सहारा लें। यह हमारी कर्तव्यभूमि है, इस प्रकार की भावना रखकर प्रयत्नपूर्वक कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होना चाहिए। यहाँ पर महान आत्माओं की पूजा होगी, सम्मान होगा, पर परमेश्वर के नाते नहीं, श्रेष्ठ मानव के नाते। साधारण मनुष्य अपने प्रभाव से परिस्थिति बदलकर जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्णरूपेण सफल होता है।

विपत्तियो का परिणाम

किसी समाज पर जब लगातार विपदाएँ आती हैं, सर्वत्र निराशा के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता तब समाज में भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। कुछ लोग सकटों से त्रस्त होकर ईश्वर की शरण लेते हैं, तो कुछ हाथ पर हाथ रखकर बैठना पसद नहीं करते। उनके अतकरण में अग्नि होती है, वे अपनी तेजस्विता की चमक दिखलाकर मर-मिट जाना अधिक पसद करते हैं। क्रोधवश कुछ न कुछ करके मर जानेवाले इन लोगों की मृत्यु से साधारण मनुष्य चकाचौंध हो जाता है। वह ऐसे लोगों को 'हुतात्मा' कहकर उनकी भूरि-भूरि प्रशसा करता है, उन्हें श्रद्धाजलियाँ समर्पित करता है।

हमारी भारतीय परपरा को छोडकर ससार की सभी सभ्यताओं में इस प्रकार के हुतात्माओं की पूजा की जाती है, उनको आदर्श माना जाता है। परतु भारतीय सस्कृति की परपरा में इस प्रकार का आत्मबलिदान कुछ

अश में दुर्बलता का चिह्न माना जाता है। हमारे धर्म, सस्कृति, तत्त्वज्ञान को यह स्वीकृत नहीं कि मनुष्य अपने अत करण की दुर्बलता का शिकार वने, क्योंकि प्रतिक्रिया को वुद्धिहीनता का लक्षण माना गया है। वुद्धिहीन पशु ही प्रतिक्रियात्मक जीवन बिताते हैं। शात चित्त से, बुद्धिमानी से काम लेते हुए सोच-विचार कर विकट परिस्थिति को पार करने की उनमें शक्ति नहीं होती।

इसमें कोई सदेह नहीं कि ऐसे मर-मिटनेवाले मनुष्य वीर पुरुष होते हैं, उनका तत्त्वज्ञान पौरुषयुक्त होता है, पर उनके जीवन में कुछ न कुछ वडा दोष, त्रुटि अवश्य रहती है, परिस्थिति वदल देने की शक्ति उनमें नहीं होती। परिस्थिति का स्वामी वनने के वदले परिस्थिति से प्रभावित होकर जो कुछ वनता हो, सो कर जाते हैं। पर वे अपने जीवन में असफल रहते हैं, इसलिए हमारे आदर्श नहीं हो सकते। हुतात्माओं का कुछ उपयोग नहीं– ऐसा कोई भी नहीं कहेगा। राष्ट्र के उत्थान में वे भी एक आवश्यक सीढी हुआ करते हैं। ऐसे हुतात्माओं की सख्या हमारे समाज में कम नहीं है। राजपूतों का इतिहास इसी प्रकार की रोमाचक कथाओं से पूर्ण है। ऐसे वीर पुरुष पारलौकिक जीवन के अधिकारी होते हैं। इन हुतात्माओं के लिए विदुर नीति में कहा गया है–

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनो।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखेहता ।।

(महाभारत ३३-६१)

हॉं, इतना अवश्य मानना होगा कि निराशा के कारण अकर्मण्य अथवा घबराकर रोनेवाले, स्वार्थी और कायर लोगों की अपेक्षा ये लोग कहीं अधिक ऊँची श्रेणी के होते हैं, पर उच्चता की यह चरम सीमा नहीं हो सकती। महानता तो जीवन में पूरी सफलता पाने में ही है।

हमारी परपरा में उनका पूजन किया जाता है, जिन्होंने सर्वथा विषम अवस्था में परिस्थिति वदल देने की असाधारण शक्ति व योग्यता प्रकट की हो। अपने सारे अवतारी पुरुषों के जीवन में हम यही पाते हैं। ऐसे महानुभावों को धर्म-सस्थापक अथवा युग-प्रर्वतकों की श्रेणी में स्थान दिया जाता है।

क्षात्र धर्म के विषय में भ्रम पैदा हो जाने से
शिकार होकर क्षत्रिय लोग मर-मिटने में ही जीवन की

पर बुद्धिमान मनुष्य हृदय में सदा विजय की आकाक्षा रखता है। श्री रामचद्र जी ने अपने जीवन में इसी नीति से काम लेकर सफलता प्राप्त की थी। स्त्री हत्या क्षात्रधर्म के विरुद्ध मानी गई है, पर उन्होंने त्राटिका (ताडका) राक्षसी का वध किया। वृक्ष की आड में छिपकर बाली को बाण मारा, क्योंकि आततायी स्त्री हो अथवा पुरुष, उसको मारकर शाति स्थापित करना ही धर्म है।

इतिहास का दुरुपयोग

आज कल अपने इतिहास को 'पुराण कथा' बताकर उनपर अविश्वास कर मनगढत बताया जाता है। ऐतिहासिक अनुसधान एक फैशन बन गया है। उसका सहारा लेकर श्रीराम और श्रीकृष्ण के अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिह्न लगाया जाता है। परतु निकटवर्ती भूतकाल में एक महापुरुष हुए हैं, उनके ऐतिहासिक अस्तित्व के विषय में सदेह करने की कोई गुजाइश नहीं है। उन छत्रपति शिवाजी महाराज की असाधारण योग्यता असदिग्ध है। हालाँकि कुछ महानुभाव भिन्न-भिन्न प्रकार की भ्रमपूर्ण धारणाएँ लेकर उस महापुरुष की उपेक्षा करने की विफल चेष्टा करते हैं, क्योंकि आक्रमणकारियों को गले लगानेवालों और हिदू-मुस्लिम एकता का दिवास्वप्न देखनेवालों को विजयशीलता के प्रतीक शिवाजी महाराज असुविधाजनक महसूस होते हैं। इसलिए इतिहास की पुस्तकों में उन्हें मामूली लुटेरा, बागी, पहाडी चूहा आदि बताकर उनका प्रभाव नष्ट कर, उनके जीवन-कार्य को छिपाने का प्रयत्न किया जाता है।

भ्रम-निर्माण करनेवाले लोगों ने जब देखा कि शिवाजी का स्थान जनता के हृदय-सिहासन पर अचल है, तब उन्होंने अनेक प्रकार के भ्रम फैलाने की कुचेष्टा की। बीसवीं सदी के अनुकूल विचार उनके जीवन से प्रकट किए जाने लगे कि शिवाजी हिदू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे। यह बतलाने के लिए कहा गया कि उनकी सेना में मुसलमान भी थे। उन्होंने अपने शत्रु मुसलमानों की कब्रें बनवाई। कभी कोई मस्जिद नहीं तोडी, मगर इससे हिदू-मुस्लिम एकता की पुष्टि कैसे होती है? यह सत्य है कि उनकी सेना में कुछ मुसलमान थे, लेकिन उनमें इतनी शक्ति थी कि वे उन मुसलमान सैनिकों को मुसलमानों के विरुद्ध लडा सकते थे। इसको नहीं भूला जा सकता कि उनके सारे प्रयत्न आक्रमणकारी आततायी मुगल सत्ता को उखाड फेंकने के लिए ही थे।

अंग्रेजों ने हिंदू-मुसलमानों को अपनी सेना में भर्ती कर, उनके द्वारा हिंदुस्थानियों को मरवाकर अपना राज्य स्थापित किया, यहाँ के स्वामी बन गए। इस आधार पर क्या हम कह सकते हैं कि अंग्रेजों की सेना में हिंदू थे, इसलिए आंग्ल-हिंदू एकता हो गई। सन् १८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम के बाद जब नानासाहब पेशवा नेपाल में शरण लेने गए, तब नेपाल ने अंग्रेजों के विरुद्ध उनको सहायता देने से मना कर दिया। इसका अर्थ यह तो नहीं कि इंग्लैंड और नेपाल की एकता हो गई अथवा उनका एक राष्ट्र हो गया। क्या शत्रु की समाधि बनवाना एकता का चिह्न है। यह तो शिवाजी महाराज के स्फूर्तिप्रद और अविस्मरणीय नाम से लाभ उठाने की कुचेष्टा मात्र है।

इसी प्रकार साम्यवादी उन्हें अपने दल में शामिल कर साम्यवादी क्रांतिकारी सिद्ध कर रहे हैं। उनके अनुसार, शिवाजी महाराज वर्ग-संघर्ष के पक्षपाती थे। इसीलिए उन्होंने जनता और किसानों को जमींदारों के चंगुल से मुक्त कराया था। यह सत्य है कि उन्होंने किसानों (मावलों) को संगठित किया, पर उन्नीसवीं शताब्दी के कार्ल मार्क्स की किताबें पढ़कर सत्रहवीं शताब्दी के शिवाजी महाराज ने वर्ग-संघर्ष दूर करने के लिए आंदोलन किया, हास्यास्पद तर्क है। सच तो यह है कि शिवाजी महाराज एक महान वास्तविकता होने के कारण कोई भी दल उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। अत: उस महान आत्मा के प्रखर तेज को नष्ट करने के लिए ही इस प्रकार का भ्रामक प्रचार चलता है। पर ऐसा करना खुद की आँखों में धूल झोंकना है।

शिवाजी महाराज को 'पथभ्रष्ट' कहकर किसी समय निंदा करनेवाले को भी सर्वत्र अंधकार देखकर हार्दिक भाव से गद्गद होकर कहना पड़ा कि 'शिवाजी महाराज के चरित्र का स्मरण किए बिना हमारा राष्ट्रीय उत्थान असंभव होगा।

शिवाजी महाराज का नाम इतना प्रभावशाली है कि आज ३०० वर्षों के बाद भी उनके नाम से हड़कंप मच जाता है। हमारे समाज का अहोभाग्य है कि इतना महान तेजस्वी और यशस्वी पुरुष यहाँ पैदा हुआ। उनका विजयशाली जीवन हमारी निराशामय तथा अंधकारपूर्ण अवस्था में परम लाभदायक सिद्ध होगा। इसलिए उस महापुरुष की नीतियों के स्मरण, मनन और चिंतन की पुन:-पुन: आवश्यकता है।

शिवाजी की बात करने पर कुछ लोग कहते हैं कि वे हम जैसे साधारण व्यक्ति नहीं थे। उनका जन्म बडे ओर सपन्न घराने में हुआ था। हर तरह की साधन-सुविधा उन्हें जन्मत ही प्राप्त थीं। हमारे पास वैसा क्या है? पर यह कहना ठीक नहीं। उनके समय देश भीषण परिस्थिति से गुजर रहा था, किसी प्रकार की अनुकूलता नहीं थी, कोई साथ देने को तैयार नहीं था। हतोत्साहित और विरोध करनेवाले ही अधिक थे। यहाँ तक कि नाते-रिश्तेदार भी साथ नहीं थे। सामान्य हिदू का जीवन सुरक्षित नहीं था, मान-सम्मान तो दूर की बात थी। समर्थ रामदास जैसे सत-पुरुष के मुँह से भी निराशा के स्वर निकल रहे थे। इस प्रकार की सर्वथा तमोमय अवस्था में, जहाँ आशा की एक भी किरण अथवा मुक्ति का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता था, अच्छे-अच्छों ने शरणागति स्वीकार की हुई थी। तब उन्होंने अपना पराक्रम ओर बुद्धि-कौशल्य प्रकट कर विजय प्राप्त की थी।

वर्तमान अवस्था

आज देश के अदर समाज और राष्ट्र-जीवन को उद्ध्वस्त करनेवाली शक्तियाँ फिर से अधिकाधिक प्रबल होती जा रही हैं। उनका दुस्साहस इतना बढ चुका है कि वे अभिमान व उद्दडतापूर्वक यह कहने में कोई सकोच नहीं करतीं कि उनकी सहायता के बिना कोई भी दिल्ली में शासनाधिष्ठित नहीं हो सकता। कई प्रकार के परकीय सप्रदाय व विचार देश में सक्रिय हैं, जो पहले से विभक्त अपने इस देश के अधिक टुकडे कर खुद के लिए स्वतत्र प्रदेश बनवाने की लालसा से प्रेरित है। इन सबके प्रयासों के कारण अपने देश के उज्ज्वल भविष्य पर प्रश्नचिह्न अकित होते है।

इसके अतिरिक्त आपस के विवाद, छिन्न-विच्छिन्नता ओर इस सबकी ओर दुर्लक्ष्य करने की प्रवृत्ति, परपरागत जीवन को परकीय ढाँचे में ढालने के विचित्र प्रयासों के कारण हिदू-समाज, धर्म, सस्कृति आदि के विध्वस के कार्य में सक्रिय लोग एक-एक पग आगे रहे हैं।
चारों ओर निराशामय वातावरण है। इसीलिए हम
वर्तमान स्थिति से पार पाने के लिए हमें
नीतिज्ञ शिवाजी का पवित्र पुण्यस्मरण कर उनके
जीवन-कार्य से प्रेरणा प्राप्त । यदि

श्री

समयानुकूल अनुकरण द्वारा पूण उत्साह के साथ अपने कार्य की प्रगति में जुटे, तो अपने समग्र राष्ट्रजीवन को पुनर्प्रतिष्ठापित करने और उसे श्रेष्ठ बनानेवाले प्रचड सामर्थ्य को उत्पन्न करने की हमारी इच्छा अवश्यमेव पूरी होगी।

卐卐卐

प्रत्येक राष्ट्र का अपना विशिष्ट जीवन–सगीत रहता है और उसी की लय तरग मे राष्ट्र प्रगति–पथ पर अग्रसर होता है। अपने हिंदू–राष्ट्र ने भी अनादि काल से एक अनुपम विशिष्टता को सुरक्षित रखा है। हमारे लिए भौतिक सुख के स्वरूप अर्थात् अर्थ (सपत्ति का सचय) और काम (भौतिक तृष्णाओ का समाधान) मनुष्य के एक अश मात्र है। हमारे महान पूर्वजो ने घोषणा की है कि मानव–पुरुषार्थ के दो और भी पहलू है और वे है– धर्म एव मोक्ष। उन्होने हमारे समाज की रचना इस चतुर्विध प्राप्ति के आधार पर की है। यह चतुर्विध पुरुषार्थ है– धर्म अर्थ काम और मोक्ष। अति प्राचीन काल से हमारा समाज केवल सपत्ति एव वैभव के लिए ही प्रसिद्ध नही रहा है वरन इससे भी अधिक जीवन के उन अन्य दो पहलुओ के लिए रहा है। इसीलिए हम उच्च नैतिक आध्यात्मिक एव दार्शनिक लोग कहे जाते है जिन्होने अपना अतिम लक्ष्य अपने ईश्वर से सीधे सपर्क करने अर्थात् मोक्ष से कम नहीं रखा।

— श्री गुरुजी

गुरु-पूजा

गुरुपूर्णिमा (आषाढ़ पूर्णिमा) के अवसर पर दिये गए बौद्धिकों के प्रमुख अंश

हिंदू-समाज के अंतर्गत भिन्न-भिन्न धार्मिक पंथ, मत अथवा संप्रदाय के अनुगामी लोग अपने पंथ अथवा संप्रदाय के किसी श्रेष्ठ पुरुष को गुरु मानकर उसकी आज पूजा करते हैं। वे अपने पंथ के परंपरागत गुरु को, जो एक जीवित व्यक्ति होता है, अपना आदर्श समझकर उस आदर्श के अनुसार स्वतः को बनाने हेतु उसकी पूजा करते हैं। पर आप को पता है, गुरु-पूजा के विषय में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दृष्टिकोण अपने ढंग का है। संघ किसी जीवित अथवा मृत व्यक्ति को परिपूर्ण आदर्श के रूप में न देखता है और न मानता है। इस विषय में संघ की धारणा एकदम निराली है। हमारे धर्म में बतलाया गया है कि गुरु और परमात्मा के प्रति एक सी ही श्रद्धा रखनी चाहिए। 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।' गुरु और परमात्मा की महत्ता एक सी ही बतलाई गई है। परंतु वास्तव में विचारणीय प्रश्न है कि क्या कोई ऐसा जीव इस सृष्टि में है, जिसकी तुलना उस सृजनहार परमात्मा के साथ हो सके? क्या कोई ऐसा मृत अथवा जीवित व्यक्ति हम खोज कर निकाल सकते हैं? हर पहलू से उसका सोच-विचार करने के बाद खुली ऑखों से अपने गुरु का निश्चय करना उचित और आवश्यक है, अन्यथा बुरी तरह पछताना पडता है। गुरु वही है, जो हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शक, हमारे उद्देश्य व आदर्श की साक्षात् मूर्ति तथा हमारे कार्य का साकार स्वरूप हो।

गुरु कैसा होना चाहिए, गुरु किसे मानना चाहिए इत्यादि का वर्णन हमारे महान शास्त्रकारों ने किया है। इन सब शास्त्रकारों द्वारा वर्णित गुरु

के लिए आवश्यक सद्गुण किसी एक व्यक्ति में पा सकना असभव-सा है। गुरुत्व की इस कसौटी पर कसकर ही सघ ने परम पवित्र भगवा ध्वज को, जो हमारे हिंदू-राष्ट्र के प्राचीन गोरव, सभ्यता और इतिहास-परपरा का प्रतीक-स्वरूप है, अपना गुरु माना है।

सघ मे व्यक्तिपूजा नहीं

जब तक फूल पूर्ण विकसित नहीं होता, तब तक कौन कह सकता है कि वह सर्वोत्तम फूल है? उसके सर्वोत्तम होने का दावा करने में खतरा है। मनुष्य का जीवन फूल के समान है। इस जीवन-पुष्प का सपूण विकास होने देना चाहिए। उसमें किसी प्रकार का कीडा नहीं लगना चाहिए, वह पूर्णरूप से प्रस्फुटित होना चाहिए। उसके जीवन की एक-एक पखुडी खिलने देना चाहिए। किसी की कोई पखुडी यदि कहीं चिपक गई हो तो वह समझ में नहीं आएगा। इसलिए उसे विलग होने देना चाहिए। इस प्रकार चिपकी हुइ अनेक पखुडियाँ अलग-अलग होकर जीवन-पुष्प पूर्ण रूप से खिला हुआ है, ऐसा जब तक नहीं मालूम होता, तब तक किसी व्यक्ति का मूल्याकन नहीं करना चाहिए। किसी मनुष्य के सम्बध में अपने मन में इष्ट-अनिष्ट भावनाएँ रहती हैं। उसका परिणाम भी हम पर होता रहता है। इसलिए आवश्यक समय व्यतीत होना जरूरी होता है। उस व्यक्ति का मूल्याकन आनेवाली पीढियों को करने दीजिए। इसलिए गुरुस्थान पर किसी भी व्यक्ति को मान लेने पर पश्चाताप का प्रसग आ सकता है। अधूरी अवस्था के व्यक्ति को आदर्श मानने के बाद मान लो, वह व्यक्ति अपने आदर्शों, उद्देश्यों और सिद्धातों से किसी कारणवश हट जाए अथवा गलत रास्ते से जाने लगे, तब इस दुर्घटना की गलत प्रतिक्रिया उसके अनुयायियों के मन में पैदा होगी और उनके मन में समस्त ससार के विषय में घोर निराशा और द्वेप के भाव भडक उठेंगे। कुल मिलाकर परिणाम अत्यत आत्मघाती होता हे। इस प्रकार का अनर्थ सघ में पैदा न हो, इसलिए परम पूजनीय डाक्टर जी ने शुरू से हमें व्यक्तिपूजा के पाठ कभी नहीं सिखाए।

हमारे इस पवित्र ध्वज में अपनी पूर्व-परपरा को प्रकट करने की जो शक्ति है, उसको नष्ट करने के लिए न काल समर्थ है और न यमदड। इस प्रकार के चिरजीवी उदीयमान बालसूर्य का तेज धारण करनेवाले, प्राची के मुख की अरुण-ज्योति के समान इस पवित्र, त्यागमय ध्वज को हमने

गुरु माना है। इसपर हमें गौरव है। पर आखिर मनुष्य के मन की प्राकृतिक दुर्बलता को हमें भुलाना नहीं चाहिए। अव्यक्त, अमूर्त, निराकार वस्तु का पूर्णरूपेण ज्ञान होना मनुष्य की बुद्धि के ही नहीं, मन की भी शक्ति के बाहर है। वह चाहता है कि अव्यक्त, अमूर्त की कोई व्यक्त, मूर्त, चैतन्यमय, चलती-फिरती-बोलती मूर्ति हमेशा उसकी ऑखों के सामने रहे। मनुष्य का मन हमेशा इस प्रकार के सीमित, साकार, व्यक्त रूप की खोज में व्यस्त रहता है। इसीलिए हमारे धर्म में मूर्तिपूजा, अवतार-कल्पना, नाम, भक्ति-स्तोत्र आदि द्वारा निर्गुण, निराकार, अव्यक्त परमेश्वर को व्यक्त स्वरूप देकर सगुणोपासना को मोक्षप्राप्ति का एक मार्ग बतलाया है।

गुरु किसे मानना चाहिए?

किसी व्यक्ति विशेष के कुछ गुणों का अवलोकन करने पर व्यक्ति के सबध में मन में आदर की भावना निर्माण होती है, किंतु कभी-कभी कुछ काल बीतने पर वह सम्मान की भावना यथापूर्व नहीं रह पाती। जैसे-जैसे उस व्यक्ति के अन्य गुणावगुणों का परिचय होने लगता है, वैसे-वैसे उस व्यक्ति के सबध का आदर नष्ट होता जाता है। इतना ही नहीं उस व्यक्ति के बारे में मन में तिरस्कार की भावना निर्माण होती है।

मनुष्य सदैव भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियों से घिरा रहता है। उसे सुख-दुखों के अनेक प्रसगों में से जाना पडता है। उस समय हर बार उन परिस्थितियों के ऊपर घात करते हुए सर्व प्रकार के सकटों के सिर पर पैर रखकर उन्हें नष्ट कर जीवन उच्च स्तर पर रखने की योग्यता उसमें नहीं रहती। इस प्रकार की पात्रता उसमें है, ऐसा जो कोई कहता है, उसके अध पतन का प्रारम हो गया, ऐसा समझना चाहिए।

विश्वामित्र ऋषि का उदाहरण ऐसा ही है। उनकी तपस्या उग्र थी। गायत्री मत्र का द्रष्टा यह महान व्यक्ति अपने तपोमार्ग से च्युत हुआ। स्वत के ध्येय से वह च्युत हो गया। पश्चाताप करने की नौबत आ गई। इस प्रकार के उदाहरण ध्यान में रखकर इस प्रकार का गर्व किसी को नहीं करना चाहिए। मैंने सब प्रकार की अनिष्ट परिस्थितियों को पराजित किया है मुझमें कोई कमी नहीं है, उत्पन्न भी नहीं होगी-- इस प्रकार का अभिमान अर्थहीन सिद्ध होने में देर नहीं लगती। अत्यधिक गुणवान, अत्यत श्रेष्ठ और पवित्र होने पर भी व्यक्ति का अध पतन हो सकता है।

राष्ट्र के उपस्थित देवता को जाने

अपना ध्वज यही अपने राष्ट्र का उपास्य दैवत है। प्राचीनतम, तेजस्वी देदीप्यमान जीवन का मूर्तिमत प्रतीक, आत्मसम्मान की ज्योति जलानेवाला तथा अत करण में विशुद्ध भावनाओं का झरना उत्पन्न करनेवाला हे।

भिन्न-भिन्न धर्मो में मृत्यु के सबध में भिन्न-भिन्न रगों को महत्त्व प्राप्त हो चुका है। कोई काला रग अच्छा समझता है, किसी को श्वेत रग अच्छा लगता है। बौद्धधर्मी लोग पीला रग पसन्द करते हैं तो हिंदू लोगों को गेरुए रग का आकर्षण है। व्यक्ति मृत्यु के बाद दुबारा जन्म लेता है, यह कल्पना केवल भारतीयों में है। अन्य धर्मो को आत्मा की अमरता ज्ञात न होने के कारण उनमें अन्य रग प्रचलित हो गए हैं। मृत्यु के बाद मानव शरीर पीला अथवा सफेद पड जाता है। इससे उन लोगों ने सफेद, पीला आदि रग स्वीकृत किए होंगे।

भारतीयों के लिए चारों आश्रम में सबसे श्रेष्ठ सन्यास आश्रम है। इसमें सपूर्ण व्यक्तिगत जीवन का हवन करके व्यक्ति समष्टि जीवन का प्रारभ करता है। इसलिए वह गेरुए रग का वस्त्र पहनता है। उसकी इस वृत्ति के कारण वह सर्वत्र वदनीय होता है। इस प्रकार सर्वसगपरित्याग किए हुए व्यक्ति के वस्त्र के रग के समान यह अपना ध्वज है।

इतिहास का साक्षी

अत श्रद्धा के श्रेष्ठतम केंद्र और सब शक्तियों को चुनौती देनेवाले इस ध्वज को ही हम अपने हृदय में उच्चतम स्थान देंगे, इसके सामने नतमस्तक होंगे और इसी को जीवन समर्पित करेंगे, यह धारणा लेकर हम लोगों ने इस पवित्र पताका को अपना गुरु माना है। इसे सामने रखने पर अति प्राचीनकाल से आज तक के अपने राष्ट्र के सभी भव्य कार्य, सपादित समस्त पराक्रम और तेजस्विता आँखों के समक्ष प्रकट होती है। जगद्गुरु का स्थान प्राप्त करने के लिए आवश्यक सभी गुणों के समुच्चय इस एक पताका के दर्शन मात्र से अपने अत करण में श्रद्धा का भाव जागृत होता है। यह तो हमारे राष्ट्र-पुरुष अर्थात् प्रकट परमात्मा के नाते हमारे सामने है। जीवन को यज्ञरूप मानकर उसकी यज्ञ ज्वाला में स्वय को होम करने के लिए यह हमें प्रोत्साहित करता है मार्गदर्शन करता है, प्रेरणा देता है।

शिवो भूत्वा शिवम् यजेत्

जिसे अपना गुरु माना है, जिसकी नित्य पूजा करनी चाहिए, उसके गुणों को अपने में लाना चाहिए। उसके विना कर्तव्य-पूर्ति नहीं हो सकती। जो अपने गुरु के साथ अधिक से अधिक एकात्म और एकरूप होता है, वही उसका सच्चा साधक होता है। अपने यहाँ ऐसा कहा गया है कि पूजा करते-करते स्वय ईश्वर बनना चाहिए। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, जहाँ कहीं भी हम रहें, अत करण में तीव्र ज्वाला लेकर ऐसा आदर्श जीवन प्रकट करें कि प्रत्येक मुँह में हमारा ही नाम रहे। उस क्षेत्र में अपने जीवन का एक आदर्श उपस्थित करें।

केवल गध, अक्षत, फूल चढाकर पूजा करना पर्याप्त नहीं, उसमें सर्वसमर्पण की भावना होनी चाहिए। पूजा करके धन रूप से दक्षिणा अर्पण करना, उस समर्पण भावना का दृश्य स्वरूप है। स्वार्थ के लिए उपयुक्त तथा ससार की सारी उपभोग्य वस्तुएँ जिसके द्वारा प्राप्त होती हैं, वह वस्तु है धन। उसका समर्पण गुरु को किया जाए तो सर्वसमर्पण की भावना को स्पष्ट करनेवाला वह एक प्रतीक होता है। इसलिए राष्ट्र-जीवन के लिए सर्वसमर्पण करने की भावना निर्माण करने के लिए इसका उपयोग होता है। सहजता से पैसा ध्वज के सामने रखना समर्पण नहीं है। उसके पीछे तुच्छता की भावना नहीं होनी चाहिए तथा किसी के अनुरोध पर भी यह कार्य नहीं होना चाहिए। स्वय को धन के अभाव का कष्ट अनुभव होकर श्रद्धा से गुरु को धन देना चाहिए। सघ ने इसी पद्धति को अपनाया है।

गुरुदक्षिणा, याने निश्चित धनराशि देने का आग्रह अथवा नियमित रूप से इकट्ठा किया जानेवाला चदा नहीं है। यह कार्य केवल स्वेच्छा का है। जीवन कष्टमय हो गया है, कुटुब का भरणपोषण ठीक से नहीं हो पाता अथवा मैंने कम धन दिया तो लोग क्या कहेंगे, इस कारण यह पूजन टालना नहीं चाहिए। यहाँ आकर अत करण की ओत-प्रोत श्रद्धा से ध्वज को प्रणाम कर केवल एक पुष्प अर्पण किया तो भी काफी है। इस प्रकार के भाव से दिया हुआ एक पैसा भी धनी व्यक्ति द्वारा अर्पित किए गए सहस्रों रुपयों से अधिक मूल्य का है।

दक्षिणा को भीख न समझे

यदि कोई यह कहता हो कि कार्य के लिए द्रव्य की आवश्यकता है तो मुझसे हजार रुपए ले जाओ, पर मैं पूजा आदि नहीं करूँगा तो ऐसी

भिक्षा को स्वीकार करना योग्य नहीं। भिक्षा माँगना हमारा धर्म नहीं है। सघकार्य के आरभ में जिन्होंने भयकर कष्ट सहन किए, उनकी दृढ भावना, श्रद्धा और तपस्या देखकर, जिस-जिस स्थान पर वे गए, वहाँ के लोगों ने उनके शव्द सुनकर तदनुसार अपना जीवन गढने का प्रयत्न किया। अपना कार्य ऐसे कार्यकर्ताओं के कारण ही वढा है।

साल भर में एक वार दक्षिणा देना भर पर्याप्त नहीं है। केवल थोडा सा धन देने से सब कुछ कर लिया, 'तेरे पितर सरग गए' इस प्रकार की भावना रखना योग्य नहीं। यह समर्पण भावना की पूर्णता नहीं। यह अत करण की भावना का केवल एक उपलक्षण है। सघकाय के लिए प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति और वुद्धि पूर्ण रूप से काम में आनी चाहिए। इस राष्ट्र कार्य के लिए परमेश्वर की कृपा से जो कुछ प्राप्त हुआ है, वह सव गुरुचरणों में अर्पण करना चाहिए। जिस प्रकार रोज खाना, पीना, निद्रा आदि लेते हैं, उसी प्रकार पूजन भी नित्य होना चाहिए।

मनुष्य अपने मन को पसद आनेवाला उपयोगी काम व उद्योग चौवीसों घटे करता रहता है। उसमें से निश्चित समय अलग निकालकर राष्ट्र-कार्य के लिए देना चाहिए। उस समय का एक क्षण भी व्यक्तिगत कार्य के लिए उपयोग में नहीं लेना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति विश्वास से अपने पास धन रखता है, तव हम उसे सावधानी से रखते हैं, कुछ भी हो जाए, अपने निजी काम में नहीं लाते। दूसरे के धन का अपने लिए उपयोग करना एक प्रकार का व्यभिचार है। उसी प्रकार राष्ट्र के लिए समर्पित किए हुए प्रतिदिन के समय में से एक क्षण भी दूसरे काम में नहीं लाना चाहिए।

ध्वज महिमा

सामान्यत मनुष्य कोई भी काम करते समय अपने स्वार्थ का विचार करता है। इसी कारण कभी-कभी लोग प्रश्न करते हैं कि इस कार्य से हमारा क्या लाभ होगा? हम विचार करेंगे तो ध्यान में आएगा कि मनुष्य अकेला जिदा नहीं रह सकता। ऐसा कहा जाता है कि पत्नी वच्चों के दर्शन किए विना एकात में छह सप्ताह रहना पडे तो मनुष्य पागल हो जाता है, उन्मत्त हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि एकात से व्यक्ति का जीवन नष्ट हो जाता है। योग्य रीति से जीवनयापन के लिए उसे समाज की नितात आवश्यकता होती है, उसका सपूर्ण जीवन समाज पर अवलवित है।

इसलिए समाज की सुस्थिति कायम रखना भी एक प्रकार का स्वार्थ ही है।

सघ में न तो व्यक्तिगत अभिमान के लिए स्थान है और न सस्था के अभिमान के लिए अवसर है। सघ तो केवल अपने अखिल भारतवर्ष का अभिमानी है। फिर अपनी इस दिव्य ध्वजा को छोडकर अन्य किसी प्रतीक के प्रति सघ किस प्रकार श्रद्धा रख सकता है? हम दूसरे किसी ध्वज का अनादर करना नहीं चाहते, पर हमारी श्रद्धाऐं प्राचीन भारत के इतिहास और परपरागत भगवे ध्वज को ही समर्पित हैं।

यदि हम एक नया भव्य मदिर बनाकर उसमें एक मूर्ति की स्थापना कर दें, तब भी उसे सोमनाथ, काशी विश्वनाथ एव रामेश्वर के प्राचीन मन्दिरों की प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती। वह नवीन मदिर नवीन कला का नमूना बन सकता है, पर पुराने मदिर की श्रद्धा प्राप्त नहीं कर सकेगा। प्राचीन मन्दिर कैसा भी टूटा-फूटा क्यों न हो, उसमें आधुनिक कलापूर्ण कृति का कितना भी अभाव क्यों न हो, फिर भी उसमें जाकर अत्यत श्रद्धासहित सभी नतमस्तक होते हैं, क्योंकि उसके पीछे अनेकानेक पीढियों की तपस्या होती हे, आत्मसाक्षात्कार, पावित्र्य ओर आतरिक शाति देने का सामर्थ्य होता है।

काशी में विश्वनाथ जी के मदिर में कोई विशेष शोभा नहीं, सौंदर्य नहीं, कला भी नहीं है। वह तो छोटी-सी गली में स्थित एक मामूली मदिर है। परतु भारतवर्ष के कोने-कोने से हिदू उसके दर्शन के लिए जीवन में कम से कम एक बार जाने की इच्छा रखता है। परिस्थिति और आक्रमणों ने उसे अनेक बार नष्ट व भ्रष्ट किया, परतु उसके कण-कण में सहस्रावधि वर्षों की दिव्य तपस्या, त्याग, पराक्रम और आत्मसमर्पण गुफित हैं।

यदि इस ध्वज को हम भूल गए और किसी नए श्रद्धा-केंद्र के निर्माण के पीछे पडे तो नया ध्वज उस आदर्श-पूर्ति न कर सकेगा। गत हजारों वर्षों से हमारे पूर्वजों ने जिस श्रद्धा से इस ध्वज को अपना कर इस का पूजन किया, अपने अगणित बलिदानों से इस ध्वज को असाधारण गौरव तथा पवित्रता का भाजन बनाया उसी असीम श्रद्धा से उसका पूजन करें और गोरव बढाऐं। इसको भूलना अपने इतिहास को भूलना है, आत्मविस्मृति का पाप करना है।

विनाश नहीं पूर्ति

जीसस क्राइस्ट ने महान आत्माओं के सबध में कहा है कि 'वे पूर्ति

के लिए अवतार लेती हैं, विनाश के लिए नहीं।' शिवाजी के जीवन में मिलनेवाला पूर्ति-कार्य का एक उदाहरण यही है कि उन्होंने स्वराज्य स्थापना के बाद अहकारवश कोई नया ध्वज निर्माण नहीं किया। इस सास्कृतिक तथा ऐतिहासिक परपरा के उत्तराधिकारी इस भगवे ध्वज को ही शिवाजी ने अपने पराक्रम द्वारा पुन गौरव के साथ लहराया, क्योंकि शिवाजी पूर्ति करने आए थे। परपरागत आदर्शों और आकाक्षाओं की पूर्ति ही उनका जीवन कार्य था। वही सच्चा उद्धारकर्ता होता है जो पूर्ति करता है। वह परपरा तथा श्रद्धा-केंद्रो को नष्ट-भ्रष्ट नहीं करता, पुष्ट करता है। अपनी परपरा के मूत स्वरूप को आदरणीय वस्तु के रूप में समाज के सामने रखता है।

सघ कोई सस्था नहीं, अपितु अपने राष्ट्र का एक छोटा-सा प्रतीक है। भविष्य में सघ स्वय राष्ट्र बननेवाला है और यही ध्वज श्रद्धा-केंद्र के नाते राष्ट्र के हृदय में अचल स्थान प्राप्त करनेवाला है। सघ कोई सस्था न होने से उसे अलग से अपना नया राष्ट्रध्वज लहराने की आवश्यकता कभी प्रतीत नहीं हुई और न होगी।

आत्मनिष्ठा के विविध रूप

आज समाज में पराकाष्ठा की आत्मनिष्ठा फैली हुई है। कुछ लोगों की आत्मनिष्ठा द्रव्य इत्यादि का लाभ केसे होगा के स्थूल और निकृष्ट रूप में व्यक्त होती है, तो कुछ मान-सम्मान की अपेक्षा के रूप में प्रकट करते हैं।

आत्मनिष्ठा का तीसरा रूप यह होता है कि जो मैं कह रहा हूँ, वही सही है। लोग यदि उसके अनुसार नहीं चलते तो मैं राष्ट्रीय उत्थान के किसी भी कार्य में सहयोग नहीं करूँगा। आत्मनिष्ठा के भाव उत्तरोत्तर अधिकाधिक सूक्ष्म होते जाते हैं। फिर श्रद्धा कहाँ प्रारभ होती है, यह कह पाना कठिन हो जाता है। इस दृष्टि से देखें तो यह कहना पडेगा कि आज अपने समाज में कोइ भी श्रद्धा-केंद्र नहीं है।

एकमात्र चिता का विषय मनुष्य का पेट रह गया है, परतु पेट की चिता दूर होने के बाद भी मनुष्य का मनुष्यत्व जागृत होता ही है, ऐसा अनुभव में नहीं आता। उसकी सभावना भी नहीं हो सकती। अनुभव तो इसके विपरीत है। जिन्होंने बडे-बडे कार्य किए उनके पेट की व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं थी। सत तुकाराम कहते हैं कि 'बरे झाले देवा बाईल कर्कशा। ना तरी दुर्दशा झाली होती। तात्पर्य यही कि बडे लोग अपने पेट

के वारे में सभी प्रकार की उपेक्षा के लिए सिद्ध थे।

मनुष्य का जीवन विकारक्षम

मैं एक उदाहरण बताता हूँ। हमारे देश में एक बहुत अच्छे देशभक्त थे। उनकी पत्नी का देहात होने के वाद वे देश कार्य में व्यस्त रहने लगे। अपने लडके-वच्चों की देखभाल करने के लिए रिश्ते की एक विधवा स्त्री को लाए और घर की सारी देखभाल उसको सौंप दी। सत्प्रवृत्त होने के कारण वे कुछ धार्मिक ग्रथों का अध्ययन भी करते थे। इस प्रकार व्यवहार करते हुए उनके मन में ऐसा भाव आया कि राष्ट्रपुरुष व राष्ट्र का पथप्रदर्शक इस नाते से उच्च स्थान प्राप्त श्री समर्थ रामदास के दिव्य ग्रथ 'दासबोध' का, जिसमें उनका सपूर्ण व्यक्तित्व प्रकट हुआ है, यदि एक व्रत के रूप में अनुष्टानपूर्वक अध्ययन करूँ, तो उससे देश कार्य के लिए पर्याप्त शक्ति प्राप्त होगी। ऐसा सोचकर उन्होंने अध्ययन किया। एक अत्यत पवित्र स्थान में पूरे १२ वष तक अध्ययन किया। हृदय में सतोष का एक भाव लेकर अपने स्थान को लौटे। उनके लडके-वच्चे किसी तरह से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। देखभाल करनेवाली स्त्री कितनी देखभाल कर सकती थी। कोई उसका कहना मानते नहीं थे। इसलिए उस व्यक्ति ने अपने घर-वार की तरफ ध्यान देना प्रारभ किया। वच्चों की देखभाल करनेवाली स्त्री उनकी माता के समान होती है, याने अपनी पत्नी के रूप में होती है, ऐसा युक्तिवाद करके उन्होंने उससे विवाह कर लिया। १२ वर्ष तक समर्थ रामदास के वचन 'शुकासारिखे पूर्ण वैराग्य ज्याचे' का पाठ करते हुए एक विधवा स्त्री से विवाह कर अपने वारह वर्ष के तप व व्रत का उद्यापन कर डाला।

अपने गुरु का सम्मान रखें, किंतु सयम से

अपने गुरु का सम्मान, उसकी पूजा करनी चाहिए। अपने शास्त्रकारों ने कहा है कि ईश्वर की भक्ति करते समय नि सकोच होकर, लाज आदि छोडकर भरी सडक पर उसका स्मरण नाचते-गाते करना चाहिए। जहाँ सकोच, लज्जा इत्यादि के भाव रहते है, वहाँ पर ईश्वर की भक्ति, ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हो सकता। समस्त ससार के सामने खडे होकर हम यह गर्जना करें कि हमारा आदर्श क्या है। इसकी भक्ति, पूजा और इसका मान कभी कम न होगा। फिर कोई किसी प्रकार का आक्षेप नहीं करेगा। कर्तव्य और सयम की जानकारी हो इस दृष्टि से एक छोटा-सा उदाहरण वताता

हूँ। एक व्यक्ति जा रहा था। उससे किसी ने पूछा– 'कहाँ जा रहे हो?' उसने उत्तर दिया– 'मैं अपने गुरु के यहाँ जा रहा हूँ।' यह पूछने पर कि तुम्हारा गुरु कौन है। उसने गुरु का नाम बता दिया। लोगों ने कहा– 'वह तो पागल है। उसको क्या गुरु मानते हो?' गुरु के प्रति अटल श्रद्धा होने पर भी लोगो के अपशब्द सुनकर वह शात बना रहा, क्योंकि उसने सुन रखा था कि किसी को दु ख नहीं देना चाहिए, परतु उसको हृदय में बहुत कष्ट हुआ। गुरु के पास जाकर उसने, जो कुछ हुआ था, उसका पूरा हाल खिन्न मन से बताया। उसके गुरु ने कहा, 'तू कैसा शिष्य है जो अपने गुरु की निदा सुन सकता है? ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहिए। अपनी भीरुता को छिपाने के लिए तुमने नम्रता का यह स्वाँग किया। तेरे जैसे शिष्य को धिक्कार है।'

यह उदाहरण सुनकर आपके मन में यह भाव आ सकता है कि हाथ में डडा लेकर खडे हो जाना चाहिए, परतु इस प्रकार का व्यवहार करना भी योग्य नहीं है। फिर आप पूछेंगे कि तब क्या करना चाहिए? इसका भी एक उदाहरण बताता हूँ। एक शिष्य था। वह नौका में बैठकर दूसरे किनारे पर रहनेवाले अपने गुरु के पास जा रहा था। जाते-जाते नौका में बैठे व्यक्तियों के साथ इधर-उधर की बातें होने लगीं। लोगों ने जब उसके गुरु को अपवचन कहे, तो शीघ्र कोपी होने के कारण वह खडा हुआ और बाहु उठाकर बोला कि 'अब एक भी शब्द कहा तो सबको जलसमाधि दे दूँगा।' प्रबल मनुष्य देखकर निदकों की बोलती बद हो गई। उसका भीमकाय शरीर और क्रोध देखकर सब गिडगिडाकर क्षमा माँगने लगे। वह उसी आवेश में गुरु के घर गया। उसकी लाल आँखें देखकर गुरु ने पूछा– 'बहुत क्रोधित दिख रहे हो, क्या बात है?' उसी क्रोध में उसने कहा– 'लोग आपके बारे में गलत-सलत बोल रहे थे। मेरी तो इच्छा थी कि सबको जलसमाधि देकर समाप्त कर दूँ।' इस पर गुरु ने कहा– 'अरे भाई! लोग अज्ञानी होते हैं। हमको सयम नहीं छोडना चाहिए।'

ये दोनों किस्से हमारे सामने हैं। इससे हमें यही सीखना है कि गुरु का बराबर आदर करना जानें। यदि कोई अनादर करे तो हृदय के अदर ऐसी प्रदीप्त अग्नि भडक उठे कि अनादर करनेवाले को केवल नेत्र दृष्टिपात मात्र से भस्म कर दें। परतु समय और अपनी प्रगति को देखकर, उस अग्नि को सयमित भी कर सकें। मन में यह विचार रहना चाहिए कि गुरु की मानमर्यादा की रक्षा करूँगा। इस प्रकार निश्चय करने पर कार्य की

दृष्टि से बड़ा लाभ होता है।

संघनिष्ठा ही जीवन का ध्येय हो

किसी व्यक्ति को आदर्श रखकर बाद में उसका पतन देखकर मैं संघकार्य नहीं करूँगा– ऐसी विकृति हमारे हृदय को कभी स्पर्श नहीं करनी चाहिए। हमारा निश्चय रहे कि सब के सब भी यदि अपने मार्ग से गिर जाएँ तब भी इस मार्ग पर चलता ही रहूँगा। ऐसा दृढ निश्चय पूर्ण शक्ति के साथ अपने अंतःकरण में जागृत रखें। फिर से एक वर्ष बाद इसके सम्मुख उपस्थित होकर आत्मनिवेदन करें।

ऐसा होते हुए भी जीवन में इस प्रकार की घटनाएँ या कृतियाँ देखने को मिलती हैं, अनुभव में आती हैं जिसके कारण व्यक्ति विशेष के संबंध में सारी श्रद्धा अंतःकरण से निकल जाए। ऐसे समय उस व्यक्ति के बारे में अंतःकरण में क्रोध, शोक इत्यादि भावनाएँ खड़ी हो जाएँगी। और ये सब भावनाएँ उत्पन्न होने के कारण कार्य करने की अपनी तेजस्विता पर बुरा परिणाम होता है। तब अप्रसन्न हृदय से काम करना कठिन हो जाता है।

पातंजल सूत्र में मन को प्रसन्न रखने के चार प्रकार बताए हैं। एक तो सुख, वैभव व ऐश्वर्य से भरा हुआ। दूसरा उसके विपरीत याने दुःख से भरा हुआ। तीसरा सद्गुणों से भरा हुआ और चौथा दुर्गुणों से भरा हुआ। इन चार रूपों में सब प्रकार के मानव-समाज को अपनी आँखों के सामने रखना कार्य की दृष्टि से आवश्यक है। हम अपने मन को इस प्रकार की शिक्षा दें कि यदि कोई व्यक्ति सुखसंपन्न, वैभवसंपन्न दिखाई दें तो उसे देखकर प्रसन्नता होनी चाहिए। उसी प्रकार यदि कोई दुःखी दिखाई दे तो अपनी यह धारणा बने कि पूर्ण शक्ति लगाकर उसके दुःख को दूर करूँगा। उसका दुःख दूर करना मेरा कर्तव्य है। इस उपाय से हम ईर्ष्या, स्पर्धा, द्वेष इत्यादि भावनाओं को अंतःकरण से निकाल सकते हैं।

श्री गुरु ग्रंथसाहब

व्यक्ति स्खलनशील होने से, व्यक्ति को गुरु मानने में धोखा है यह विचार हम हिंदू-समाज के सिख पंथ में भी पाते हैं। क्रूर एवं आततायी आक्रमण से संरक्षण के लिए क्षात्रवृत्ति का अंगीकार करनेवाले शस्त्रधारी और पराक्रमी, एक से बढ़कर एक श्रद्धास्पद गुरु, हिंदू-समाज में हुए। उनमें दसवें गुरु गुरुगोविंदसिंह जी थे। उन्होंने गुरु परंपरा पर विराम

लगाया। क्योंकि धर्मभक्त, देशभक्त, आत्मसमर्पण हेतु सिद्ध लोग हर बार गुरु पद पर आएँगे ही यह कहना कठिन है। इसी विचार से उन्होंने आदेश दिया कि इसके बाद ग्रंथ साहब को ही गुरु माना जाए। उसमें दिए गए ज्ञान का श्रेष्ठ संकलन, उसकी स्फूर्तिप्रदता, तेजस्विता, क्षात्रधर्म, ब्रह्मतेज इन सभी का अक्षय आदर्श दृष्टि के सम्मुख हो। किसी शाश्वत मार्गदर्शन के लिए किसी व्यक्ति पर अवलंबित न रहें। यह हिंदू-परम्परा का ही विचार है। संघ में भी यह विचार किया गया।

पिछले वर्ष क्या कार्य किया– इसका विचार कर, नवीन वर्ष की प्रगति का निश्चय करने का आज का दिन है। ऐसे पवित्र दिन पर यही निश्चय हो, जीवन में इष्ट परिवर्तन लाएँगे। समर्पण की भावना से उसे भर देंगे। उसे तेजस्वी बना देंगे। मन की सारी अनिश्चितता, भ्रम का अंत करेंगे। एक विचार, एक निश्चय, एक पद्धति पर खड़ा संघकार्य ही जीवन का लक्ष्य मानेंगे। परिस्थिति की अपने से यही माँग है। वह पूर्ण की गई तो सारी अमंगलता नष्ट कर, राष्ट्र की पवित्र शक्ति जागृत करने का श्रेय हमें मिलेगा।

संघ कार्यपद्धति की विशेषता

संघ व्यक्तिपूजक होता तो सन् १९४० में आद्य सरसंघचालक डा हेडगेवार का देहांत हुआ, तभी संघ की इतिश्री हो जाती। पर ऐसा नहीं हुआ, यह हम आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

संघकार्य का यह वैशिष्ट्य है कि संघ में कोई भी ऐसा नहीं कहता कि 'मेरे बगैर संघ नहीं चलता, चलेगा नहीं।' डाक्टर जी के बीमार रहते अनेक लोगों के सम्मुख प्रश्न उठा कि डाक्टर जी के बाद संघ का क्या होगा? कुछ बड़े प्रतिष्ठित लोग आए। उनसे कहने लगे 'ट्रस्ट बनाइए'। एकाध कमेटी बनाइए वरना सब बंद हो जाएगा। पर उन्होंने इन बातों पर ध्यान नहीं दिया। वास्तव में देखें तो डाक्टर जी के बाद संघकार्य की रचना, निर्माण, वृद्धि सब स्वयंसेवकों ने ही की है। क्रांतदर्शी चला गया, पर व्यक्ति पूजा नहीं, इसीलिए संघ टिका हुआ है, जीवंत है, वर्धिष्णु है।

राष्ट्र के मूल स्रोत को पहचानें

एक बार डाक्टर साहब ने बातचीत के प्रसंग में मुझे पूछा– 'किसी को गुरु वगैरह तो नहीं किया है? किसी से मंत्र अथवा दीक्षा आदि तो नहीं ली है?' 'नहीं' कहने पर वे बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे– 'बहुत अच्छा

इच्छाओ के तुष्टिकरण की जितनी चेष्टा होगी, उतना ही असंतोष बढ़ेगा। भौतिक सुख–साधनो का संग्रह करने की इच्छा जितनी ही प्रबल होगी, निराशा भी उतनी ही अधिक होगी। आसक्ति जितनी अधिक होगी, मोहभंग भी उतना ही तीव्र होगा। हमारे शास्त्रो ने घोषणा की है 'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।'

श्री गुरुजी

रक्षाबंधन

(श्रावण पूर्णिमा)

(लाहौर, १९३९)

रक्षाबंधन उत्सव इतिहास में जिस कारण प्रसिद्ध है, उसे हम जानते हैं। वीर राजपूतों में इसका बहुत महत्त्व है। जब कोई किसी को राखी बाँधता था, तब उसका यह कर्तव्य होता था कि वह मर मिट जाए, पर राखी बाँधनेवाले की रक्षा अवश्य करे। जिसकी रक्षा करने का निश्चय करते है, उस कर्तव्यपूर्ति में एक पग भी पीछे नहीं हटते। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हम सब स्वयंसेवक इस प्रेम रज्जु में बँधे हुए हैं। स्वयंसेवक अपने पवित्र ध्वज को राखी बाँधकर यह निश्चय करता है कि अपने इस राष्ट्रीय ध्वज को सारे संसार में ऊँचा लहराऊँगा, जिसका गौरव स्थायी रखने के लिए पूर्वकाल में असंख्य वीरों ने खून बहाया है।

हमने पराभव स्वीकार नहीं किया

आज हमारी अवस्था देखकर लोग कहते हैं कि तुम गुलाम हो, यहाँ कभी स्वराज्य हो ही नहीं सकता। यह सही है कि स्वाधीनता न रहने के कारण स्वाधीन सार्वभौम राष्ट्र जिस वैभव से रहते हैं, वैसे हम रह नहीं पा रहे, मगर यह भी वास्तविकता है कि पराधीनता के इस काल में हमने कभी भी दासता को मन से स्वीकार नहीं किया। जब-जब विदेशी आक्रामक इस देश में आए हमने उनसे संघर्ष किया। ग्रीक नाम से विख्यात यूरोपीय महान शक्ति को हमने इस देश से निकाल बाहर किया था। उसके पश्चात् मुगल, तुर्क पोर्तुगीज, फ्रांसीसी, अंग्रेज आदि आए, उनसे भी सतत संघर्ष किया।

वीरवर महाराणा प्रताप ने महान कहे जाने वाले अकबर से

जीवन पर्यंत संघर्ष किया। गुरु गोविंदसिंह ने क्षात्र धर्म को अपनाकर सदैव जूझते रहा। छत्रपति शिवाजी के शूर मराठों ने दक्षिण में मैसूर तक एवं उत्तर में कटक तक अपना ध्वज लहराया, कराची से कलकत्ते तक परकीयों के राज्य को नष्ट करने का प्रयास किया। परकीय कभी भी निःशंक हो राज्य न कर सके।

सन् १८५७ के स्वातंत्र्य-युद्ध में वासुदेव बलवंत फड़के के सशस्त्र उठाव व बंगाल के क्रांतिकारियों के संघर्ष का एक ही अर्थ है कि हमने कभी गुलाम रहना स्वीकार नहीं किया। गत १००० वर्षों की लड़ाई में हम कभी हारे तो कभी जीते। वर्तमान संघर्ष में हम सफल होकर विजय प्राप्त कर सकें, इसीलिए शक्ति का संचय कर रहे हैं। भगवे ध्वज को गर्दन में बाँधकर हम दुनिया को यह बताना चाहते हैं कि वह दिन शीघ्र ही आएगा, जब यह ध्वज वैभवसंपन्न स्वाधीन राष्ट्र के ध्वज के नाते दुनिया में लहराएगा।

ऊ ऊ ऊ

नागपुर, १९४६

ना भय देत काहू को ना भय जानत आप

गत २१ वर्ष से संघकार्य निरंतर वृद्धिंगत हो रहा है। लोग इसे जानने लगे हैं। संघ के वर्तमान कार्य को देखकर भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग अपने हृदय की भावना के अनुसार सुख अथवा दुःख का अनुभव करते हैं। संघ तो हिंदू-समाज के अंतर्गत 'सर्वेषां अविरोधेन' के भाव से हिंदू-समाज को संगठित तथा बलशाली बनाने की चेष्टा में व्यस्त है। इधर-उधर की बातों की ओर ध्यान देने के लिए उसके पास समय ही कहाँ है? समाज को विभाजित करनेवाली तुच्छ बातों से ऊपर उठ कर एकसंघ समाज-शरीर निर्माण करने का रचनात्मक कार्य संघ कर रहा है। सज्जनों की शक्ति का निर्माण होता हुआ देखकर दुर्जनों को दुःख होता [illegible] भय से ग्रस्त होकर अच्छे कार्य में बाधा डालना स्वाभाविक [illegible] पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा। संघ न कभी किसी [illegible] न किसी को डराता है। सन् १९२५ में जब हम [illegible] किसी से नहीं डरे, अब तो लाखों की संख्या में हैं, फिर 'ना भय देत काहू को, ना भय जानत आप'।

अपनाया है। डरना डराना तो दुर्बलता का लक्षण है। सघ तो अपनी सस्कृति की रक्षा का एकमात्र कार्य जानता है।

समाज के कष्ट निवारण के लिए

आजकल 'साप्रदायिकता' शब्द का प्रयोग सर्वत्र सुनने में आता है। इस शब्द के उपयोग में कई लोगों को बडी दिलचस्पी है। सघ को साप्रदायिक बतलानेवाले कुछ महानुभाव हैं, लेकिन सघ साप्रदायिक है अथवा नहीं, इसका प्रमाण जैसे-जैसे अपना कार्य बढता जाएगा लोगों को मिलेगा। तब उनकी गलत धारणाएँ स्वय दूर हो जाएँगी।

साप्रदायिक तो वास्तव में वह होता है जो अपने पडोसी के प्रति द्वेषभाव रखता हुआ उस को कष्ट देने के हेतु से कुछ काम करता है। सघ में ऐसी कोई बात नहीं है। दूसरों को कष्ट देने के लिए नहीं, बल्कि अपने समाज के कष्ट-निवारण के लिए सघ प्रयत्नशील है। हिंदू-समाज को सुखी, समृद्ध और वैभवशाली बनाने का कार्य, बिना किसी के द्वेष और विरोध भाव के करना गलत नहीं, बल्कि अतीव योग्य कार्य है।

जिनका जीवन और विचार-प्रणाली, इतिहास और तत्वज्ञान एक सा है, आचार-विचार, आशा-आकाक्षाएँ एक सी हैं, ऐसे समानधर्मा लोगों का ही सगठन आसानी से हो सकता है। इसीलिए सघ ने समानधर्मा लोगों के सगठन का कार्य हाथ में लिया है। इसमें किसी को पीडा देने का भाव तनिक भी नहीं है, फिर दूसरे लोग चाहे कुछ भी समझें, हमने उसकी चिता नहीं करनी चाहिए।

सास्कृतिक विकास से सबध

कुछ स्वयसेवक कहते हैं कि अपना कार्य धीमी गति से बढता है, अपनी कार्यपद्धति में कोई त्रुटि तो नहीं है। उन्होंने यह ध्यान रखना चाहिए कि दुनिया के बिल्कुल प्रारभ से लेकर अभी तक का अनुभव ऐसा है कि जिस समाज का सास्कृतिक विकास कम हुआ हो, वे समाज बहुत जल्दी सगठित हो जाते हैं। एक कौवा मर जाने पर हजार कौए इकट्ठे हो जाते हैं। उनमें कितना अच्छा सगठन है। इसलिए क्या कौआ आदमी से श्रेष्ठ है। उनका सगठन भले ही हो जाए पर वे मनुष्य नहीं हो सकते।

मनुष्यों में अनेक प्रकार हैं। कुछ तो उन्नत है, सुसस्कृत हैं। वे अपने मन में सोचते हैं कि हम समूह बनकर क्यों रहें। सुसस्कृत मनुष्य

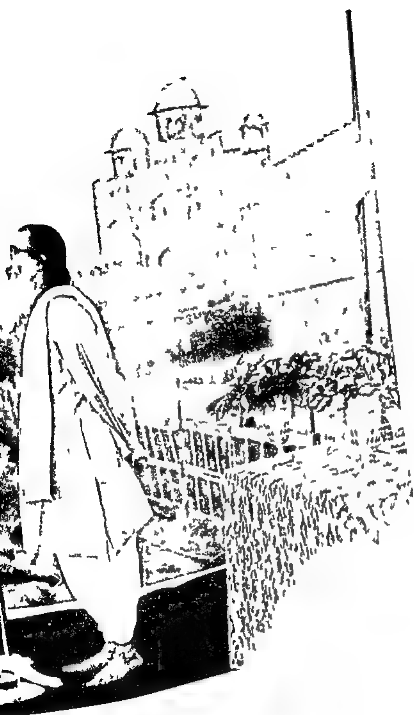
सूत्र से किसी व्यक्ति के सबध में कोई भी विपरीत भाव मन में न रखते हुए कि वह कौन सी भाषा बोलने वाला है, वह कहाँ तक पढ़ा है, वह किस पद पर है, उसकी आर्थिक स्थिति कैसी है अथवा वह शहरी है या देहाती, सबके बीच अपना काम करें।

यदि हम विचार करेंगे तो अनुभव आएगा कि आपस में एक-दूसरे के बीच का स्नेह नष्ट सा हो गया है। बड़े-बड़े लोगों की बातों में भी एक-दूसरे के प्रति अविश्वास, द्वेष, स्पर्धा, ईर्ष्या, परस्पर की निंदा, एक-दूसरे के विनाश की भावना, आत्मीयता का अभाव देखने को मिलता है। कितना आश्चर्य है कि दुनिया की एकता की बात करेंगे, पर व्यवहार उसके बिल्कुल विपरीत करेंगे।

अविभाज्य समाज शरीर

इस भूमि में अति प्राचीन काल से सपूर्ण समाज को विराट पुरुष के रूप में हमारे सामने रखा गया। प्रत्येक व्यक्ति उस विराट शरीर का एक छोटा-सा अश है। मनुष्य का शरीर छोटी-छोटी अगणित जीवपेशियों (सेल्स) से बना है। उन अवयवों को एक सूत्र में परिचालित करनेवाली एक चैतन्यशक्ति शरीर की अस्मिता है। उसी के कारण सारे अवयव सपूर्ण शरीर की भलाई की दृष्टि से कार्य करते हैं। इसी के कारण शरीर सुदृढ़, सुव्यवस्थित एव जीवमान दिखाई देता है। समाज रूपी शरीर की अवस्था भी उसी प्रकार है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति उन जीवपेशियों और अवयवों के समान सपूर्ण समाज शरीर का अविच्छिन्न अविभाज्य अग स्वरूप रहकर समाज-शरीर की सेवा के लिए सर्वस्वार्पण की भावना से युक्त होकर प्रयत्नशील रहे, तभी समाज उत्कृष्ट रूप से चल सकता है।

रक्षाबधन के पवित्र पर्व पर यही बात ध्यान में रखकर मन में निश्चय करें की स्नेह की सच्ची अनुभूति लेकर कधे से कधा मिलाकर अपने में वास्तविक बधुता का भाव उत्पन्न कर शुद्ध, पवित्र, एकात्म जीवन उत्पन्न करेंगे। यही आज के पुण्य पर्व पर आप सबके लिए आह्वान तथा संदेश है। इसको ठीक प्रकार से समझकर समूचे भारत को अपने अदर समाविष्ट कर प्रबल और महान बनाने का प्रयत्न करने के लिए हम सब आगे बढ़ें।











ऊँ ऊँ ऊँ

खड ७ पत्राचार

सतवृद, विदेशस्थ बधु, नेतागण, अन्य मतानुयायी, माता, भगिनि, प्रबुद्ध जन तथा सामाजिक सस्थाओ के कार्यकर्ताओ को लिखे पत्र।

खड ८ पत्र सवाद

स्वयसेवको व कार्यकर्ताओ को लिखे पत्र।

खड ९ भेटवार्ता

प्रश्नोत्तर, वार्तालाप प्रमुख लोगो से वार्तालाप। पत्रकारो के सम्मुख भाषण। महत्त्वपूर्ण भेट तथा अनोपचारिक चर्चाएँ।

खड १० सघर्ष के प्रवाह मे

प्रतिबध के समय सरकार से हुआ पत्राचार। उस समय दिये गए वक्तव्य। आभार प्रदर्शन। बाद के अभिनदन समारोह। भारत–चीन व भारत–पाकिस्तान युद्ध के समय की जनसभाएँ, बैठके, शिविर, पत्रकार वार्ता तथा वक्तव्य।

खड ११ चितन सुधा

सपादित विचार नवनीत

खड १२ स्मरणाजलि

श्री गुरुजी के बारे मे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो ससद व विधानसभा तथा समाचार–पत्रों द्वारा श्रद्धाजलि।